अंक 296 वर्ष 60

भाषा

मई–जून 2021

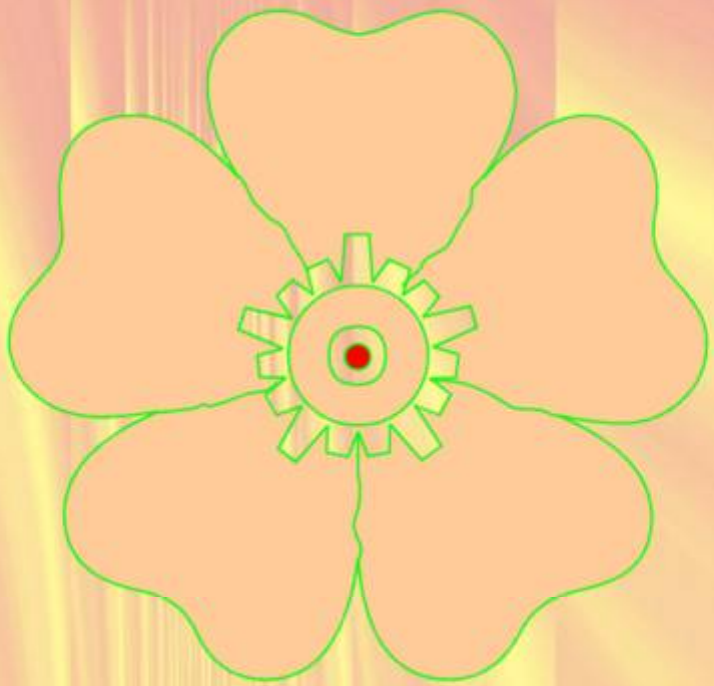

सत्यमेव जयते

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

भारत सरकार

भाषा

मई–जून 2021

भाषा (द्वैमासिक)

लेखकों से अनुरोध

1. ***भाषा*** में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ प्रायः टंकित रूप में भेजी जाएँ। हस्तलिखित सामग्री यदि भेजी जाए तो वह सुपाठ्य, बोधगम्य तथा सुंदर लिखावट में होनी अपेक्षित है। रचना की मूलप्रति ही भेजें। फोटोप्रति स्वीकार नहीं की जाएगी।

2. लेख आदि सामान्यतः फुल स्केप आकार के दस टंकित पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिए और हाशिया छोड़कर एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिए।

3. अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है। इससे रचना पर निर्णय लेने में हमें सुविधा होगी। मूल कविता का लिप्यंतरण टंकित होने पर उसकी वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ प्रायः नहीं होंगी, अतः टंकित लिप्यंतरण ही अपेक्षित है। रचना में अपना नाम और पता हिंदी के साथ–साथ अंग्रेजी में भी देने का कष्ट करें।

4. सामग्री के प्रकाशन विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।

5. रचनाओं की अस्वीकृति के संबंध में अलग से कोई पत्राचार कर पाना हमारे लिए संभव नहीं है, अतः रचनाओं के साथ डाक टिकट लगा लिफाफा, पोस्टकार्ड आदि न भेंजे। इन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी।

6. अस्वीकृत रचनाएँ न लौटा पाने की विवशता/असमर्थता है। कृपया रचना प्रेषित करते समय इसकी प्रति अपने पास अवश्य रख लें।

7. भाषा में केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी वर्तनी का प्रयोग किया जाता है। अतः रचनाएँ इसी वर्तनी के अनुसार टाइप करवाकर भेजी जाएँ।

8. समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए।

संपादकीय कार्यालय

संपादक भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110066

भाषा

मई–जून 2021
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका (क्रमांक–16)

अध्यक्ष, परामर्श एवं संपादन मंडल
प्रोफेसर रमेश कुमार पाण्डेय

परामर्श मंडल
प्रो. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'
डॉ. पी. ए. राधाकृष्णन
प्रो. ऋषभ देव शर्मा
प्रो. मंजुला राणा
प्रो. दिलीप कुमार मेधी
श्रीमती पद्मा सचदेव
श्री हितेश शंकर

संपादक
डॉ. राकेश कुमार

सह–संपादक
डॉ. शालिनी राजवंशी
डॉ. किरण झा

प्रूफ रीडर
श्रीमती इंदु भंडारी

कार्यालयीन व्यवस्था
सेवा सिंह

**केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार**

ISSN 0523-1418
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : **60** अंक : **3 (296)**
मई–जून 2021

संपादकीय कार्यालय
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.mhrd.gov.in
www.chd.mhrd.gov.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाष: 011–26105211 / 12

बिक्री केंद्र :
नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस,
दिल्ली - 110054
वेबसाइट : www.deptpub.gov.in
ई–मेल : pub.dep@nic.in
दूरभाष : 011-23817823/ 9689

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, दिल्ली के पक्ष में भेजें।

बिक्री केंद्र :
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.mhrd.gov.in
www.chd.mhrd.gov.in
ईमेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाष: 011–26105211 / 12
सदस्यता हेतु ड्राफ्ट निदेशक, कें. हिं. नि.,
नई दिल्ली के पक्ष में भेजें।

मूल्य :

1.	एक प्रति का मूल्य	=	रु. 25.00	(डाक खर्च सहित)
2.	वार्षिक सदस्यता शुल्क	=	रु. 125.00	
3.	पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 625.00	
4.	दस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 1250.00	
5.	बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 2500.00	

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रमणिका

निदेशक की कलम से

संपादकीय

आलेख

1.	मैला आँचल : मुरझाए ओठों पर मुस्कान लाने की कामना	डॉ. व्यासमणि त्रिपाठी	9
2.	थारू–लोकगीतों का भाषिक सौंदर्य	डॉ. प्रणव शास्त्री (डी. लिट्)	15
3.	निर्मला पुतुल की 'नगाड़े की तरह बजते शब्द' में चित्रित आदिवासी स्त्री, समाज और संस्कृति	डॉ. पठान रहीम खान	19
4.	नाट्यकर्मी भारतेंदु हरिश्चंद्र	डॉ. ममता सिंगला	25
5.	रेणु का साहित्य और सलीमा उर्फ़ सिनेमा	राकेश कुमार त्रिपाठी	31
6.	रेणु के जीवन का भटकाव और रास्ता	भारत यायावर	37
7.	रेणु होने का मतलब	राहुल राज आर्यन	51
8.	फणीश्वरनाथ 'रेणु' के रिपोर्ताज में अंचल का यथार्थ रूप	प्रियंका कुमारी	55
9.	फणीश्वरनाथ 'रेणु' के रिपोर्ताजों में निहित जनपक्षधरता	मो. दानीश	59
10.	हिंदी उपन्यासों में ग्राम्य–चेतना : 'परती–परिकथा' के परिप्रेक्ष्य में	डॉ. नीलिमा वर्मा	67
11.	प्रीति, रीति और नीति के कवि : बिहारी	डॉ. आलोक रंजन पांडेय	75
12.	फणीश्वरनाथ 'रेणु' : लोक संस्कृति और आस्था के सजग और मर्मी शिल्पी	अंबिकेश कुमार मिश्र	80
13.	मैला आँचल : दास्तान–ए–चेथरिया पीर	डॉ. हरींद्र कुमार	83
14.	भूमंडलीकृत भारतीय समाज में वृद्धों की स्थितियाँ (समकालीन कहानियों के आलोक में)	सविता धामा	88

यात्रा वृत्तांत

15.	प्रकृति प्रेमियों का स्वर्ग–कूर्ग	अनीता शर्मा 'स्नेही'	93

धरोहर

16.	उत्साह	आचार्य रामचंद्र शुक्ल	100

हिंदी कहानी

17.	एक और वाल्मीकि	देवेंद्र कुमार मिश्रा	105

18. यह समय भी निकल गया	रमेश मनोहरा	112

हिंदी कविता

19. नदिया की तरह जिया	राधे श्याम बंधु	118
20. जुते हुए खेत मे, असमंजस	केशव शरण	119
21. हम बनना चाहते हैं मुंशी प्रेमचंद	लाल देवेंद्र कुमार श्रीवास्तव	120
22. क्वारेंटाइन अनुभूति	डॉ. अंजू सिंह	121

अनूदित खंड

कहानी

23. यादों की छाया (तमिल कहानी)	तमिलमगन अनुवाद : डॉ. वी. पदमावती	122
24. जड़ (कन्नड कहानी)	केशव रेड्डी हंद्राला अनुवाद : डी. एन. श्रीनाथ	126

कविता

25. धँसा हुआ (मराठी/हिदी)	प्रो. सौ. कांचन थोरात अनुवाद : प्रो. शौकत आतार	132
26. अचानक (ओड़िया/ हिंदी)	सौभाग्यवंत महाराणा अनुवाद : डॉ. ममता प्रियदर्शिनी साहु	134

परख

27. विज्ञान को लोकप्रिय बनाते डॉ. कोहली (विज्ञान की नई दिशाएँ/डॉ. दीपक कोहली)	डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'	136
28. उजाले का संदेश (उजाले के लिए/ गीत–नवगीत संग्रह/ डॉ. राकेश 'चक्र')	डॉ. सुधांशु शेखर	138
29. बदलते समय की रेत पर ज़िंदगी के निशान : भटक्यो बहुत प्रकाश (भटक्यो बहुत प्रकाश/चंद्रभानु भारद्वाज)	रमेश खत्री	140
30. कुछ आखिरी नहीं होता : जीवन की अक्कासी (कुछ आखिरी नहीं होता/डॉ. ओम प्रकाश शर्मा 'प्रकाश')	डॉ. स्नेह सुधा नवल	143

संपर्क सूत्र **146**

सदस्यता फॉर्म

निदेशक की कलम से

भारत कोरोना संक्रमण की दूसरी लहर का सामना कर रहा है। सबका हाल बेहाल है। स्वास्थ्य सेवाओं पर बहुत बोझ है। इतने मरीजों का एक साथ आना स्थिति को बद से बदतर बना रहा है। पर ऐसी स्थिति में भी हमें धीरज नहीं खोना है। कहते हैं मन के हारे हार है और मन के जीते जीत। यदि हम हिम्मत छोड़ देंगे तो इस कोरोना को नहीं हरा पाएँगे। हमें बुलंद हौसलों से, सकारात्मक विचारों से इस विपत्ति से निपटना है और जीत कर दिखाना है। ये सही है कि चारों तरफ इस हाहाकार के मध्य भी कुछ सुख, कुछ सुकून है। लोगों में अभी भी दूसरों की मदद करने का जज़्बा है। सामाजिक संगठन, स्वयंसेवी संगठन, गुरुद्वारे लोगों की हर संभव मदद कर रहे हैं। सूरज ने अभी भी अपनी रोशनी देना नहीं छोड़ा है वह भरपूर धूप हमें दे रहा है। हवाओं ने बहना नहीं छोड़ा वे अभी भी हमें प्राणवायु दे रही है। लॉकडाउन के बीच खाने–पीने के सामान की कोई कमी नही है। हाँ कुछ दवाओं की किल्लत है वो भी दो–एक प्रयास में उपलब्ध हो जाती हैं। बात है हमारे जज़्बे की, हमारे हौसले की, हमारे धैर्य की। कैसे हम इस आपदा से उबर कर फिर से उठ खड़े होंगें। नए जोश, नई उमंग के साथ।

ऐसे में भाषा पत्रिका का मई–जून अंक निकलना गर्मी में ओस की बूँदों जैसा है। जिंदगी और कार्य कभी रुकता नहीं है। फणीश्वरनाथ रेणु पर लिखे गए आलेख यथार्थ से हमारा परिचय कराते हैं तो कहानियाँ, कविताएँ और संस्मरण आदि हमें एक नवीन संसार मे ले जाते हैं। मुसीबतों को स्वयं पर आरोपित करने से अच्छा है हम साहित्य पढ़ें और अपने मन को नकारात्मकता से सकारात्मकता की ओर ले जाएँ। रेणु का साहित्य स्वतंत्रता से पहले की पृष्ठभूमि पर है। जो हमें उस समय के सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विषमताओं से भरे समाज के दर्शन कराता है। कहानियाँ एवं संस्मरण हमें तुरंत ही एक नए रचना संसार में ले जाते हैं। हम कल्पनालोक में विचरण करने लगते हैं। आज के वर्तमान समय में साहित्य अंधकार से उजाले की ओर गमन का साधन है। हम साध्य हैं। साधन और साध्य का यह मिलन ही बुद्धि के लिए प्रकाश का कार्य करता है। आशा है भाषा का प्रस्तुत अंक भी प्रकाश स्तंभ सिद्ध होगा।

रमेश कुमार पांडेय

प्रोफेसर रमेश कुमार पांडेय

विद्या मित्रं प्रवासेषु, भार्या मित्रं गृहेषु च।
व्याधितस्यौषधं मित्रं, धर्मो मित्रं मृतस्य च।।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलं।।

भाषा ISSN 0523-1418

संपादकीय

आज संपूर्ण विश्व एक ऐसे सामाजिक संघर्ष में शामिल है, जिसमें न्याय के लिए अदम्य इच्छा शक्ति दिखाई देती है। संघर्ष के कई स्तर हैं और अनेक प्रकार हैं, लेकिन सभी तरह के संघर्षों की प्रेरक शक्ति अंततः न्याय है। लेकिन इसे वर्तमान समय की विडंबना ही कहा जा सकता है कि न्याय को परिभाषित करने की युक्ति कहीं खो गई प्रतीत होती है। यही कारण है कि परस्पर विरोधी लक्ष्यों के प्रति संघर्ष तो दिखाई पड़ रहा है किंतु न्याय की परिणति तक पहुँचते–पहुँचते वह संघर्ष अपने लक्ष्य से भटकता हुआ दिख रहा है। यही वर्तमान समय के बौद्धिक जड़त्व की निशानी है। परस्पर विपरीत शक्तियों और विचार धाराओं के बीच संघर्ष होना कोई असामान्य बात नहीं है बल्कि सुशिक्षित एवं सभ्य समाज के विकास और नव–निर्माण के लिए यह अनिवार्य प्रक्रिया है। वर्तमान समय की त्रासदी यह है कि संघर्ष का लक्ष्य विस्मृत होता जा रहा है।

भारतीय राजनीतिक और सामाजिक परिदृश्य में स्वतंत्रता की अवधारणा अपनी ऐतिहासिक गरिमा के साथ मौजूद है। लेकिन इस स्वतंत्रता को किस तरह और किस सीमा तक परिभाषित किया जाए यह विचार धूमिल हो गया है। सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में इस वैचारिक और बौद्धिक संघर्ष की उपस्थिति को सरलता से देखा–समझा जा सकता है और इसका समाधान आधुनिक ज्ञान परंपरा के अंतर्गत खोजा जा सकता है। आधुनिकता को केंद्रीकृत ज्ञान मीमांसा का पोषक मानकर समकालीन समय की समस्त समस्याओं के लिए उत्तरदायी मान लिया जाता है जबकि आधुनिकता कोई केंद्रीकृत ज्ञान व्यवस्था नहीं है वस्तुतः यह केवल एक पद्धति है जो तथ्यों की वस्तुनिष्ठ व्याख्या पर निर्भर करती है।

इस वैचारिक एवं बौद्धिक अव्यवस्था का साहित्य और साहित्य के मूल्यांकन पर भी गंभीर प्रभाव पड़ा है। हालत तो यहाँ तक हो गई है कि सदियों से अर्जित किए मूल्य और लोकाचार एक झटके में संदिग्ध हो गए हैं और जिन मूल्यों को गर्हित एवं त्याज्य माना जाता था वे वरणीय हो गए हैं। वर्तमान में मनुष्य के व्यक्तिगत जीवनानुभव ज्यादा महत्वपूर्ण हो गए हैं जबकि पहले साहित्य में जीवनानुभवों की शृंखला, उनमें मौजूद आंतरिक एकत्व की भावना और उनकी सत्यनिष्ठा ही मूल्यांकन का सर्वमान्य आधार था। साहित्य की भाषा और कला का मूल आधार ही मनुष्य जीवन के प्रति समग्रता का भाव है और यही मानवीय सभ्यता का बृहत्तर आयाम है और यही आयाम ज्ञान और परंपरा का अनुकरण है। यही वह मूल भावना है जो मनुष्य को दूसरे प्राणियों से अलग करती है।

विविध विषयों से समन्वित भाषा का यह अंक सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। आपके अमूल्य सुझावों की प्रतीक्षा रहेगी। आपके सुझावों से भाषा के आगामी अंकों को और बेहतर रूप में प्रस्तुत कर सकेंगे इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

"उठो, जागो और तब तक मत रुको जब तक
लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाए।

— स्वामी विवेकानंद

"खुद को खोजने का सबसे अच्छा तरीका है,
खुद को दूसरों की सेवा में खो दो।"

— महात्मा गांधी

भाषा ISSN 0523-1418

मैला आँचल – मुरझाए ओठों पर मुस्कान लाने की कामना

डॉ. व्यासमणि त्रिपाठी

रचना हृदय की निगूढ़तम अभिव्यक्ति है। हृदय का वह अंतरतम प्रदेश जहाँ व्यक्ति और समाज की दुख मुक्ति की कामना में छटपटाहट की स्वरतंत्री बजती है वहीं से महान रचना का जन्म होता है। हृदय –सागर में करुणा का ज्वार जब मथित और आंदोलित करता है तभी 'मैला आँचल' जैसी रचनाएँ संभव हो पाती हैं। क्रौंच पक्षी की वेदना – विह्वलता ही प्रथम कवि की काव्य–चेतना का आधार बनती है। 'मेरीगंज' गाँव की दुर्दशा, गरीबी, अभाव, अशिक्षा, असमानता, अनेकता, अनाचार, अंधविश्वास, भय, आतंक, ढोंग, पाखंड, ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य आदि की व्यथा ने फणीश्वरनाथ 'रेणु' से 'मैला आँचल' की कथा लिखवा ली। ऊपर से तो यही लगता है कि आँचल के मैलेपन को उभारना ही लेखक का उद्देश्य है। उपन्यास के शीर्षक से तो यही व्यंजित होता है लेकिन आँचल की गंदगी दिखाना ही किसी महान रचनाकार का उद्देश्य नहीं हो सकता। उसकी धुलाई, सफाई और चमकाने की लालसा भी तो अंतर्निहित हो सकती है। जाहिर है– रचना 'शिवेतर क्षतये' का उद्देश्य लेकर चलती है। रेणु भी उस आँचल के सुधार, विकास और उन्नति की कामना से प्रेरित हैं। समस्याओं को उभारना और उसके निदान का संकेत देना रचनात्मक अभीप्सा है। रेणु ने केवल 'मैला आँचल' में ही नहीं बल्कि अपने सभी उपन्यासों में व्यक्ति और समाज की समस्याओं को यथार्थ के धरातल पर उभारकर तारों की टिमटिमाहट जैसी निदानात्मक ऊष्मा और ज्योति का संकेत किया है। 'मैला आँचल' में वह संकेत महाप्रकाश के रूप में है। ममता पूछती है– "पढ़ गए.... महात्मा जी की आखिरी लालसा! मैं तो कहती हूँ, यह वह महाप्रकाश है, जिसकी रोशनी में दुनिया निर्भय हजारों बरस का सफर तय कर सकती है।" (पृष्ठ 312) इस पर प्रशांत का कथन है– "मैं प्यार की खेती करना चाहता हूँ। आँसू से भीगी हुई धरती पर प्यार के पौधे लहलहाएँगे। मैं साधना करूँगा, ग्रामवासिनी भारत माता के मैले आँचल तले। कम से कम एक ही गाँव के कुछ प्राणियों के मुरझाए ओठों पर मुस्कराहट लौटा सकूँ, उनके हृदय में आशा और विश्वास को प्रतिष्ठित कर सकूँ।" (वही)। प्रशांत की यह कामना वस्तुतः रेणु की कामना है। लेखक के हृदय का उद्गार है।

वैसे तो फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने कविता, कहानी, निबंध और रिपोर्ताज आदि विधाओं में महत्वपूर्ण लेखन किया है लेकिन उनकी सर्वाधिक ख्याति का कारण 'मैला आँचल' है जिसकी प्रशंसा में यह कहा जाता है कि अगर रेणु ने इसे छोड़ और कुछ भी नहीं लिखा होता तब भी वे हिंदी के महान कथाकारों की अग्रिम पंक्ति में आसीन होते। नलिन विचोलन शर्मा ने इसके प्रकाशन के तत्काल बाद अपनी प्रतिक्रिया देते हुए इसे 'गोदान' के बाद का दूसरा महान उपन्यास तक मान लिया था– "मैने हिंदी के दस श्रेष्ठ की जो तालिका प्रकाशित कराई उसमें उसे सम्मिलित करने में मुझे कठिनाई नहीं हुई। मैं किसी द्विधा के बिना एक उपन्यास

को हटाकर इसके लिए जगह बना सकता हूँ। बिना किसी प्रचार या विज्ञापन के ही 'मैला आँचल' हिंदी के उस विस्तृत क्षेत्र में प्रसिद्ध हो गया। शायद ही कोई पुस्तक इतने शीघ्र प्रसिद्धि प्राप्त कर सकी है। मैंने इसे 'गोदान' के बाद हिंदी का दूसरा महान उपन्यास माना है।" (आलोचना, अंक–15, पृष्ठ 105)। यह बात अलग है कि आलोचकों के एक वर्ग ने इसे उतनी गंभीरता से नहीं लिया। उस पर तरह–तरह के आरोप भी लगाए। किसी को प्रशांत और कमला के प्रेम में छिछलापन दिखाई दिया तो किसी को नायक विहीन कथा दिखाई दी। किसी को अश्लीलता और गालियों की बौछार तथा अनैतिक यौन संबंध दिखाई दिए तो किसी को रेणु की इस स्वीकारोक्ति "इसमें फूल भी हैं, शूल भी, धूल भी है, गुलाब भी, कीचड़ भी है, चंदन भी, सुंदरता भी है, कुरूपता भी– "मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया" के बावजूद फूल, गुलाब, चंदन और सुंदरता की अपेक्षा शूल, धूल, कीचड़ और कुरूपता ही अधिक दिखाई दी। किसी को पिछड़ी जाति के प्रति लेखक की सहानुभूति दिखी तो किसी को नारी जाति के प्रति असम्मान का भाव लेकिन अधिकांश आलोचकों/पाठकों ने 'मैला आँचल' की भूरि–भूरि प्रशंसा की है। कथ्य का यथार्थ और शिल्प की बुनावट में इसे हिंदी उपन्यास जगत की अनुपम उपलब्धि मानी है।

'मैला आँचल' किसी व्यक्ति विशेष अथवा किसी एक परिवार या किसी समुदाय विशेष की कहानी न होकर संपूर्ण गाँव की कहानी है। मेरीगंज गाँव जिसे रेणु पिछड़े गाँवों का प्रतीक मानकर कथा का क्षेत्र बनाते हैं वह अपनी व्याप्ति में संपूर्ण भारत वर्ष के गाँवों का प्रतिनिधित्वं करता है। बिहार के पूर्णिया जिले का यह गाँव अपने सुख–दुख, अभाव, गरीबी, ईर्ष्या, वैमनस्य, उत्सव–उल्लास, तीज–त्योहार आदि की दृष्टि से भारत के गाँवों से भिन्न नहीं है। इसकी समस्याएँ हर गाँवों में मिलेंगी और जो समस्याएँ अन्य गाँवों में हैं वे मेरीगंज में विद्यमान हैं। इस तरह एक ओर नेपाल दूसरी ओर पूर्वी पाकिस्तान (अब बाँग्लादेश) और पश्चिम बंगाल तथा दक्षिण में संथाल परगना और पश्चिम में मिथिला की सीमा–रेखाओं के बीच स्थित पूर्णिया जिले का यह गाँव मेरीगंज आंचलिकता की परिधि से जब बाहर निकलता है तब वह गाँव विशेष नहीं रह जाता बल्कि भारत का सामान्य गाँव बन जाता है जहाँ अफवाहों का बाजार है, अंधविश्वास की जकड़न है, जातिवाद है, खेत के झगड़े हैं, अवैध कब्जा है, हदबंदी–दलबंदी है, मार–पीट, कोर्ट–कचहरी और गवाही है, मंदिर–मठ के काले कारनामे हैं, अमीरी है, गरीबी है, विलासिता है, भुखमरी है, नेता हैं, गुंडे हैं, सहजता और भोलापन है, जाहिलियत है, काबिलियत है। सीधेपन के भीतर छिपा काइयाँपना है जिसे प्रशांत जैसा व्यक्ति भी सिर्फ सात दिन में ताड़ कर ममता को लिखे बिना नहीं रहता– "गाँव के लोग बड़े सीधे दीखते हैं, सीधे का अर्थ यदि अपढ़, अज्ञानी, अंधविश्वासी हो तो वास्तव में सीधे हैं वे। जहाँ तक सांसारिक बुद्धि का सवाल है, वे हमारे और तुम्हारे जैसे लोगों को दिन में पाँच बार ठग लेंगे और तारीफ यह है कि तुम ठगी जाकर भी उनकी सरलता पर मुग्ध होने के लिए मजबूर हो जाओगी। यह मेरा सिर्फ सात दिन का अनुभव है।"

(मैला आँचल, पृ.सं. 53)।

कथा की शुरुआत चेथरू की गिरफ़्तारी और लोबिन लाल के कुएँ से बाल्टी खोलकर ले जाने की अफवाह से हुई है जिसकी प्रतिक्रिया अलग–अलग टोले में अलग–अलग है। मेरीगंज में जाति आधारित टोले हैं– कायस्थ टोली, राजपूत टोली, दुसाध टोली, ततमा टोली, यादव टोली आदि। कायस्थ टोली के मुखिया विश्वनाथ प्रसाद मल्लिक, राजपारबंगा के तहसीलदार और एक हजार बीघे जमीन के काश्तकार हैं। राजपूत टोली के मुखिया ठाकुर रामकृपाल सिंह तीन सौ बीघे जमीन के मालिक हैं। डेढ़ सौ बीघे जमीन का काश्तकार खेलावन यादव, यादव टोली का मुखिया है। राजपूतों और कायस्थों में एक दूसरे को नीचा दिखाने की होड़ है तो यादवों को इन दोनों से मनमुटाव है। यही कारण है कि मलेरिया सेंटर खोलने के संदर्भ में मेरीगंज आई पैमाइशी टीम को लेकर इन तीनों बड़े काश्तकारों के पास पहुँची अफवाह अलग–अलग तरह की है और प्रतिक्रिया

भी अलग–अलग है। यहाँ फणीश्वरनाथ 'रेणु' अफवाहों पर विश्वास के साथ–साथ गाँव की अनेकता तथा जमीन के असमान अधिकार की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं। अफवाह एक बड़ी समस्या है जो वातावरण को प्रदूषित एवं अशांत बनाए रखने में बड़ी भूमिका निभाती है। रेणु चाहते हैं कि गाँव और समाज अफवाहों से मुक्त हो इसीलिए वे यत्र–तत्र इसका उद्‌घाटन करते चलते हैं। जोतखी जी नामक पात्र अंधविश्वास और अफवाहों का भंडार है। मलेरिया सेंटर खुलने की बात सुनकर डॉक्टर और अंग्रेजी दवा के खिलाफ तरह–तरह की कहानियाँ कही जा रही हैं। जोतखी जी का कहना है– "डॉक्टर लोग ही रोग फैलाते हैं, सुई भोंककर देह में ज़हर दे देते हैं, आदमी हमेशा के लिए कमजोर हो जाता है, हैजा के समय कूपों में दवा डाल देते हैं, गाँव का गाँव हैजा से समाप्त हो जाता है। काला बुखार का नाम पहले लोगों ने कभी सुना था? पूरब मुलुक कामरु कमिच्छा हासाम से काला बुखार वालों का लहू शीशी में बंद करके यही लोग ले आए थे। आजकल घर–घर काला बुखार फैल गया है। ....इसके अलावा, बिलैती दवा में गाय का खून मिला रहता है।" (वही, पृष्ठ 18)। अंधविश्वास और अफवाहों का क्या? वह अनपढ़ और गँवारों के बीच जिस तेजी से फैलता है, उसी तरह पढ़े–लिखों के बीच भी अपना जाल पसारता है। तभी तो अभियांत्रिकी और सूचना क्रांति के इस युग में जब मनुष्य चाँद से ऊपर मंगल की ओर अपने कदम रखने के लिए उद्‌यत हो रहा है तब समाज के एक वर्ग में यह अफवाह जोरों से फैल रही है कि कोविड की वैक्सीन में जानवर की चर्बी मिली होने के कारण वह ग्राह्य नहीं है। इतना ही नहीं यह भी अफवाह है कि उसके लगाने से पौरुष प्रभावित होगा। कल्पना कीजिए आज जब यह स्थिति है तो पहले क्या दशा रही होगी? खासकर उस अंचल की जो वीरान, धूमिल और मटमैला है। इसे ममता को लिखे प्रशांत के पत्र की इन पंक्तियों से समझा जा सकता है– "तुम जो भाषा बोलती हो, उसे ये नहीं समझ सकते। तुम इनकी भाषा नहीं समझ सकतीं। तुम जो खाती हो, ये नहीं खा सकते। तुम जो पहनती हो, ये नहीं पहन सकते। तुम जैसे सोती हो, बैठती हो, हँसती हो, बोलती हो, ये वैसा कुछ नहीं कर सकते। फिर तुम इन्हें आदमी कैसे कहती हो। ....अभी पहला काम है, जानवर को इनसान बनाना।" (वही, पृ.सं. 175)। मैला आँचल लिखने का रेणु का यही काम्य हो सकता है।

"मैला आँचल" में सन् 1946 अगस्त से 1948 तक की अवधि का चित्रण भले किया गया है लेकिन उसकी बुनियादी समस्याएँ प्राचीन हैं। मेरीगंज गाँव में तीन–चार भूस्वामी हैं जबकि अधिकांश भूमिहीन। पूंजीवाद दीमक की तरह उसकी जड़ों को खोखला बना रहा है। तीन–चार जो धनी हैं वे लगातार धनी हो रहे हैं और बाकी निर्धन। गिनती के परिवार ऐश्वर्य और भोग विलास की जिंदगी जी रहे हैं जबकि अधिकांश को रोटी के लाले हैं। गरीबों, मजदूरों और कृषकों को अँगूठे के टीप पर त्योहारों में मालिक या जमींदार उन्हें अनाज देते हैं जिसे वे करुणा के पात्र आजीवन चुकाते रहते हैं। अभाव, गरीबी और भूख का आलम यह है कि कुछ को आम की गुठलियों के गूदे की रोटी पर अपने को जिंदा रखना पड़ता है। अमीर पैसे से गरीबों को खरीदकर गरीबों के गले पर गरीबों के जरिए ही छुरी चलाते हैं। जोर जुल्म, डर, भय दिखाकर उनका शोषण करते, उन्हें जी भरकर लूटते हैं। उनके घर की स्त्रियों का अपमान और बलात्कार करते हैं। फिर भी उनके विरुद्‌ध कोई आवाज नहीं उठाता। आखिर ऐसा कौन सा कठोर विधान है जिसने हजारों क्षुधितों को अनुशासन में बाँध रखा है? कफ से जकड़े हुए दोनों फेफड़े, ओढ़ने को वस्त्र नहीं, सोने को चटाई नहीं, पुआल भी नहीं। भीगी हुई धरती पर लेटा न्यूमोनिया का रोगी मरता नहीं है, जीता है। यही डॉ. प्रशांत के आश्चर्य का कारण है। वह सोचता है– "डी.डी.टी. और मसहरी की बात तो बहुत बड़ी हुई, देह में कड़वा तेल लगाना भी स्वर्गीय भोग–विलास में गण्य है। तेल–फुलेल तो जमींदार लोग लगाते है। स्वर्ग की परियाँ तेल–फुलेल लेकर पुण्य करने वालों की सेवा करती हैं। खेतों में फैली हुई काली मिट्‌टी की संजीवनी इन्हें जिलाए रहती है।" (वही,

पृ.सं. 174)। प्रशांत को लगता है कि बेजमीन आदमी–आदमी नहीं जानवर है। यही कारण है कि रेणु ने अपने दूसरे प्रमुख उपन्यास 'परती परिकथा' में जमीन की समस्या को ही मुख्य रूप से उभारा है।

दो खंडों में लिखित 'मैला आँचल' के पहले खंड की कथा व्यवस्थित, संतुलित और शृंखलाबद्ध नहीं है। दूसरे खंड में इस अव्यवस्था को थोड़ा कम करने की कोशिश की गई है। 'मैला आँचल' विभिन्न प्रसंगों और घटनाओं की अवतारणा का उपन्यास है। प्रत्येक प्रसंग किसी न किसी रूप में ग्रामीण जीवन की कथा कहते हैं। बिदापत नाच में भी हास्य–व्यंग्य के माध्यम से कोई न कोई समस्या उभर ही आती है। गाँव भर के लोग तहसीलदार साहब के खम्हार में जमा हैं। बिदापन नाच में ग्रामीण रमे हुए हैं। नटुआ दोनों हाथ जोड़कर फन काढ़े गेहुअन साँप की तरह हिलते–डुलते बैठ रहा है। धरती पर घाघरी पुरैन के पत्ते की तरह बिछी हुई है। मिनती करती है– "आहे छोडू–छोडू जदुपति आँचर हो, हो भींगत नब सारी।" उधर से आवाज आती है– "हाँ भैया कोटा–कनटरोल का जमाना है। कपड़ा नहीं मिलता। जरा होशियारी से....।" (वही, पृष्ठ 81)। बालदेव जी कपड़े की पुर्जी बाँट रहे हैं। उनका राह चलना मुश्किल हो गया है। दिसा–मैदान जाते समय भी लोग उनका पीछा नहीं छोड़ते। कफन और सराध में दिया जाने वाला कपड़ा गौना के नाम पर ले जाने के लिए तैयार हैं। बच्चे तो नंग–धडंग भी रह लेंगे लेकिन उम्रदराजों का क्या होगा? प्रेमचंद ने भी रोटी, कपड़ा, मकान के अभाव को अनेकानेक बार अपनी कृतियों में उठाया है किंतु क्या इसका कोई असर पड़ा है। आज भी कुछ लोग भूखे नंगे सोने के लिए अभिशप्त हैं। सड़क की पटरियों, प्लेटफार्मों और किसी सुनसान में दिन काटने के लिए मजबूर हैं। मैला आँचल में प्रशांत ममता को लिखता है– "वह आदमी का डॉक्टर है, जानवर का नहीं.... भूख और बेबसी से तिल–तिल कर घुल–घुल कर मरने के लिए उन्हें जिलाना बहुत बड़ी क्रूरता होगी.... यहाँ इनसान हैं कहाँ? ....अभी पहला काम है, जानवर को इनसान बनाना।" (वही, पृष्ठ 175)। प्रशांत के भीतर की यह करुणा ही उसे सेवाभाव में जुटने के लिए प्रेरित करती है।

'गोदान' के गोबर, मेहता और मालती की तरह ही 'मैला आँचल' में बालदेव, कालीचरण तथा डॉ. प्रशांत आदि आधुनिक युग के प्रतीक हैं। बालदेव कांग्रेस का कार्यकर्ता और गांधी भक्त है। वह भी कुछ गलत होने पर अनशन करने की बात कहता है। वह लोगों को समझाता है– "बैस्नव जन उसको कहते हैं जो पीर पराई जानता है।" वह मेरीगंज को चन्नन पट्टी की तरह बनाने की इच्छा रखता है तथा गाँव में मैला खुद साफ करने की बात कहता है। कालीचरण का चरित्र देश में विकसित राजनीतिक चेतना का प्रतीक है। सोशलिस्ट पार्टी का प्रचार अपने गाँव में वही करता है। वासुदेव कालीचरण का साथी है। वह कांग्रेस के तिरंगे झंडे को खिचड़ी पार्टी का तिरंगा झंडा कहता है जिसमें जमींदार हैं, सेठ हैं और पासंग मारने के लिए थोड़ा किसान–मजदूरों को भी मेंबर बना लिया गया है। देहाती जीवन में राजनीति के प्रवेश को रेणु ने बड़ी सूक्ष्मता से देखा था। हर छोटी राजनीतिक घटना पर उनकी नज़र थी। उन्होंने यह लक्षित किया था कि राजनीति में भी जातिवादी जहर प्रविष्ट हो गया है– "पिछले आठ–दस वर्षों से जातिवाद ने काफी जोर पकड़ा है। राजनीतिक पार्टियाँ भी जातिवाद की सहायता से संगठन करना जायज समझती हैं। राजनीति के दंगल में सब कुछ माफ।" वर्तमान परिदृश्य तो और भी भयावह है। जाति के नाम पर अक्षम, अपराधी, हत्यारे, बलात्कारी, दबंग, गुंडे (शिष्ट भाषा में बाहुबली) चुनकर संसद और विधानसभाओं की शोभा बढ़ाने के लिए भेजे जा रहे हैं।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' की सहानुभूति वंचितों और शोषितों के प्रति कुछ अधिक है। होनी भी चाहिए। उन्हें हर तरह से दबाया और कुचला गया है। उनका शोषण किया गया है। आज दलित विमर्श उन्हें न्याय दिलाने और उनका जीवन–स्तर उठाने के लिए प्रयत्नशील है। विमर्श में अधिकार छीनकर लेने की वकालत तक हो रही है। रेणु ने छोटी जाति एवं छोटे तबके के लोगों को उठाने में अपना सक्रिय योगदान दिया है। ततमा टोली,

दुसाध टोली ओर संथालों के नारकीय जीवन को करुणा के साथ उभारा है। यादवों के प्रति सहानुभूति दिखाई है लेकिन उनमें विवेक का अभाव है। वे बात–बात में लाठी का प्रयोग करने लगते हैं। रेणु ने उच्च जातियों के अनाचार, पापाचार और शोषण आदि की खिल्ली उड़ाई है, व्यंग्य और कटाक्ष किया है। राजाओं और सामंतों के भोग–विलास तथा दुराचार आदि की निंदा की है। डॉक्टर प्रशांत तक इस प्रकार की खबरें पहुँचती रहती हैं– राजपारबंगा के कुमार जी उसकी मुटठी में हैं। डफ साहब की बेटी जब तक रहेगी, कुमार जी डफ साहब को नहीं हरा सकते है। बड़ा ऐय्यास है– राजा भूपत। पुत्याह में बनारस, इलाहाबाद और लखनऊ से इतनी बाई जी आती हैं कि तीन दिन तीन रात महफिल जमी रहती है। एक मिनट भी बंद नहीं होती। अमलेश घर की नौकरानियों से व्यवहार करने के बाद अब अपनी चचेरी बहन के पीछे पड़ा हुआ है। इस तरह एक ओर समाज का यह मद्यपी और विलासी वर्ग है तो दूसरी ओर हल फाल, काम–काज बंद करने में मालिक लोगों द्वारा मजदूरी नहीं दिए जाने की स्थिति में जीविका चलाने का यह विकल्प है– "ततमा और दुसाध टोली के लोगों की बात जाने दीजिए। उनकी औरते हैं। सुबह से दुपहरिया तक कमला में कादो–पानी हिड़कर एक दो सेर गैंची मछली निकाल लाएँगी। चार सेर धान का हिस्सा लग जाएगा। बाबू लोगों के पुआल के टालों के पास धरती खरोंचकर, चूहे के माँदो को कोड़कर भी कुछ धान जमा कर लेंगी। नहीं तो कोठी के जंगल से खमरआलू उखाड़ लाएँगी।" (वही, पृष्ठ सं.17) कहना न होगा कि रेणु ने सामाजिक आर्थिक वैषम्य को जिस सूक्ष्मता और गंभीरता से उभारा है उस तरह का वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि रेणु ने कोई फार्मूलाबद्ध विमर्श नही खड़ा किया लेकिन उन्होंने दलितों और पिछड़ों को जिस तरह अपनी रचनाओं में स्थान दिया है, उनके दुख–दारिद्रय, अभाव और उदासी को अभिव्यक्त किया है, उनमें अपने अधिकारों के प्रति चेतना और जागरूकता उत्पन्न की है, उसे क्या दलित विमर्श की कोटि में परिगणित नहीं किया जाना चाहिए।

किसान और मजदूर राज कायम करने की अभिलाषा और संघर्ष भी 'मैला आँचल' में वर्णित है। कालीचरन दलितों और वंचितों के नेता के रूप में लोगों में आक्रोश का संचार करता है। उनमें चेतना तथा जागरूकता उत्पन्न करता है ताकि वे अपना मुँह खोल सकें। अपने पर होने वाले अत्याचारों का विरोध कर सकें। असहायता और असमर्थता की खोल फेंककर अपने अधिकारों के प्रति सक्रिय, सचेष्ट और संघर्षशील हो सकें। वह कर्तव्यनिष्ठ, परिश्रमी तथा सीधे–सादे संथाल किसानों के दिमाग की मुद्दत से उलझी हुई गुत्थी सुलझाते हुए कहता है– "जमीन किसकी... जोतने वालों की। जो जोतेगा वह बोएगा, जो बोएगा वह काटेगा। कमाने वाला खाएगा। इसके चलते जो कुछ हो। .....बिरसा माँझी का जवान बेटा मंगल माझी कालीचरन के वाक्यों को गीतों की कड़ी में जोड़ने की चेष्टा करता है.... जोहिरे जोतबे सोहिरे बोयबे।" (वही, पृष्ठ सं. 100)। यहाँ यह स्मरणीय है कि 'मैला आँचल' में स्वतंत्रता पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर मेरीगंज की कथा कही गई है। जिस तरह का देशकाल है उसी तरह की राजनीतिक स्थिति इस गाँव की भी है। वह समय था स्वतंत्रता आंदोलन का। बालदेव और कालीचरन उसमें भाग लेते हैं, जुलूस निकालते हैं। नारा लगता है– किसान राज कायम हो। मजदूर राज हो कहना न होगा कि इस उपन्यास में गांधी की विचारधारा भी है और मार्क्स की चितंनधारा भी। समानता और शोषण से मुक्ति की आकांक्षा दोनों में ही है लेकिन एक बुनियादी फर्क यह है कि जहाँ मार्क्सीय चिंतन में शोषण से मुक्ति हेतु उग्रता और क्रांति को जगह मिली है वहीं गांधी चिंतन में अहिंसा की प्रमुखता है। यही कारण है कि कालीचरन और अन्य कामरेड जहाँ संघर्ष और हिंसा पर उतारू हो जाते हैं वही बालदेव अनशन की बात करने लगते हैं। कामरेडों का कहना है कि श्रम का विभाजन और श्रम का मूल्य औचित्य पूर्ण होना चाहिए। पूंजीवाद का समूल नाश होना चाहिए। इसके लिए चाहे क्रांति ही क्यों न करनी पड़े? किसान सभा में

कामरेड सैनिक जी के भाषण से आग निकल रही है– "जिस तरह सूरज का डूबना एक महान सच है, पूंजीवाद का नाश होना भी उतना ही सच है। मिलों की चिमनियाँ आग उगलेंगी और उनपर मजदूरों का कब्जा होगा। चारों ओर लाल धुँआ मँडरा रहा है। उट्ठों किसानों के सच्चे सपूतों, धरती के सच्चे मालिकों, उट्ठो! क्रांति का मशाल लेकर आगे बढ़ो।" (वही, पृष्ठ 103)। इस तरह मेरीगंज विभिन्न पार्टियों और दलों का रण स्थल सा बन गया है जो समग्र भारत में व्याप्त जीवन–पद्धति का चित्र उपस्थित करता है।

'मैला आँचल' की ममता के चरित्र में शरत्चंद्र के उपन्यासों की नारी के समान आस्था है। वह आस्थावान होकर आगे बढ़ती है तथा दूसरों को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है। मानवीय भावनाओं को अपने स्नेह–बल से जीवित रखती है। किंतु इसे छोड़ उपन्यास के बाकी नारी चरित्रों में रेणु ने शिष्टता, शालीनता, श्लीलता, मर्यादा और नैतिकता का समावेश क्यों नहीं कराया है? उन्हें इतना कमजोर क्यों दिखाया है जो किसी न किसी कामुक पुरुष की कामुकता और लंपटता का सहज शिकार हो जाती हैं? लक्ष्मी महंथ सेवादास की काम–तृप्ति करती है। लरसिंह दास भी उसके लिए लालायित है। नागा साधु की काम–दृष्टि भी उस पर लगी हुई है। रामदास उसे अपनी दासी बनाना चाहता है लेकिन जब लक्ष्मी पर उसका वश नहीं चलता तब वह रमपियरिया को ले आता है। रमपियरिया सात बेटों के बाप छीतन से फँसी हुई है। लक्ष्मी एवं बालदेव तथा कमला और डॉ. प्रशांत के प्रेम प्रसंगो से उपन्यास के पन्ने भरे पड़े हैं। मँगला देवी और कालीचरन का रोमांस चर्चा का विषय बना हुआ है। लरसिंह दास सोनमनिया कहारिन की बेटी रधिया को भगा ले जाता है लेकिन उसको इसलिए छोड़ देता है कि उसमें प्रेम की एकनिष्ठता नहीं है– "नौटंकी कंपनी के मालिक की ही बात रहती तो वह सह ले सकता था, हारमोनियम और नगाड़े वाले भी रधिया को कभी फुर्सत नहीं देते थे। कभी ताल का रिहर्सल करना है तो कभी नाच सिखाना है।" (वही, पृष्ठ सं. 63)। फुलिया सहदेव मिसर के साथ रासलीला रचाती है। खलासी से विवाह करके भी पैटमैन के साथ भाग जाती है। अब प्रश्न उठता है कि नारी–चरित्र की इस भ्रष्टता का कारण क्या है? रेणु ने इन अनैतिकताओं को उपन्यास में इतनी जगह क्यों दी है? मैला आँचल को क्या रोमांचक और सनसनीखेज बनाना ही उनका उद्देश्य रहा है? मुझे ऐसा लगता है कि रेणु गाँव में मौजूद इस मैल की सफाई के लिए ही उसे इतना विस्तार देते हैं। वे उन कारणों की तलाश भी करते हैं जो इनके मूल में विद्यमान हैं। वे यह दिखाना चाहते हैं कि अमीरों, साधन संपन्नों और दबंगों की नजर में नारी मात्र मनोरंजन का साधन है। धनबल और बाहुबल से गरीबों की जवान बेटियों–बहुओं का यौन–शोषण उनका अधिकार है। सहदेव मिसर फुलिया के यहाँ पकड़ा जाता है लेकिन पंचायत में फुलिया और मँहगूदास उसके विरुद्ध कुछ भी नहीं बोलते क्योंकि फुलिया को डर है कि सहदेव ने उसके बाप को कर्जा दिया हुआ हैं। कहीं वह उनका अहित न कर दे। रेणु की दृष्टि में इस अनैतिकता का कारण अर्थाभाव भी है। आत्मरक्षा का साहस नहीं दिखाया है। यदि वे ऐसा कर पाए होते तो वह उपन्यास स्त्री–विमर्श की दृष्टि से भी महत्ता के साथ याद किया जाता।

उपन्यास के अंत में लेखक ने किसानों की नीलाम की हुई, जब्त की हुई जमीन तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद द्वारा लौटवाकर जहाँ विश्वनाथ प्रसाद की लूट और शोषण का प्रायश्चित करवाया है वहीं किसानों के चेहरों पर, मुर्दा चमड़ों पर लाली लौटाने का प्रयत्न भी किया है। इसी अर्थ में 'मैला आँचल' मुरझाए ओठों पर मुस्कान लाने की कामना की गाथा है जिसे डॉक्टर प्रशांत के सेवाभाव के संकल्प से और बल मिला है।

– एन.जी. 22, टाइप–5 नयागाँव, चक्करगाँव पोर्ट ब्लेयर, अंडमान–744112

❑❑❑

थारू–लोकगीतों का भाषिक सौंदर्य

डॉ. प्रणव शास्त्री (डी. लिट्.)

थारू–जनजाति हिमालय की तराई के विभिन्न स्थानों में निवास करती है। उत्तर प्रदेश के नैनीताल जनपद की खटीमा और सितारगंज तहसीलों के एक बड़े क्षेत्र में थारू रहते हैं। यहाँ 95 प्रतिशत राना थारू हैं। शेष क्षेत्रों में गढ़ोरा, धँगरा और गुसाई आते हैं। राना थारू राजपूतों को अपना पूर्वज कहते हैं। इनका अन्य थारूओं से रोटी–बेटी का संबंध नहीं है।

थारूओं की बोली के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। श्रीमती कमला सांकृत्यायन ने थारूओं का किरात जाति से संबंध मानते हुए उनकी भाषा पर भी विचार किया है। उनके अनुसार, थारू अपनी पुरानी भाषा सैकड़ों वर्ष पहले भूल चुके हैं और अपने पड़ोसियों की तरह अवधी, भोजपुरी या मैथिली बोलते हैं।[1]

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय का मत भी लगभग यही है कि थारूओं की अपनी कोई भाषा नहीं है। उन्होंने अपने आर्य पड़ोसियों की भाषा को पूर्ण रूप से अपना लिया है।[2] कुमाऊँ–लोकसाहित्य के अध्येता डॉ. त्रिलोचन पांडे ने नैनीताल के थारूओं की बोली–मिश्रित ब्रज कहा है।[3] नैनीताल के थारूओं की भाषा के स्वरूप–निर्धारण के लिए डॉ. पांडे के मत को विशष रूप से केंद्रबिंदु बनाया जा सकता है; क्योंकि अन्य समीक्षकों के मत सामान्य रूप से सभी थारूओं के आधार पर बने हैं, जबकि डॉ. पांडे ने कुमाऊँ–लोकसाहित्य के अंतर्गत थारू–लोकसाहित्य पर भी कुछ पृष्ठ प्रस्तुत किए हैं। थारू–लोकसाहित्य समृद्ध है। उनके लोकगीतों में उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, धार्मिक तथा आर्थिक झाँकी मिलती हैं। यहाँ लोकगीतों के आधार पर थारू बोली का स्वरूप निर्धारित किया जा रहा है।

संज्ञा

एकवचन : थारू–बोली में, खड़ी बोली की प्रवृत्ति के अनुसार, कुछ संज्ञाएँ आकारांत तथा कुछ ओकारांत मिलती हैं। यथा– खजाना[4], सरसों[5], ऊधो[6] आदि।

बहुवचन : खड़ी बोली के अनुसार, तिर्यक् बहुवचन 'ओं' प्रत्यय के साथ मिलते हैं। यथा– यारों[7], किसानों[8]। कुछ शब्द 'इयाँ' प्रत्यय से युक्त हैं। यथा : बहियाँ[9], बहिनियाँ[10]। कुछ शब्दों में 'न' के संयोग से विकार उत्पन्न हो जाता है और दीर्घ 'आ' ह्रस्व 'अ' में परिणत हो जाता है। यथा– तिरिया से तिरियन[11]। कुछ में 'यन' आता है और दीर्घ 'ई' ह्रस्व 'इ' में बदल जाती है। यथा– गली में गलियन[12], सखी में सखियन[13]। कुछ शब्दों में 'न' के संयोग से विकार उत्पन्न हो जाता है और दीर्घ 'ई' ह्रस्व 'इ' में परिणत हो जाती है। यथा– खिड़की से खिरकिन[14]।

लिंग

स्त्रीलिंग शब्द 'इया' प्रत्यय से युक्त मिलते हैं। यथा–बिटिया[15], पुरिया[16]। 'ई' प्रत्यय से भी युक्त स्त्रीलिंग शब्द प्राप्त होते हैं। यथा – घोड़ा से घोड़ी, बछेड़ा से बछेड़ी[17]। जैसा पहले कहा गया, कुछ शब्दों में 'न' प्रत्यय से विकार उत्पन्न हो जाता है और दीर्घ 'ई' ह्रस्व 'इ' में बदल जाती

है। यथा–जोगी से जोगिन[18]। कहीं–कहीं 'ई' प्रत्यय लघुत्व का बोधक है। यथा–कटारी[19]। कुछ शब्दों में 'इया' प्रत्यय का संयोग मिलता है। यथा–गिलसिया[20]। यहाँ गिलसिया शब्द लघुत्व का बोधक है। कुछ शब्द पुलिंग है, परंतु उनका प्रयोग स्त्रीलिंग में किया जाता है। यथा–लाल[21], कमल[22]। साधारण बोलचाल में थारू लिंग का ध्यान नहीं रखते। थारू–स्त्रियाँ स्त्रीसुलभ अभिव्यक्तियों में पुलिंग का प्रयोग करती हैं।

सर्वनाम

उत्तमपुरुष में : 'मैं'[23] का प्रयोग खड़ी बोली की भाँति होता है। संबंधवाचक विभक्ति – 'एर' के साथ, मेरे, मेरी, मेरो और मोरी[24] रूप मिलते हैं। इसका तिर्यक् रूप 'मोय' तथा 'मोके'[25] मिलता है।

बहुवचन : 'हम' का रूप संबंध–विभक्ति के साथ मिलता है, परंतु 'हमारे' न होकर 'हमरो'[26] हो जाता है। कर्म संप्रदाय–विभक्ति 'एँ' के साथ संयुक्त होकर 'हमें'[27] हो जाता है। संबंध–विभक्ति के साथ 'हमारी'[28] ही मिलता है। 'हम'[29] का प्रयोग मूल रूप से भी हुआ है। मध्यपुरूष में : ब्रजभाषा की प्रवृत्ति के अनुसार, एकवचन 'तै'[30] मिलता है। संबंधवाचक विभक्ति से युक्त रूप 'तेरे' और 'तेरी'[31] है। बहुवचन में 'तुम'[32] का प्रयोग मिलता है। आत्मवाची सर्वनाम के सविभक्तिक रूप हैं : 'आपनी', 'आपने', 'आप'[33]। निश्चयवाचक का बहुवचन रूप 'ये' तथा 'जे'[34] मिलता है। दूरवर्ती निश्चयवाचक में एकवचन 'वह' का तिर्यक् रूप 'वाको'[35] और 'वाकी'[36] मिलता है। 'वे' के तिर्यक् रूप 'उन'[37] और 'उनहूँ'[38] मिलते हैं।

संबंधवाचक का एकवचन रूप 'जो'[39] तथा बहुवचन 'जे'[40] मिलता है। अनिश्चयवाचक एकवचन में 'कोई'[41] का प्रयोग मिलता है। प्रश्नवाचक का मूल 'कौन' तथा तिर्यक् 'कासे'[42] मिलता है। पूर्णवाचक में 'सब', 'सबन', 'सबहि'[43] आदि का प्रयोग मिलता है। विशेषण–संख्यावाचक गणनात्मक रूप हैं : 'एक', 'तीन'[44] आदि। 'एक' का दूसरा रूप 'इक'[45] भी मिलता है। क्रमावत रूप है : 'पहलो', 'दूसरो', 'तीसरो'[46] आदि।

गुणवाचक 'ए' प्रत्यय–युक्त रूप है : 'हरे–हरे'[47]। समस्त का भाव व्यक्त करने वाले 'ओ' अथवा 'औ' प्रत्यय–युक्त रूप हैं : 'सारो'[48]। बिना प्रत्यय का रूप है: 'सयानी'[49]। परिणामवाचक रूप है : 'तिनक'[50]। निश्चयवाचक संख्याओं में 'ओं' प्रत्यय से निश्चित संख्यावाचक विशेषण बनते हैं। यथाः 'दोनों, पाँचों'[51]।

क्रिया

वर्तमानकालिक कृदन्त में 'त' प्रत्यय मिलता है। यथा – 'उड़ावत, ढरत'[52]। भूतकालिक कृदन्त पुलिंग एकवचन में 'ओ–औ' प्रत्यय मिलते हैं। यथा – 'पठायो, भयो, गयौ'[53]। पुलिंग बहुवचन में 'ए' प्रत्यय मिलता है, यथा – 'तजे'[54]। स्त्रीलिंग की स्थिति में 'ई' प्रत्यय मिलता है, यथा – 'बिछाई'[55]। खड़ी बोली से प्रभावित 'आ' प्रत्यय वाले रूप भी मिल जाते हैं, यथा – 'गया'[56]।

एक ही क्रिया के त्रिविध रूप मिलते हैं, यथा – 'गौ, गयो, गयौ'[57]। कर्तृवाचक कृदन्त क्रियार्थ संज्ञा के विकारी रूप के साथ 'ऐया' या 'वारे' प्रत्यय से युक्त रूप मिलते हैं, यथा – 'धरैया'[58], हाँकनवारे'[59]। आज्ञार्थक रूप 'औ' या 'ओ' प्रत्यय के साथ मिलते हैं, यथा – 'दीजौ, लइयो'[60]। संयुक्त क्रियाएँ वर्तमानकालिक के साथ मिलती हैं, यथा – 'चढ़त है'[61] 'पड़ी है'[62]। भूतकालिक कृदंत के साथ मिलने वाली सहायक क्रिया है – 'पजर गयौ'[63]। सहायक क्रिया 'होना' का संभाव्य भूत रूप 'होती'[64] मिलता है। क्रियाविशेषण कालवाचक रूप है – 'सांझ', 'दिन–रैन'[65] आदि।

स्थानवाचक रूप हैं 'ऊपर'[66] दिशावाचक रूप 'उतै', 'हूनै'[67], रीतिवाचक रूप 'न'[68] तथा परिमाणवाचक रूप 'बहुत'[69] मिलते हैं। संयुक्त अव्यय–संज्ञाओं की द्विरूक्ति 'खेतन–खेतन'[70], क्रियाओं की द्विरूक्ति 'छट–छट'[71], 'उड़–उड़'[72], क्रियाविशेषणों की द्विरूक्ति 'घरी–घरी'[73] तथा विशेषणों की द्विरूक्ति 'तिनक–तिनक', 'लंबी–लंबी'[74] आदि मिलते हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम देखते हैं कि थारू भाषा में ब्रजभाषा की ओकारांत और औकारांत, कन्नौजी की ओकारांत तथा खड़ी बोली की आकारांत प्रवृत्ति मिलती है। सर्वनामों के अधिकांश रूप ब्रजभाषा की प्रवृत्ति के अनुसार हैं, खड़ी बोली का 'ड़' भी मिलता है और 'र'[75] भी।

ब्रजभाषा की प्रवृत्ति के अनुसार, 'य' का 'ज' तथा 'ण' का 'र'[76] मिलता है। 'श' का 'स'[77] दोनों मिलते हैं। क्रियारूपों के 'हतो', 'हते' आदि प्रयोग नहीं मिलते। ब्रजभाषा का 'गयो, भयो' कन्नौजी की प्रवृत्ति के अनुसार 'गओ', 'भओ' भी हो जाता है। लिंग के संबंध में थारूओं में गड़बड़ी है। पुंलिंग–स्त्रीलिंग के प्रयोग में सर्तकता नहीं बरती जाती। निष्कर्ष रूप में कहा जाता है कि थारू भाषा कन्नौजी और खड़ी बोली–मिश्रित ब्रजभाषा है। इस प्रकार, थारू–लोकगीतों की भाषा हिंदी की ही एक बोली है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिंदी साहित्य का वृहत इतिहास (सोलहवाँ भाग, पृ. 657)
2. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय : भोजपुरी और उसका साहित्य, पृ. 22–30
3. डॉ. त्रिलोचन पांडे– कुमाँऊ का लोक साहित्य– पृ. 66
4. धन दौलत और माल खजाना।
5. खेतन फूली है सरसों।
6. ऊधो जाय दुआरिका मैं कहियो इतनी अरज मेरी हर सों।
7. खड़ी यारों से बतराती।
8. किसानों मैया नाँय गुजारों कोइ ढ़ंग से।
9. हरो रे दुबट्टा नाजुक बहियाँ।
10. मैया बहिनियाँ सब काहू की।
11. जे तिरियन के काजे लछिमन भैया पिरान तजे।
12. नैना अटके अलियन गलियन।
13. सब सखियन की बात निहारि और अंतर की बात।
14. खिरकिन मैं देख ठाढ़ी राधा।
15. बिटिया देय असीस।
16. पुरिया खबैहों सब घर।
17. घोड़ी भी हारे, बछेड़ी भी हारे।
18. पिया के वियोग में जोगिन हुई निकासी।
19. बैरिन हुई गई सौत कटारी।
20. हाथ गिलसिया, हाथ में बोतल, राम–राम कर पीता है।
21. घर मैं से एक लाल निकारी।
22. जल सूको कमल मुरझानी।
23. मैं हारी समुझाय पियाँ तोके।
24. (क) कहा खबैहों मेरे हाथी–घोड़ा
    (ख) अब तौ साम मेरी बहियाँ मरोरी।
    (ग) तैं का बाबुल मेरा ठाड़ो हेरै।
    (घ) सूरदास मोरी इतनी अरज है।
25. (क) मोय बिनु कंत बसंत न भावै।
    (ख) कहत अटपटी हमसे मोकै नाँय सुहाय।
26. हमरो पिया जुहारन रे सो हर–हर सीताराम।
27. हमें लगावौ दोस कान्ह तुम भयँ अधकारे।
28. सो गत भई हमारी।
29. हम जानी हमहिं पर बीती।
30. तैं का बाबुल मेरो ठाड़ो हेरै।
31. (क) अत कोमल बनमाँही लाल तेरे लछिमन रघुराई।
    (ख) बिगर जाएगी तेरी सूरत।
32. तुम बिछुरत मेरे अँसुआ ढरत हैं।
33. (क) हमैं बतावै गमार आपनी करै बड़ाई।
    (ख) सो होरी चली।
    (ग) हमैं बतावै चोरटी आप बने साहब।
34. (क) ऐसी छाती बजर गात की कहाँ से ये लाई।
    (ख) जे तिरियन के काजे लछिमन भइया पिरान तजे।
35. इक्का बाको रंग–बिरंगो पहिया गोलंदाज।
36. डेहरी मैं ठाड़ी बाकी अम्मा टेरै।
37. बइयाँ पकर उन झपट लई।
38. इक दिन गहन उनहूँ कौ घेरै।
39. (क) जो बनसी मेरी मोल की क्यों न देव गमार।
    (ख) जो बनसी को सार कहा तुम जानौ गुवालिन।
40. जे तिरियन के काजे लछिमन भइया पिरान तजे।
41. है कोई छैला मार गिरावै।
42. (क) कौन भये असवार कौन रथ हाँकनवारे।
    (ख) कहन कासे दुख जाऊँ।

43. (क) रूप सरूप अनूप देखकर वन सब हो जाई।

(ख) कैसि कारन बनोवास दियो है सबन कौ दुखदाई।

(ग) देही धरार सबहिं पर बीती।

44. (क) एक बाँह मेरी अरकै–फरकै।

(ख) तीन भुमन पत राखतो मन मुरली से लागो।

45. इक दिन गहन, उनहूँ पर बीती।

46. (क) पहलो घैला...

(ख) दूसरो घैला...

(ग) तीसरो घैला...

47. हरे–हरे बाँस की बनी से बँसुरिया।

48. सारो पाताल जाके विष काँपे।

49. खड़ी सयानी नार...।

50. तिनक–तिनक नाँय आवै।

51. (क) मेरे जे दोनों जुबना में रस नाँय।

(ख) पाँचों भइया आगू लेन पठाये।

52. (क) घूर उड़ावत कर सों।

(ख) तुम बिछुरत मेरे अँसुवा ढरत हैं।

53. (क) तोय हियाँ कौन पठाओ।

(ख) का सोवौ नल भोर भओ।

(ग) पजर गयौ रे।

54. लछिमन भइया पिरान तजे।

55. फूलन सेज बिछाई।

56. एक खसम गया चोरी।

57. जर गयो जंगल, पजर गयौ रे तरूवर हुई गौ खाक।

58. अकेलो धीर धरैया कोई नाँय।

59. कौन भओ असवार कौन रथ हाँकनवारे।

60. (क) दीजौ उच्चाय।

(ख) हाँ री बहू पनिया भर लइयो।

61. देवी के आँगन बकरा चढ़त है।

62. कोई छैला की नजर पड़ी है।

63. जर गयो जंगल पजर गयौ रे।

64. हाथों में मेरे चूड़ी होती तौ मेरा मन भावेगा।

65. (क) साँझ भओ दिन, अथवन लागो तुलसी के मन में सोच।

(ख) लकुरा बीमन गई जलाकै हूनै मजा उड़ाई।

66. चार यार जुर लै चले ऊपर चद्दर डारे।

67. (क) उतै से आवै हुई जगते से रसिया लचपच खेलैं सिकार।

(ख) लकुरा बीमन गई जलाकै हूनै मजा उड़ाई।

68. आधी रात कुइलिया बोलै कूक सही न जाई।

69. लांगुर तुम–से बहुत हैं हमसे माँगत दान।

70. खेतन–खेतन खइया खुदाई।

71. मेरो सुरमा छुट–छुट जाए।

72. मेरा कंचड़ उड़–उड़ जाए।

73. घरी–घरी मेरो आँचल उझकै।

74. (क) तिनक–तिनक नाँय आवै।

(ख) लंबी–लंबी केस कमल को।

75. खिरकिन में ठाढ़ी देख राधा।

76. नील जामुन के तीर किरसन असनान न आवै।

77. (क) देवी के आँगन पीपर सोहै।

(ख) गिरधर लाल सरन तेरी आयो।

78. सोलह शृंगार : डॉ. शम्भु शरण शुक्ल, पृ. 61–66

79. आदिवासी जनजाति : प्रो. धर्मेंद्र पारे, पृ. 12

80. हिंदी लोकगीत : डॉ. प्रणीता गोस्वामी, पृ. 22

– 'कल्पतरू' ए–30, वसुंधरा कॉलोनी, पीलीभीत, उत्तर प्रदेश–262001

❑❑❑

निर्मला पुतुल की 'नगाड़े की तरह बजते शब्द' में चित्रित आदिवासी स्त्री समाज और संस्कृति

डॉ. पठान रहीम खान

हिंदी साहित्य इतिहास में भले ही शुरुआती समय में स्त्री जीवन पर लेखन कार्य कम हुआ है, परंतु जैसे–जैसे साहित्य में विधाओं का आगमन हुआ, वैसे–वैसे ही स्त्री लेखन में भी विकास हुआ। हिंदी साहित्य क्षेत्र में कई विधाओं के माध्यम से स्त्री जीवन को दर्शाने का भरपूर प्रयास किया गया है। पहले पुरुष साहित्यकार अपने लेखन में स्त्री जीवन के अहम मुद्दों को उभारते हुए, उसके जीवन की सभी समस्याओं को सामने रखते थे। जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटक में स्त्री पात्र केंद्रित 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक रच कर स्त्री समस्याओं को उभारा है, तो वहीं प्रेमचंद ने 'निर्मला' उपन्यास में स्त्री जीवन तथा उसकी स्थिति को उभारने की कोशिश की है। ऐसे ही अन्य रचनाकारों ने अपने लेखन में स्त्री को केंद्र में रखकर, उनकी समस्याओं को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। परंतु क्रमशः स्त्री लेख के विकास ने इसे एक नया आयाम दिया। स्त्री ने स्वयं अपनी समस्याओं पर न केवल लेखन आरंभ किया, बल्कि आवाज़ उठाना तथा सवाल करना भी प्रारंभ किया है। अतः आज हमारे सामने कई लेखिकाएँ हैं, जो साहित्य की अनेक विधाओं के माध्यम से स्त्री जीवन के अनेक पक्षों को चित्रित करने में सक्षम बनी हैं। जैसे– मालती जोशी, ममता कालिया, गीतांजलीश्री, मेहरून्निसा परवेज़, नासिरा शर्मा, सुशीला टाकभौरे, रजनी तिलक, रजत रानी मीनू, गीताश्री, विभा रानी, क्षमा शर्मा जैसी अनेक महिला रचनाकारों ने हिंदी साहित्य में अपने लेखन के माध्यम से योगदान दिया है। इन्हीं में से निर्मला पुतुल का नाम भी उल्लेखनीय है और समकालीन साहित्यकारों में इनका नाम अत्यंत आदर के साथ लिया जाता है। निर्मला पुतुल जी न केवल अच्छी लेखिका के रूप में प्रसिद्ध हैं, बल्कि समकालीन सामाजिक समस्याओं को उभारने में इनका नाम अग्रणीय है। निर्मला पुतुल का 'नगाड़े की तरह बजते शब्द' एक प्रसिद्ध कविता संग्रह है। इसका प्रकाशन वर्ष 2012 है, जिसमें इन्होंने आदिवासी स्त्री जीवन के अनेक पहलुओं को रेखांकित किया है।

कवयित्री निर्मला पुतुल जी कहती हैं कि– मेरे शब्दों को मैं ऐसे देखना चाहती हूँ कि– जो आँख रहते हुए भी अंधे आदमी की तरह रहते हैं, उनके आँखों के शब्द बनना चाहती हूँ और जो जुबान रहकर भी गूँगे की तरह रहते हैं उनकी जुबान बनना चाहती हूँ। वह यह कहना चाहती है कि– मेरे शब्द ऐसे हों, जो 'नगाड़े की तरह बजे'। निर्मला पुतुल 'मैं चाहती हूँ' कविता में अपनी संवेदना को व्यक्त करती हुई कहती हैं कि–

चाहती हूँ मैं
नगाड़े की तरह बजे
मेरे शब्द
और निकल पड़े लोग
अपने–अपने घरों से सड़कों पर।[1]

अर्थात् वह अपने शब्दों के माध्यम से एक क्रांति लाना चाहती है, जिसमें मानव अपनी सदियों की चुप्पी को तोड़कर, घर से बाहर आकर संघर्ष की राह पर निकले।

निर्मला पुतुल अपनी संवेदना को व्यक्त करती हुई कहती हैं कि– जीवन में अनेक कष्टों को झेलते हुए, ऊबड़–खाबड़ रास्ते पर चलते–चलते मेरी भाषा भी रूखड़ी हो गई है। वह अपनी संवेदना को व्यक्त करती हुई कहती हैं कि–

"चिकनी–चुपड़ी भाषा की उम्मीद न करो मुझसे
जीवन में ऊबड़–खाबड़ रास्ते पर चलते
मेरी भाषा भी रूखड़ी हो गई।[2]

जीवन में मीठे बोल बोलने वाले कई लोग मिलते हैं। परंतु जिनका संपूर्ण जीवन ही संघर्ष भरा हो, उनसे मीठे बोल की उम्मीद करना गलत है। अतः निर्मला पुतुल ने जिन संवेदनाओं को भोगा है, जिस जीवन में स्वतः अनुभूत किया है, उसे ही वाणी दी है। वह वाणी उनके कठोर जीवन के समान ऊबड़–खाबड़ भरी रूखी वाणी है। वह आगे कहती हैं कि– मैं परिवार में गृहस्थ जीवन को संभालते–संभालते अपने हिस्से की लड़ाई लड़ते–लड़ते अपने समय की स्लेट पर सीधे लिख रही हूँ। अर्थात् यथार्थ को लेखन में उतार कर, उसे समाज से परिचित करवा रही हैं।

निर्मला पुतुल का कहना कि– मैं अपने अंदर एक और औरत को ढूँढने की कोशिश करती हूँ। वह आगे कहती हैं कि–

जब भी लौटती हूँ।
यहाँ आहिस्ता से खुलता है।
इसके भीतर एक द्वार।
जिसमें घर से प्रवेश करती मैं
तलाशती हूँ अपना निजी एकांत[3]

औरत का स्वयं पर अधिकार उसके जन्म से लेकर मरने तक नहीं होता है। वह पिता, कभी भाई, तो कभी पति द्वारा परिचालित होती है। घर में वह अपना स्वयं का हक़, अस्मिता एवं जगह तलाशती रह जाती है। उसके पिता का घर उसके लिए जन्म से ही पराया होता है और पति का घर, जिसे स्त्री का अपना घर कहा जाता है, उसमें स्त्री अंत तक अपना जगह नहीं बना पाती है।

निर्मला पुतुल सदियों से जीवन में असंतोष, अनिश्चिंतता को व्यक्त करते हुए, आने वाले समय में वह कहीं एक छोटी सी आशा को व्यक्त करती हुई, आक्रोश को व्यक्त करती हुई कहती है कि–

ज़मीन की परतें तोड़कर फूटते अंकुर की तरह
फूटेगा एक दिन हमारा असंतोष,
और भड़क उठेगी आग।"[4]

निर्मला पुतुल स्त्री की प्रतिनिधि बनकर कहती हैं कि– जो स्त्री सदियों से चुप होकर सब सहती आई है, जब उसमें सब्र या धैर्य का बाण फूटेगा तब असंतोष की धारा एक चिंगारी बनकर भड़क उठेगी और आग में परिणत होगी और वह अग्नि सब कुछ भस्म कर नष्ट कर देगी। मानव समाज में जहाँ स्त्री को जीवन सृष्टि माना जाता है, वहीं वह काली माता बनकर सबको ध्वंसकारिणी बना सकती है। प्रस्तुत पंक्ति स्त्री की मजबूरी के साथ–साथ स्त्री की शक्ति का भी परिचय देती है।

आजकल के समाज में कुछ वासनायुक्त पुरुष स्त्री को प्यासी देह की भाषा के रूप में ही देखते हैं। कष्टों में और समस्याओं में कोई भी उसको सराहने वाला नहीं दिखता है। समाज में हर एक व्यक्ति उसको ठगने और पाने के लिए ही सोचता है, उसकी तारीफ करता है। इसका स्पष्टीकरण निर्मला पुतुल अपनी 'सुगिया' कविता में कहती हैं कि–

काश, कोई कहता कि–
तुम बहुत मेहनती हो सुगिया
बहुत भोली और ईमानदार हो तुम
काश, कहता कोई ऐसा।[5]

स्त्री भले ही कामकाजी हो या घर के अंदर रहकर घर संभालती हो। दोनों ही जगह वह मेहनत करती है। अपनी मेहनत से ही वह स्वयं और दूसरों का पेट पालती है। परंतु उसकी मेहनत की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता है। स्त्री चुप रह कर, हर किसी की खुशी के लिए सब कुछ त्याग करती है, परंतु उसके त्याग का भी कोई

मोल नहीं आँका जाता है। केवल उसके देह भर की आशा सब लोग करते हैं, परंतु उसके मन, उसकी मेहनत को कोई नहीं देखता है।

आजकल के समाज में कुछ लोगों का स्त्री के प्रति जो दृष्टिकोण है, उसको सही अंदाज में व्यक्त किया है कि–

उन्हें प्रिय है
मेरी गदराई देह,
मेरा प्रिय है उन्हें। [6]

पुरुष समाज, स्त्री को उसकी देह की दृष्टि से आँकता है, समझता है। स्त्री को उसकी देह के कारण अधिकांश पुरुष पसंद करते हैं, जबकि एक आदिवासी स्त्री के रहन–सहन से लेकर, हर एक चीज़ से पुरुष को आपत्ति होती है। परंतु जब प्रश्न देह पर आता है, तब पुरुष केवल स्त्री देह के प्रति आकर्षित होते हैं।

आजकल के समाज में वैवाहिक व्यवस्था के अंतर्गत घरों में अपनी बेटियों की शादी करने के लिए एक मध्य वर्गीय व्यक्ति की हालत, बेहाल और समस्यागत बन जाती है। उसे बेटी की शादी के लिए कुछ जायदाद भी बेचनी पड़ती है। खासकर आदिवासी लोगों की और भी बुरी हालत होती है। निर्मला पुतुल की 'उतनी दूर मत ब्याहना बाबा' कविता में विवाह के संबंध में एक बिटिया का संवेदना को वह स्पष्ट रूप से कहती हैं कि–

बाबा!
मुझे उतनी दूर मत ब्याहना
जहाँ मुझसे मिलने जाने खातिर,
घर की बकरियाँ बेचनी पड़े तुम्हे [7]

भारतीय समाज व्यवस्था में विवाह के पश्चात् स्त्री को ही अपना घर छोड़कर, पति के घर जाना पड़ता है। परंतु अगर ससुराल बहुत दूर हो, तब अपनी बेटी से मिलने के लिए एक पिता को या उसके परिवार को सोचना पड़ता है। क्योंकि भारतीय समाज व्यवस्था में पहले ही बेटी के घर खाली हाथ जाना मना है। उसके बाद जब बेटी को देखने का मन करे और वह स्थान भी दूर हो, तब तो और मुश्किल स्थिति हो जाती है। बेटी की शादी का मुश्किल से इंतजाम करते हैं, बाद में फिर उसके घर आने–जाने के लिए भी पैसों का जुगाड़ न हो पाए, तो घर का सामान ही बेचना पड़ जाता है। निर्मला जी ने उपर्युक्त पंक्तियों में विवाह के संदर्भ में बेटियों को दूर भेजे जाने में पिता की मनःस्थिति का चित्रण किया है।

वास्तव में एक स्त्री की पहचान हर एक जगह होती है। लेकिन आजकल सामाजिक व्यवस्था में स्त्री के अस्तित्व को भूलते जा रहे हैं। लेकिन स्त्री हमेशा परिवार में, समाज में एक अलग पहचान को तलाशती रहती है। वह अपने घर, ज़मीन को कायम रखने को सोचती है। निर्मला पुतुल की 'क्या तुम जानते हो' कविता में यह स्पष्ट हुआ है, वह कहती है कि–

बता सकते हो,
सदियों से अपना घर तलाशती
एक बेचैन स्त्री को
उसके घर का पता। [8]

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि– स्त्री का घर न मायका होता है, न ससुराल उसका अपना घर बन पाता है। अतः स्त्री जिसको जन्म से ही बोझ, पराया धन माना जाता है, सही मायने में उसका घर कहाँ है, इस पर निर्मला पुतुल जी प्रश्न उठाती हैं। साथ ही यह भी समाज में प्रचलित है कि– स्त्री के बिना कोई मकान या घर नहीं बन पाता है। स्त्री ही अपने स्नेह एवं प्रेम से परिवार को बसाती है और उसे प्रेम में बाँधे रखती है। उसके बाद भी वह घर उसका अपना नहीं बन पाता है। वह आगे अपनी संवेदना को व्यक्त करती हुई कहती है कि–

क्या तुम जानते हो
एक स्त्री के समस्त रिश्ते का व्याकरण?
बता सकते हो तुम
एक स्त्री को स्त्री दृष्टि से देखते
उसके स्त्रीत्व की परिभाषा? [9]

एक स्त्री अपने हर रिश्तों को निभाती जाती है। कहीं वह बेटी, कहीं बहन, कहीं पत्नी तो कहीं माता के रूप में वह अपना दायित्व निभाती है। ऐसे ही हर एक परिवार में, हर एक रिश्ते को सहज रूप से निभा लेती है। यही उसकी खूबी

है। स्त्री को उसके नज़रिए से कोई नहीं समझ पाता है। वह स्वयं स्नेह से अपने रिश्तों का निर्माण कर, उसे आजीवन निभाती चली जाती है।

आखिर स्त्री परिवार से, समाज से सिर्फ प्रेम ही चाहती है। एक 'प्रेम' शब्द के लिए वह आजीवन तरसती रहती है। आखिर वह स्वयं से भी मुक्ति चाहती है। निर्मला पुतुल की 'अपनी जमीन तलाशती बेचैन स्त्री' में वह अपनी संवेदना को व्यक्त करती हुई कहती है कि–

मैं स्वयं को स्वयं की दृष्टि से देखते
मुक्त होना चाहती हूँ अपनी जाति से
क्या है मात्रा एक स्वप्न के
स्त्री के लिए–घर संतान और प्रेम?
क्या है? [10]

स्त्री स्नेह और ममता की मूरत मानी जाती है। वह ममतामयी, त्यागमयी है। अपने प्रेम के बदले, वह दूसरों से प्रेम की उम्मीद रखती है। एक माता के रूप में पुत्र को स्नेहमयी प्रेम देकर, उसके लिए आजीवन त्याग करती है। पति के लिए समर्पण कर आजीवन उनके रास्ते को अपना रास्ता बना लेती है। परंतु वही पति और पुत्र उसे उसके अधिकारों से, यहाँ तक कि प्रेम, वात्सल्य, ममता, स्नेह से वंचित करते हैं। उसके प्रेम पूर्ण अधिकारों का हनन करते हैं।

आजकल के समाज में ठग और भोगवादी प्रवृत्ति को दृष्टि में रखते हुए, जवान बेटियों को भगाकर ले जाने की प्रवृत्ति को दिखाते हुए, निर्मला पुतुल अपनी कविता 'बिटिया मुर्मू के लिए' में कहती हैं कि–

"कहाँ गया वह परदेसी जो शादी का ढोंग रचा कर,
तुम्हारे ही घर में तुम्हारी बहन के साथ
साल–दो–साल रहकर अचानक गायब हो गया?
उस दिलावर सिंह को मिलकर ढूँढो चुड़का सोरेन
जो तुम्हारी ही बस्ती की दीता हुजूर को,
पढ़ाने–लिखाने का सपना दिखाकर दिल्ली ले भागा
और आनंद–भोगियों के हाथ बेच दिया
और हाँ पहचानो! [11]

आदिवासी समाज बहुत ही भोले–भाले होते हैं। इनसानी दुनिया से दूर उनकी बस्ती में छल, कपट जैसी चीज़ों की कोई जगह ही नहीं हैं। इस कारण कई आदिवासी लड़कियाँ शादी कर कुछ समय बाद छोड़ी जाती हैं, या तो शहर ले जाकर बेची जाती हैं। आदिवासियों के भोले मन के साथ यह खिलवाड़ कर उनके साथ सभ्य समाज धोखा करता है।

कवयित्री आजकल की सामाजिक व्यवस्था को देखते हुए चुप नहीं रहना चाहती है। आज तक न बोला हुआ व्यक्ति भी आज बोल पाएगा। निर्मला पुतुल अपनी 'धीरे–धीरे' कविता में अपनी संवेदना को व्यक्त करती हुई कहती है कि–

अकसर चुप रहने वाला आदमी
कभी–न–कभी बोलेगा जरूर सिर उठा कर
चुप्पी टूटेगी एक दिन धीरे–धीरे उसकी
धीरे–धीरे सख्त होंगे उसके इरादे। [12]

कहा जाता है कि– एक शांत व्यक्ति जब क्रोधित होता है, तब उसका क्रोध सब कुछ नष्ट कर देता है। अतः सहनशीलता की एक सीमा होती है, जब वह सीमा टूट जाती है, तो सहनशील व्यक्ति बोलने लगता है और जब एक बार वह बोल पड़ता है, तब उसका लक्ष्य अन्याय के खिलाफ कठोर से कठोरतम हो जाता है।

आजकल की जमींदारी वर्ण व्यवस्था पर प्रतिशोध की भावना को व्यक्त करते हुए वह कहती हैं कि– आजकल के समय में नेता लोग बार–बार सही को गलत बोलकर तथा उसको बार–बार बोलकर अंत में गलत साबित कर ही देते हैं। वह कहती है कि–

आँखे देखी को
गलत साबित कर सकते हो तुम
जानती हूँ मैं।" [13]

अर्थात् बदलती दुनिया में लोग इतने बदल चुके हैं कि– अपनी ही आँखों देखे सच को भी भूल कर भ्रष्ट नेता द्वारा कहे गए झूठ पर यकीन कर लेते हैं।

पहले आदिवासी के पास सब कुछ था। लेकिन आजकल उनके पास कुछ भी नहीं है। उनके जंगल छीन लिए गए हैं। यहाँ तक कि उसे–

जंगली, असभ्य, पिछड़ा वह
हिकारत से देखते हैं इसे,
और अपने के सभ्य ...
नकारते हैं हमारी चीजों में।[14]

आज का समाज, जो अपने आपको सभ्य कहता है। वह अपने पीछे छूटे भाइयों को शर्मिंदगी निगाहों से देखते हैं, उन्हें असभ्य कहते हैं। इतना ही नहीं, जंगली बोलकर उनसे उनका जंगल छीनने की कोशिश करते हैं, जो कि आदिवासी के लिए अपना घर, अपना सब कुछ होता है। वर्तमान का सभ्य समाज आदिवासी के नाम पर हर चीज़ को असभ्य बोलकर अस्वीकार करता है।

आजकल व्यक्ति विकास के नाम पर शहर से जंगल की ओर औद्योगीकरण, शहरीकरण के नाम पर जा रहा है। इस पर संवेदना व्यक्त करते हुए निर्मला पुतुल अपनी कविता 'आओ, मिलकर बचाएँ' में कहती हैं कि–

अपनी बस्तियों को
नंगी होने से
शहर की आवो–हवा में बचाएँ रखे।[15]

हमारी प्रकृति हमारे माता–पिता के समान है। प्रकृति के कारण जीवन बचा रहता है, जिसको बचाने की बात निर्मला जी कह रही हैं। जैसे मैथिलीकरण गुप्त अपनी एक कविता में कहते हैं कि– ईश्वर ने जन्म दिया और साथ ही प्रकृति में वह सब कुछ सृजन किया, जो मनुष्य को जरूरत है। परंतु आज मनुष्य अपनी ही आवश्यकताओं का हनन कर रहा है, जिसकी सुरक्षा करने हेतु निर्मला पुतुल जी आवाज़ देती हैं और कहती हैं कि–

भीतर की आग,
धुनष की डोरी,
तीर का नुकीलापन
कुल्हाड़ी की पार
जंगल की ताजा हवा,
नदियों की निर्मलता,
पहाड़ों का मौन
गीतों की धुन
मिट्टी का सोंधापन
फसलों की लहलहाहट।[16]

व्यक्ति आज भौतिक विकास के लिए, अपने पर्यावरण एवं प्रकृति तक को नष्ट करने में लगा हुआ है। प्रकृति के साथ–साथ अपनी संस्कृति को भी पीछे छोड़ रहा है, जिसे बचाने के लिए निर्मला पुतुल ने आवाज दी है।

औद्योगीकरण, सामाजीकरण, महानगरीकरण के कारण जंगल, पहाड़, नदी, तालाब को हड़प ले रहे हैं, जिससे आदिवासी समाज भी नष्ट होता जा रहा है। निर्मला पुतुल की 'बिटिया मुर्मू के लिए' कविता में वह अपनी संवेदना को व्यक्त करती हुई कहती हैं कि–

देखो! अपनी बस्ती के सीमांत पर
जहाँ धराशायी हो रहे हैं पेड़
कुलहाड़ियों के सामने असहाय
रोज नंगी होती बस्तियाँ
एक रोज़ माँगेगी तुमसे
तुम्हारी खामोशी का जवाब।[17]

आधुनिक समाज में संवेदनहीनता बढ़ती जा रही है, जिसके कारण बस्तियाँ हटाई जा रही हैं आजकल जंगल समाप्त किए जा रहे हैं। औद्योगिक विकास में समाज अंधा हो गया है, जिसके कारण आदिवासी अपनी ही इनसानियत के धर्म से पीछे हट चुके हैं। परंतु उनकी खामोशी का परिणाम उन्हें ही भुगतना होगा, और जब वह स्वयं से सवाल करेंगे तब उनके पास शायद कुछ न बचा होगा।

निष्कर्ष–

प्रस्तुत कविताओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि– निर्मला पुतुल ने अपनी कविताओं में आदिवासी जीवन तथा खास कर आदिवासी स्त्री जीवन और उनकी संवेदनाओं को सूक्ष्म रूप में अंकित किया है। भारतीय समाज में आज आदिवासी स्त्री के जीवन से संबंधित सभी मुद्दों को इनकी कविताओं में स्पष्ट किया गया है। आदिवासी स्त्री ज्यादातर परोपकारी होती है, परंतु उनके काम की भी कोई

अहमियत नहीं दी जाती है। वर्तमान समाज में स्त्री विमर्श जहाँ ज़ोर पकड़ रहा है, तथा स्त्री संबंधित साहित्य की रचना कर, समाज को जागरूक करने के लिए अनेक प्रकार की योजनाएँ चल रही हैं वहीं स्त्री के साथ हो रहे अन्याय, अत्याचार, और उनकी संवेदनाओं को प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत करती हैं– 'नगाड़े की तरह बजते शब्द'। यूँ कहना गलत नहीं होगा कि– निर्मला पुतुल ने अपने इस कविता संग्रह में स्त्री के साथ हो रहे घिनौने अत्याचार को प्रस्तुत कर, उनके कार्यों की ओर संकेत करने की कोशिश भी की है। अपने शब्दों से वह आदिवासी समाज में नगाड़ा बजाना चाहती हैं, जिससे समाज जागृत हो सके और अपने खिलाफ हो रहे अत्याचारों के लिए आवाज़ उठा सके। निर्मला पुतुल जी ऐसे समाज की कल्पना करती हैं कि– जल्द ही यह समाज अपनी चुप्पी को तोड़कर, भयंकर रूप धारण करेगा, जो पूरी दुनिया की काया बदल देगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मैं चाहती हूँ –नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, पृ–93
2. जो कुछ देखा–सुना, समझा, लिख दिया –नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, पृ–94
3. मेरे एकांत का प्रवेश द्वार –नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मल पुतुल, पृ–38
4. धीरे–धीरे –नगाड़े की तरह बजते शब्द निर्मल, पुतुल, पृ–84
5. सुगिया –नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, पृ–80
6. मेरा सब कुछ अप्रिय है उनकी नज़र में –नागेडे की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, पृ–93
7. इतनी दूर मत ब्याहना बाबा –नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, पृ–49
8. क्या! तुम जानते हो –नगाड़े की तरह बजते शब्द–निर्मला पुतुल, पृ–7
9. क्या तुम जानते हो –नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, पृ–7
10. अपनी जमीन तलाशती बेचैन स्त्री –नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, पृ–9
11. चुडका सोरेन से –नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, पृ–19
12. धीरे–धीरे –नगाड़े की तरह बजते शब्द–निर्मला पुतुल, पृ–84
13. जो कुछ देखा–सुना, समझा, लिख दिया –नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, पृ–95
14. मेरा सब कुछ अप्रिय है, उनकी नज़र में –नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, पृ–76
15. आओ, मिलकर बचाएँ –नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, पृ–76
16. आओ, मिलकर बचाएँ –नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, पृ–76
17. बिटिया मुर्मू के लिए –नगाड़े की तरह बजते शब्द, निर्मला पुतुल, पृ–14

– असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू युनिवर्सिटी, हैदराबाद–500032

❑❑❑

नाट्यकर्मी भारतेंदु हरिश्चंद्र

डॉ. ममता सिंगला

भारतेंदु हरिश्चंद्र उन युग प्रवर्तकों में से एक हैं, जिनके व्यक्तित्व एवं साहित्य के माध्यम से इतिहास की बिखरी हुई शक्तियाँ केंद्रित हो जाती हैं और भविष्य के लिए एक निश्चित एवं सुदृढ़ मार्ग का सृजन आंरभ हो जाता है। ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित हो जाने के पश्चात् 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिंदी साहित्य का रूप प्राचीन साहित्यिक रूप से भिन्न हो गया। यह युग भारतीय समाज के नवजागरण अथवा पुनर्जागरण का युग था। इस समय विषयों की अनेकरूपता के साथ–साथ हिंदी गद्य साहित्य की विशेष रूप से उन्नति हुई। हिंदी साहित्य के इस नवीन रूप का निर्माण भारतेंदु हरिश्चंद्र के विशिष्ट प्रयत्नों के द्वारा हुआ। उन्होंने साहित्य को जन–आंदोलन का साधन मानकर जनता के हृदय तक पहुँचाने का बीड़ा उठाया, और उसमें उन्हें आशातीत सफलता भी प्राप्त हुई। उन्होंने शब्द और अर्थ के सर्वाधिक सशक्त माध्यम 'नाटक' के द्वारा समाज–संस्कार और देशवत्सलता के महत्वपूर्ण भाव को जन–मन पर अंकित करने के लिए असंख्य मौलिक एवं अनूदित नाटकों का सृजन करना अपना दायित्व समझा। भारतेंदु जैसा युगदृष्टा साहित्यकार समय की माँग से नज़र चुरा भी कैसे सकता था। उनकी पैनी दृष्टि सदैव साहित्य को नई एवं सही दिशा देने पर लगी रही।

भारतेंदु हरिश्चंद्र को आधुनिक नाटक के जन्मदाता के रूप में सभी विचारकों ने एकमत होकर स्वीकार किया है। उन्होंने अपनी छोटी–सी उम्र में इतने विशाल वाङ्मय का सृजन कर दिया कि उसका पूरा आकलन एक छोटे–से लेख में कर देना, लगभग असंभव ही है। उन्होंने नाटक, निबंध, अनुवाद, कविता, लेख, आख्यान, यात्रा–विवरण, परिहास आदि अनेक साहित्यिक विधाओं के माध्यम से राष्ट्रीय मन को स्पर्श करने का कठिन प्रयास किया था। भारतेंदु से पूर्व नाटकों के उद्गम की खोज करें तो उसकी एक परंपरा लोकनाटकों के रूप में प्राप्त होती है, तो दूसरी ब्रजभाषा पद्यनाटकों के रूप में। संस्कृत नाट्य साहित्य तो पर्याप्त समृद्ध रहा ही है। कालिदास, हर्षवर्द्धन एवं भवभूति जैसे संस्कृत के विश्वविख्यात नाटककारों ने अनेक सशक्त नाटक तो लिखे ही थे, साथ ही लक्षण ग्रंथों का निर्माण भी प्रचुर परिमाण में किया था। दुर्भाग्य से मुगल शासन काल में इस समुन्नत नाट्य कला का ह्रास हो गया। राजसभाओं और देवमंदिरों से रंगशालाएँ लुप्त सी होने लगीं। भारतीय भाषाओं में शताब्दियों से लोकनाटकों की एक सुदीर्घ परंपरा विद्यमान रही है, जिन्हें हिंदी नाटकों का पूर्व रूप कहा जा सकता है। इनमें सर्वाधिक महत्व रामलीला, रासलीला और नौटंकी आदि लोकनाट्यों का माना जाता है। धार्मिक कथाओं को आधार बनाकर चलीं रामलीला और रासलीला में भक्ति का भाव प्रधान था। इनमें से रामलीला का प्रसार अवध, मिथिला तथा काशी में अधिक हुआ तथा रासलीला का मुख्य केंद्र

मथुरा, वृंदावन तथा उनके निकटवर्ती प्रदेश रहे। नौटंकी का प्रचार दिल्ली और पंजाब में अधिक रहा। इनमें अधिकांशतः को रामायण, महाभारत, पौराणिक घटनाओं तथा वीरता और प्रेम की लोककथाओं से चुनकर संगीत तथा पद्य के सम्मिश्रण के रूप में प्रस्तुत किया जाता था। गायन और नर्तन इसके मुख्य आकर्षण थे। ब्रज भाषा पद्य नाटकों की परंपरा में प्राणचंद चौहान कृत रामायण महानाटक, हृदय रामरचित हनुमान नाटक, लच्छीराम रचित करुणाभरण, रसरूप रचित प्रबोध चंद्रोदय आदि कई रचनाओं का उल्लेख किया जाता है। किंतु इन पद्य नाटकों की नाटकीयता अत्यंत विवादास्पद रही है।

भारतेंदु से पूर्व रंगमंचीय नाटकों की एक अन्य धारा प्रवाहित हो रही थी, जिसका आरंभ 'इंदर सभा' के लोकप्रिय प्रदर्शनों से हुआ। पारसी थिएटर कंपनियाँ व्यवसाय के रूप में ऐसे अनेक नाटकों का मंचन कर रही थीं। इन नाटकों में गीतों की प्रचुरता, अनुप्रास युक्त गद्य तथा बीच–बीच में नृत्यों का आयोजन किया गया था। भारतेंदु इस प्रकार की कुरुचिपूर्ण प्रस्तुति से काफी क्षुब्ध थे। यहाँ तक की इंदर सभा के प्रति व्यंग्य की सृष्टि के प्रयोजन से उन्होंने बंदर सभा का निर्माण भी किया था। यहाँ यह भी स्पष्ट करना अनिवार्य है कि इन रंगमंचीय नाटकों का प्रबल विरोध करने पर भी भारतेंदु पारसी नाट्य शैली की अनेक विशेषताओं का संयोजन अपने नाटकों में करने से बच नहीं पाए। रंगमंचीय नाटकों का कोरस, कॉमिक और चमत्कारी दृश्य योजना भारतेंदु के नाटकों में भी मिल जाते हैं।

भारतेंदु के नाट्यकर्म पर बांग्ला नाट्य साहित्य और विदेशी नाटक परंपरा का भी पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है। स्पष्ट है कि हिंदी नाटक की ऐसी परिस्थिति में भारतेंदु का कार्य–क्षेत्र सुगम नहीं था। गद्य का विकास पूर्णरूप से अभी आरंभ नहीं हुआ था। हिंदी का अपना कोई विकसित रंगमंच नहीं था। फिर भी सुशिक्षित समुदाय को तुष्ट करने और जन जागृति का बीज वपन करने वाले नाटकों के निर्माण की आवश्यकता को महसूस करते हुए कवि हृदय भारतेंदु हरिचंद्र ने नाट्य रचना संसार में प्रवेश किया और चहुँमुखी सफलता भी प्राप्त की। मुद्राराक्षस, कर्पूरमंजरी, रत्नावली, दुर्लभ बंधु, धनंजय विजय आदि अनूदित नाटकों के माध्यम से उन्होंने न केवल प्राचीन नाटकों का उद्धार किया वरन, भौंडे और त्रुटिपूर्ण गलत अनुवादों के मुकाबले सरस, प्रवाहमयी तथा रचनात्मक अनुवादों को सामने रखकर नई हिंदी को जन मानस के मध्य लोकप्रिय भी बनाया। सत्य हरिश्चंद्र, चंद्रावली, भारत दुर्दशा, नीलदेवी, अंधेरनगरी, विद्यासुंदर जैसे मौलिक नाटकों का सृजन कर पारसी रंगमंचीय नाटकों की तुलना में सुसंस्कृत रुचि का प्रदर्शन करने वाले उद्देश्यपूर्ण नाटकों की प्रस्तुति की। अपने सारगर्भित निबंध 'नाटक' में उन्होंने नाट्यशास्त्र के नियमों का भी विवेचन–विश्लेषण किया है।

अपने युग के कर्णधार और साहित्यिक सेनापति के रूप में जब भारतेंदु जी उभर कर आए तो उन्होंने भली–भाँति समझ लिया था कि जब तक साहित्य रचना का कार्य आंदोलन रूप में नहीं चलाया जाएगा, तब तक न तो समाज में हिंदी साहित्य का प्रभाव बढ़ेगा और न गद्य–रचना की नींव सुदृढ़ होगी। इसीलिए उन्होंने स्वयं लेखन कार्य किया।[1] ऐतिहासिक घटना चक्र ने भारतेंदु हरिश्चंद्र के जीवन काल में एक विशिष्ट परिस्थिति उत्पन्न कर दी थी। अपनी बंगाल यात्रा के दौरान जिन नाटकों का प्रसार भारतेंदु ने देखा था, वह पूर्णतः पाश्चात्य प्रभाव में रंग चुके थे। इस कारण हिंदी भाषियों की अभिरुचि में भी परिवर्तन होना अवश्यंभावी हो गया था। भारतेंदु के सामने दो मार्ग खुले थे। या तो वे प्राचीन भारतीय आचार्यों के नाट्य सिद्धातों का अनुसरण करते या पूरी तरह से पाश्चात्य परंपरा का पालन करते। भारतेंदु ने यहाँ भी समन्वयात्मक दृष्टि को अपनाया। किसी का अंधानुकरण करना उनके व्यक्तित्व का अंग था ही नहीं। संभवतः इसीलिए उन्होंने तत्कालीन राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थिति के अनुरूप प्राचीन नाट्य शैली से महत्वपूर्ण तत्वों को जन चेतना से जोड़कर हिंदी की नवीन नाटक परंपरा का सूत्रपात किया। उन्होंने अपनी किसी रचना

को 'रूपक' कहा है, तो किसी को 'प्रहसन'; किसी को 'भाण' कहा है, तो किसी को 'सट्टक', किसी को नाटिका कहा है तो किसी को 'नाट्य रासक'।[2] परिणामतः भारतेंदु के किसी नाटक में नांदी पाठ है तो किसी में प्रस्तावना। कोई नाटक रसप्रधान है और कोई कौतुहल प्रधान। 'अंक' संबंधी प्राचीन नियमों का भी उन्होंने सर्वत्र पालन नहीं किया है।

हिंदी नाटक परंपरा में भारतेंदु का महत्व इस दृष्टि से भी आँका जाता है कि उन्होंने 'सोद्देश्यता' पर बहुत अधिक बल दिया है। उनके मतानुसार नाटक केवल मनोविनोद का साधन मात्र नहीं है, वरन् वह देश प्रेम और जन जागृति का सशक्त माध्यम हो सकता है। इस सत्य को केंद्र में रखकर उन्होंने अपने सभी मौलिक एवं अनूदित नाटकों की रचना की है। उनके 'नील देवी', 'भारत दुर्दशा', 'भारत जननी', 'अंधेर–नगरी' आदि सभी प्रमुख नाटकों में देश भक्ति का भाव प्रधान रूप से व्यक्त हुआ है। मुद्राराक्षस अनुवाद अवश्य है, किंतु इसमें भी शृंगार रस को छोड़कर देशभक्ति का संदेश समाहित है। देशभक्ति और राष्ट्रीय जागरण की इस चेतना को भारतेंदु ने प्राचीन परंपरा से जोड़ा। भारतेंदु के सभी नाटकों की प्रमुख विशेषता है 'प्रेम'। यह प्रेम या तो स्त्री–पुरुष का व्यक्तिगत प्रेम है, या ईश्वर प्रेम है या सत्य प्रेम या देश प्रेम। पाखंड विडंबन की कथावस्तु वैष्णव धर्म के प्रति प्रेम से प्रेरित है तो धनंजय विजय की कथा से देश प्रेम की पुष्टि होती है। सत्य हरिश्चंद्र, चंद्रावली, नीलदेवी, भारत जननी आदि में भी प्रेम का कोई न कोई रूप हमारे सामने आता है। भारतेंदु ने पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय आख्यान लेकर अपनी कल्पना के योग से उन्हें नवीन रूप प्रदान किया है। उन्होंने विशेष परिस्थितियों, पात्रों एवं आदर्शों का निर्माण अपनी कल्पनाशक्ति के आधार पर किया है। हरिश्चंद्र का सत्य प्रेम, चंद्रावली का कृष्णानुराग, नीलदेवी की वीरता और प्रतिशोध में उनके पौराणिक गाथाओं के प्रति रुझान और कल्पना की शक्ति को सहजता से देखा जा सकता है। उनके नाटकों में अमूर्त पात्रों की भी रचना हुई है। सत्य हरिश्चंद्र में पाप, धर्म, सत्य; भारत दुर्दशा में भारत दुर्दैव, सत्यानाश, आशा, निर्लज्जता, अंहकार, रोग, मदिरा, आलस्य आदि तथा पाखंड बिडंबन में शक्ति, करुणा, श्रद्धा इत्यादि इसी श्रेणी के पात्र हैं। इन सभी पात्रों के माध्यम से भारतेंदु ने समाज में व्याप्त कुरीतियों, आडंबरों, मिथ्या आचरणों का खुलकर विरोध किया है। जहाँ उन्होंने अपने मानवीय पात्रों के माध्यम से भारतीय समाज के सर्वोच्च आदर्श रूप को व्याख्यायित किया है; पाठकों के हृदय में आत्मशुद्धि और पवित्रता का संचार किया है; वीर, साहसी, धार्मिक भावनाओं की रक्षा के प्रति कटिबद्ध नायक–नायिकाओं के चरित्र को स्थापित किया है, वहीं अमूर्त पात्रों के द्वारा विभिन्न मानवीय मूल्यों की स्थापना पर बल दिया है। यही उनके पात्रों की शक्ति है। 'वैदिक हिंसा न भवति' 20 पृष्ठों का चार छोटे–छोटे अंको में विभाजित एक प्रहसन है, जिसमें भारतेंदु ने समाज को खंडित करने वाले पाखंडियों की खबर ली है। मात्र हास्यप्रिय समुदाय का मनोरंजन करना इस कृति का उद्देश्य नहीं था। वे जनता को उनसे सावधान करना चाहते थे जिसे स्वयं उसने 'धर्माभास पाखंड दर्शनार्थ' जैसी शब्दावली से संबोधित किया है। इस प्रहसन में माँस–मंदिरा का सेवन करने वाले याज्ञिकों की खिल्ली उड़ाई गई है तथा निश्छल भक्ति की महत्ता को स्थापित किया गया है। 'विषस्य विषमौषधम्' नाटक सैद्धांतिक रूप से एक भाण है। इसमें देशी राजाओं की असमर्थता और अंग्रेजी राज्य की स्वार्थपरता की आलोचना की गई है। वस्तुतः भाण उस जाति का नाटक है, जिसमें बोलचाल की शब्दावली, मुहावरों, कहावतों का बहुलता से प्रयोग किया जाता है। अतः इस नाटक के एक–एक पृष्ठ पर मुहावरों और कहावतों की झड़ी सी लग गई है। 1875 में लिखे गए इस नाटक में महाराज गायकवाड के राज्य की दुर्व्यवस्था का चित्रण करते हुए देशी राजाओं के विलयन का उल्लेख किया गया है।

'अंधेर नगरी' भारतेंदु का सर्वाधिक लोकप्रिय प्रहसन है। हिंदी के व्यवस्थित रंगमंच के अभाव में भी इस नाटक का मंचन अनेक लोगों ने छोटे–छोटे

स्तरों पर भी किया है। बिहार प्रांत के किसी जमींदार के अन्यायों को लक्ष्य करके लिखे गए इस प्रहसन की रचना सं. 1938 में हुई थी। इसका शीर्षक एक प्रसिद्ध लोकोक्ति पर आधारित है– 'अंधेर नगरी चौपट राजा टके सेर भाजी टके सेर खाजा'। यह नाटक पूर्ण रूप से यथार्थ जीवन का ही प्रतिबिंब है। गद्य–पद्यात्मकता के मिश्रण से लिखा गया यह नाटक एक दृष्टांत के रूप में प्रस्तुत किया गया है लेकिन फिर भी इसके मूल स्वर में मूल्यहीन, अमानवीय और अराजक व्यवस्था को इस प्रकार प्रकट किया गया है कि शासन की अंध–व्यवस्था सामने आ जाती है। विवेकहीन राजा अपनी प्रजा के कष्ट और नाश का कारण बन जाता है। भारतेंदु ने इस नाटक के माध्यम से जन–चेतना को झकझोरने का कार्य किया है।

भारतेंदु कृत नीलदेवी पश्चिमी नाट्यशैली पर निर्मित एक दुःखांत नाटक है। भारतेंदु ने इसे गीतिरूपक कहा है। इस नाटक के शीर्षक से ही ज्ञात होता है कि इसकी नायिका नीलदेवी है, जो अपने पति की मृत्यु का शत्रु से बदला लेकर अंत में अपने पति के साथ सती हो जाती है।[3] यह एक ऐतिहासिक नाटक है, जो विशिष्ट उद्देश्य से लिखा गया है। नाटक के आरंभ में ही स्पष्ट कर दिया है "अंग्रेज स्त्रियाँ सावधान होती हैं, पढ़ी–लिखी होती हैं, घर का कामकाज संभालती हैं, अपने संतानगण को शिक्षा देती हैं अपना स्वत्व ये जानती हैं, अपने देश और जाति की संपत्ति और विपत्ति को समझती हैं।[xxxx] उन्हीं की भाँति हमारी गृहदेवता भी वर्तमान हीनावस्था का उल्लंघन करके कुछ उन्नति प्राप्त करें, यही लालसा है।"[4] इन पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतेंदु भारतीय नारी की हीन अवस्था से दुखी थे, आहत थे। वे उनके जीवन का विकास करना चाहते थे। उनकी यह भी कामना थी कि नारी अपने जीवन का मूल्य समझकर देश और जाति की प्रगति में सहयोगिनी बने, अपने स्वत्व को समझें तथा पारिवारिक जीवन के प्रति पूर्ण रूप से कर्त्तव्यनिष्ठ हों। इसी आशा एवं कामना के साथ उन्होंने नीलदेवी के चरित्र को समाज के समक्ष प्रस्तुत किया और जनमानस में देशानुराग की भावना को जागृत किया।

भारतेंदु के मौलिक नाटकों में चंद्रावली का महत्वपूर्ण स्थान है। स्वयं भारतेंदु को यह नाटिका अत्यंत प्रिय थी। प्रेमजोगिनी में भारतेंदु ने अपने व्यक्तित्व एवं युगीन वातावरण को व्यक्त किया है। सत्य हरिश्चंद्र में उनके गुण प्रतिध्वनित हुए हैं। भारत दुर्दशा में उन्होंने अपनी राजनीतिक एवं सामाजिक विचारधारा को व्यक्त किया है तथा चंद्रावली में उन्होंने अपना हृदय खोलकर रख दिया है। इस सरस नाटिका में आंरभ से अंत तक रस की जो धारा प्रवाहित हुई है वह सहज ही सहृदय का मन मोह लेती है। गद्य और पद्य का सम्मिश्रण इसका एक गुण बन गया है, जिसने आधुनिक युग के नाटकों के क्षेत्र में इस कृति को उच्च स्थान पर सुशोभित कर दिया है। भागवत पुराण में वर्णित चंद्रावली के आध्यात्मिक कलेवर में कल्पना के संयोजन से प्रेम का उद्दात स्वरूप इस नाटिका का प्राण तत्व बनकर उभरा है। नाटिका में चंद्रावली का एक छत्र साम्राज्य है, कोई दूसरा पात्र उभर नहीं पाया है, यहाँ तक कृष्ण भी नहीं। चंद्रावली का प्रेम निष्काम है, उसमें ज्ञान और प्रीति का पूर्ण सामंजस्य है। उसका विरह उस ऊँचाई का स्पर्श कर लेता है, जहाँ पहुँचकर उसे कण–कण में कृष्ण के दर्शन होते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है, "चंद्रावली की रचना सूर और मीरा की परंपरा में अनुकूल हुई है, जहाँ गोपियाँ उद्धव के ज्ञान की धज्जियाँ उड़ा देती हैं और प्रेम में दीवानी होकर लोकलाज और कुलमर्यादा के बंधन तोड़ डालती हैं।"[5] स्पष्ट है कि चंद्रावली में मधुरा भक्ति और अनन्य प्रेम का अनूठा वर्णन हुआ है।

सत्य हरिश्चंद्र नाटक भारतेंदु की सर्वोत्कृष्ट कृतियों में से एक है। यह एक पौराणिक आख्यान है तथा क्षेमेश्वर कृत 'चंड कौशिक' के आधार पर लिखा गया सर्वथा मौलिक नाटक है। अपने मित्र बाबू बालेश्वर प्रसाद के कहने से लड़कों के पढ़ने–पढ़ाने के लिए यह नाटक लिखा गया था, क्योंकि शृंगार रस के नाटकों से उन्हें कोई लाभ नहीं था। भारतेंदु के समय में जो लोग साहित्य

को नौजवानों की शिक्षा के लिए आवश्यक मानते थे वे श्रृंगार रस की पुरानी परंपरा के प्रति असंतोष प्रकट कर रहे थे। भारतेंदु ने इस अंसतोष को ध्यान में रखते हुए, देश के नवयुवकों में राष्ट्रीय गर्व को जगाने हेतु सत्य हरिश्चंद्र नाटक की रचना की। उनका उद्देश्य था कि नाटक को पढ़कर लोग अपना चरित्र सुधारें। सत्य हरिश्चंद्र की पौराणिक गाथा हमारे देश में प्राचीन काल से जन–जन के हृदय में बसी हुई है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने यद्यपि इस नाटक को किसी बंगला नाटक का अनुवाद माना है "किंतु वास्तव में भारतेंदु का यह मौलिक नाटक है। इस नाटक की कथावस्तु का ऊपरी ढाँचा देवता संबंधी अवश्य है, किंतु मूल रूप से यह यथार्थवाद से स्पंदित है। नाटककार ने इस नाटक के माध्यम से अपना जीवन उसी प्रकार व्यक्त किया है, जैसे अपनी भक्ति भावना को चंद्रावली में तथा राजनीतिक विचारधारा को भारत दुर्दशा में। डॉ. रामविलास शर्मा ने उचित ही कहा है कि इस नाटक की भावधारा सामयिकता में डूबी हुई है।"[7]

नवोत्थान काल में उत्पन्न होने के कारण भारतेंदु अपने देश के अतीत गौरव की भावना से तो अनुप्राणित थे ही, साथ ही अपने चारों ओर वे अपने महान देश का अधःपतन होते हुए भी देख रहे थे। इस अधोगति में विदेशी आक्रमणकारियों की तो विशाल भूमिका रही ही थी किंतु स्वयं भारतवासी भी कम जिम्मेदार नहीं थे। सरकारी तंत्र दमन नीति का अनुसरण करते हुए भारत को खोखला कर रहा था तो भारतवासियों के अनेक चारित्रिक दोषों ने भी देश को खंडित करने में कोई कम कसर नहीं छोड़ी थी। ऐसी परिस्थिति में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने समकालीन भारतीय सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन का यथार्थ चित्र अंकित करने तथा जनहित का निर्देश देने हेतु अपनी कल्पना शक्ति के द्वारा भारत दुर्दशा जैसे लोक प्रसिद्ध नाटक की रचना की।

विदेशी रंग में रंगकर जो भारतीय अपने आपको भूल चुके थे उनमें पुनः आत्मस्मृति, स्वदेशानुराग, स्वदेशी वस्तुएँ, वेशभूषा, आचरण, स्वधर्म एवं निजी भाषा के प्रति आसक्ति एवं प्रेम की भावना जागृत करना इस काल के साहित्यकारों का मुख्य उद्देश्य था।[8] भारत दुर्दशा मूलतः अंग्रेजी राज्य की अप्रत्यक्ष रूप से कटु आलोचना है। भारतेंदु जी ने इस नाटक में देशवासियों की दुर्दशा पर क्षोभ प्रकट किया है और तत्कालीन शिक्षित समुदाय की असहाय अवस्था प्रदर्शित की है। अंग्रेज जातियों के गुणों का अनुकरण कर उन्नति की ओर उन्मुख होने की अपेक्षा भारतवासियों को महा अंधकार में डूबते देखकर राष्ट्र प्रेमी भारतेंदु को घोर निराशा होती है, जिसे उन्होंने भारत दुर्दशा में शब्द रूप में प्रकट किया है। रचना के शीर्षक से ही स्पष्ट हो जाता है कि नाटककार का उद्देश्य भारत के जर्जर होते हुए ढाँचे का चित्रण करना है।

भारतेंदु ने संस्कृत, प्राकृत, बांग्ला और अंग्रेजी से कुल मिलाकर आठ नाटकों का अनुवाद भी किया था। संस्कृत से मुद्राराक्षस, धनंजय विजय तथा रत्नावली नाटिका; प्राकृत से कर्पूरमंजरी; बांग्ला से विद्यासुंदर, भारत जननी तथा पाखंड विडंबन; अंग्रेजी के शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक मर्चेंट ऑफ वेनिस का 'दुर्लभ बंधु' नाम से अनुवाद किया गया था। संस्कृत के नवमल्लिका नाटक तथा शूद्रक के मृच्छकटिकम् का भी अपूर्ण अनुवाद किया था, जो इस समय प्राप्त नहीं है। स्पष्ट है कि मौलिक और अनूदित, दोनों ही प्रकार के नाटकों से भारतेंदु ने हिंदी साहित्य की नाटक परंपरा को पुष्पित और पल्लवित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ न होकर ब्रजभाषा की मिठास से पूरित है। प्रत्येक नाटक लिखने के पीछे एक उद्देश्य सदैव उनके सामने रहा है। उनके नाटकों में युग का स्वर प्रतिध्वनित है। तत्कालीन जीवन के सुख–दुख, आशा–निराशा, प्राचीन गौरव और भावी आकांक्षाएँ उनके नाटकों में साकार हो उठी हैं। समन्वयात्मक बुद्धि अपनाकर उन्होंने हिंदी रंगमंच की स्थापना तो की ही, साथ ही हिंदी के परवर्ती नाटककारों को एक सही दिशा भी प्रदान कर दी। नवजागरण के अग्रदूत भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपने नाटकों को

एक ओर देशभक्ति जगाने और चरित्र–निर्माण करने का साधन बनाया तथा दूसरी ओर हिंदी भाषा और रंगमंच के विकास का पथ प्रशस्त किया। हिंदी साहित्य सदैव उनकी इस अनुपम देन का ऋणी रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतेंदु काव्यामृत – प्रो. रामचंद्र श्रीवास्तव चंद्र, पृ.–7
2. भारतेंदु हरिश्चंद्र– डॉ. रामविलास शर्मा, पृ.–121
3. भारतेंदु काव्यामृत – प्रो. रामचंद्र श्रीवास्तव चंद्र, पृ.–8
4. भारतेंदु ग्रंथावली – सं. शिव प्रसाद मिश्र रुद्र, प्रथम खंड, पृ.–102, 103
5. भारतेंदु हरिश्चंद्र – डॉ. रामविलास शर्मा, पृ.–142
6. वही, पृ.–133
7. वही
8. भारतेंदु युगीन साहित्य में राष्ट्रीय भावना – डॉ. पुष्पा थरेजा, पृ.–120

– फ्लैट नं. 311, न्यू आशियाना अपार्टमेंट्स, प्लॉट नं. 10, सेक्टर 6, द्वारका, नई दिल्ली–110075

❑❑❑

रेणु का साहित्य और सलीमा उर्फ़ सिनेमा

राकेश कुमार त्रिपाठी

देश–दुनिया में साहित्य के प्रेमी, विशेषकर हिंदी साहित्य के अनुरागी इस साल फणीश्वरनाथ 'रेणु' का जन्मशती वर्ष मना रहे हैं। कई पत्रिकाओं के विशेषांक निकल रहे हैं। कई विद्वान अपने–अपने स्तर पर नई तरह की समीक्षाएँ लिख रहे हैं। शोधकर्ता रेणु जी की अप्रकाशित या दुर्लभ रचनाएँ ढूँढ रहे हैं। इंटरनेट के इस दौर में ऑनलाइन सेमिनार–वेबिनार और व्याख्यानों–चर्चाओं का आयोजन हो रहा है। रेणु जी जैसे महान रचनाकार के लिए जितना भी हो– कम है! और जब 'कम' शब्द का उल्लेख हो ही गया तो मेरे सामने एक सवाल अनायास कौंध गया! रेणु जी की रचनाओं पर, जो जन–जन में लोकप्रिय रहीं, उनमें भारतीय फिल्मकारों ने रुचि क्यों नहीं दिखाई! कहते हैं भारतीय सिनेमा और ज्यादा फोकस करके कहें तो हिंदी सिनेमा के बारे में कहा जाता है कि यह लोकप्रिय सिनेमा है। यह सीधे जनता के दिल तक पहुँचता है। रेणु जी का साहित्य भी तो दिल तक पहुँचता है। वह भी लोकप्रिय है। तो फिर ऐसा वैराग्य क्यों?

मेरे जहन में यह सवाल पिछले कई सालों से बड़े ही स्वाभाविक रूप से कौंध रहा है। कारण आप सुधी पाठकों को पहले ही बता दूँ तो शायद आपको इस सवाल में और इसका जवाब खोजने की प्रक्रिया में अधिक रस मिले! सीधा कारण तो यह है कि मेरा व्यक्तिगत झुकाव सिनेमा और साहित्य– दोनों की तरफ है। दोनों के माध्यम से मेरी रोजी–रोटी का जुगाड़ हो पाता है। वैसे झुकाव की बात की जाए तो हर दूसरे हिंदुस्तानी के बारे में यह कथन सही लग सकता है। आप इस कड़ी में राजनीति और क्रिकेट को भी जोड़ सकते हैं। लेकिन बेमन से ही सही इस बात से जरूर सहमत होंगे कि इन चारों में साहित्य सबसे बाद में आता होगा। साहित्य को समझने के लिए अधिक या अलग किस्म की बौद्धिकता की आवश्यकता होती है। राजनीति के लिए एक बिल्कुल ही अलग किस्म की बौद्धिकता चाहिए होती है। लेकिन सिर्फ चुनावों के समय मतदान करने को ही जो लोग राजनीति की इति समझ लेते हैं, मेरा उद्देश्य यहाँ उन्हें रेखांकित करने से है। क्रिकेट और सिनेमा को पागलपन की हद तक पसंद करने के लिए जनता को सिर्फ उसे देखना होता है– अपना सारा काम–धंधा छोड़कर टीवी से, या बड़े पर्दे के सामने चिपककर बैठना पड़ता है। यह दुर्भाग्य है कि सौ सालों के अपने सफर के बाद भी भारतीय सिनेमा ऐसा दर्शक वर्ग तैयार नहीं कर पाया जो सिनेमा देखने के लिए स्वयं को तैयार कर के आता हो! ऐसे में मोटे तौर पर कहा जाता है कि भारतीय सिनेमा 'पलायन वादी सिनेमा' है, इसे सिर्फ मनोरंजन के उद्देश्य से बनाया जाता है। ऐसा होने में कोई बुराई नहीं। मनुष्यों के लिए मनोरंजन बहुत जरूरी है। लेकिन सिनेमा जैसे सशक्त और प्रभावी माध्यम का इस्तेमाल सिर्फ मनोरंजन के लिए हो, इस बात को मानने में बहुतों को दिक्कत होती है। इसरो जैसी संस्था सैटेलाइट को अंतरिक्ष में केवल इसलिए स्थापित

करे कि टीवी पर धारावाहिक दिखाने के लिए सिग्नल मिले, तो इस विचार की जड़ में ही समस्या है। सैटेलाइट को स्थापित करने के और भी सामाजिक सरोकार होने चाहिए। ऐसा करते समय देश के हित के बारे में भी सोचना चाहिए। ऐसा होता भी आया है।

सिनेमा के साथ ऐसा बीच–बीच में हुआ। हर काल में ही कुछ गंभीर और संवेदनशील फिल्मकार उभरकर आए जिन्होंने सिनेमा को महज मनोरंजन का माध्यम नहीं माना बल्कि उसे सामाजिक सरोकारों से जोड़ते हुए एक संदेश देने की भी कोशिश की। ऐसा करने के लिए साहित्य का सहारा लेना एक सहज और स्वाभाविक प्रक्रिया हो सकती है। कुछ विलक्षण प्रतिभाएँ ऐसी भी हुईं जिन्होंने दोनों लक्ष्यों को एक साथ साध लिया। लेकिन हर साल हजारों की संख्या में फिल्में बनाने वाले देश में ऐसे लोगों की गिनती आसानी से की जा सकती है– यह चिंताजनक है, और दुर्भाग्यपूर्ण भी।

भारतीय सिनेमा में या विशेष रूप से हिंदी सिनेमा की बात करें तो अनेकों बार ऐसे प्रयोग हुए हैं। लेकिन रेणु का साहित्य उससे अछूता क्यों रह गया? मैं इस आलेख के जरिए इस विषय की कोई पड़ताल नहीं कर रहा। यह ऐसा सवाल है जिसे मैंने अपने आप से, अपने मित्रों से, रेणु के पाठकों से बार–बार पूछा है।

यहाँ आपको बताना उचित समझता हूँ कि तीन साल पहले रेणु की कहानी 'पंचलाइट' पर आधारित जो फिल्म पूरे भारतवर्ष में रिलीज हुई थी– इस आलेख का लेखक यानी कि मैंने उसके लिए पटकथा लिखी थी तथा गीत भी रचे थे। साथ ही साथ मैं सहयोगी निर्देशक भी था। इस फिल्म के बनने की कहानी भी अपने आप में बहुत रोचक है – जिसका जिक्र मैंने अपने कुछ आलेखों में किया है। यहाँ उसका एक सारांश बताना चाहूँगा। इस कहानी और इस फिल्म तथा दोनों के अंतर्संबंधों का जिक्र इसलिए भी सापेक्षिक लगता है क्योंकि 'पंचलाइट' कहानी का नायक गोधन सलम – सलम वाला सलीमा का गीत गाता रहता है। ना तो कहानी का नायक, ना ही कहानीकार फिल्मों के बढ़ते प्रभाव से अनभिज्ञ थे। समाज के तौर पर मुनरी की माँ गुलरी और टोले के दूसरे बुजुर्ग फिल्मी गीतों के दुरुपयोग से प्रभावित भी होते थे। तो संक्षेप में प्रस्तुत है 'पंचलैट' सिनेमा के बनने की कहानी। मैं मानता हूँ कि इस बात की संभावना भी हो सकती है कि आप ऐसी किसी फिल्म के अस्तित्व से ही अंजान हों और यही कठोर वास्तविकता मेरे इस आलेख को लिखे जाने का कारण बनती है।

साल 2009 की बात .... फिल्म बनाने वाले पहले प्रोजेक्ट बनाते हैं। अपना प्रोजेक्ट बनाकर निर्माताओं के पास जाते हैं। मैं और मेरे एक निर्देशक मित्र प्रेम प्रकाश मोदी – हमने भी मिलकर फिल्म बनाने के लिए कुछ प्रोजेक्ट बनाए। उस प्रक्रिया में ज़िक्र उठा रेणु और पंचलाइट का ... सारी बहसें वहीं खत्म हो गईं। इस कहानी पर एक पटकथा बनाई।

यह वह दौर था जब मैंने रेणु के रचना संसार को जिया। पंचलाइट पर काम करना मेरे लिए सिर्फ एक कहानी पर काम करना नहीं था। वे मेरे पसंदीदा रचनाकारों में से रहे हैं। और इसीलिए चार पन्नों की कहानी पर आधारित दो घंटों की पटकथा लिखते समय मैंने उन्हीं की अन्य रचनाओं से मदद ली। कहानी में तो आठ टोलों का जिक्र था– कितने चरित्र थे जो एक या दो लाईन में ही यादगार बन गए थे। फुटंगी झा, अगनू महतो, गुलरी काकी, रूदल साह ....उन्हें विस्तार देना था। इसका विस्तार मुझे रेणु जी के उपन्यासों से मिला, उनकी दूसरी कहानियों में से भी मिला। खासकर संवाद, बोलचाल की शैली और बोली के ध्वन्यात्मक प्रयोग के समय मैंने रेणु के साहित्य में उपलब्ध लोकसंगीत, लोकगीत, आंचलिक मुहावरों, बोलियों की अनगढ़–अपरूप विशेषता से अपनी पटकथा को अलंकृत किया।

पंचलाइट की पटकथा लिखते–लिखते कुछ बातें दिमाग में आतीं और लिखना रुक जाता। लगभग पचास साल होने को थे और 'तीसरी कसम' के बाद रेणु जी की किसी रचना पर कोई काम नहीं हुआ। क्यों? क्या उनकी रचनाएँ पढ़ने में ही अच्छी लगती हैं? क्या दर्शक उसे पर्दे पर नहीं देखना चाहते? क्या इसलिए कि उसमें वह

चमक–दमक नहीं है जिसके लिए हिंदी फिल्म उद्योग जाना जाता है! सत्तर के दशक में 'मैला आँचल' पर फिल्म बन रही थी लेकिन कुछेक रील की शूटिंग के बाद वह भी रुक गई थी। ले–देकर दूरदर्शन में एक सीरियल बन पाया था। जिसे दूरदर्शन के स्तर से ठीक–ठाक कहा जा सकता है। बस यही ....इतना ही! लेकिन ऐसा क्यों?

साल 2017 .....बावजूद ऊपर लिखे गए विचारों के हमने पूरी लगन, निष्ठा और पूरी मुहब्बत से 'पंचलैट' को पूरा किया। हालाँकि इस फिल्म के लिए निर्माता ढूँढने के लिए हमें सात साल तक निर्माताओं के कार्यालयों के चक्कर लगाने पड़े। लेकिन जब सही निर्माता मिल गए तो काम आसानी से हो गया। पंचलाइट की कहानी की आवश्यकता के अनुसार इसमें ढेर सारे कलाकारों की आवश्यकता थी। पूरा महतो टोला, और इसके अलावा सात टोले और! रेणु जी के नाम से कई प्रख्यात – सिद्ध कलाकारों ने आसानी से इस फिल्म में काम करने के लिए हामी भी भर दी। कुछ कलाकार बाद में तारीखों की समस्या के चलते इस फिल्म में काम नहीं कर पाए लेकिन इस बात का मलाल उन्हें रहा और फिल्म की रिलीज तक उनका सहयोग तथा शुभकामनाएँ हासिल रहीं।

जन–जन के बीच रेणु जी की लोकप्रियता कितनी है उसका अनुमान आपको एक वाकए से हो जाएगा। हमने तय किया था कि फिल्म की कहानी का कालखंड उन्नीस सौ पचास के दशक को ही रखेंगे। जब फिल्म का कालखंड तय हो गया और एक ऐसे गाँव की जरूरत महसूस हुई जहाँ बिजली ना हो, आधुनिक सुविधाएँ ना दिखें! ऐसा एक गाँव खोजना था हमें! एक तरीका यह था कि हम सेट बना लेते। लेकिन फिल्म का बजट इसकी अनुमति नहीं देता था। एक थकाने वाली मगर रोचक खोज के बाद झारखंड राज्य में देवघर शहर के आस–पास चालीस–पचास किलोमीटर अलग–अलग दिशाओं में स्थित छह गाँव पसंद किए और उन सब को कैमरे की दृष्टि से मिलाकर एक गाँव बनाया। एक गाँव में फिल्माई गई महतो टोले की चौपाल, दूसरे किसी गाँव में बना मुनरी का घर, तो पचास किलोमीटर दूर तीसरे गाँव में अभिनीत हुए बामन टोला और राजपूत टोला के दृश्य। यूनिट ठहरी देवघर शहर में! और हर रोज का अस्सी–सौ किलोमीटर का आना–जाना होता। इस दौरान एक रोचक प्रसंग हुआ! गाँव में लोकेशन खोजते समय एक स्थानीय लड़के ने पूछा– यहाँ क्या होगा? हमने टालते हुए जवाब दिया– फिल्म की शूटिंग होगी। बातचीत में उसने रेणु जी का नाम सुन लिया और उसके पूछने पर हमने पंचलाइट का नाम लिया। हमारे आश्चर्य की सीमा ना रही। शहर से पचास किलोमीटर दूर, हाइवे छोड़कर दस किलोमीटर अंदर बसे एक छोटे से गाँव का लड़का —— उसे पंचलाइट और रेणु के बारे में पता था! उसने पूछा– "आप सब कुछ खोज रहे हैं... आपको गोधन का घर मिल गया क्या! वह तो गाँव से थोड़ा बाहर होना चाहिए ना? उसे जाति से निकाला गया है ना!" फिर हमें साथ लेकर कई घर दिखाए।

दो–दो सौ लोगों की यूनिट के साथ पूरे छत्तीस दिन की शूटिंग और महीनों के पोस्ट प्रॉडक्शन के बाद, मुंबई में प्रीमियर शो हुआ और 17 नवंबर, 2017 को फिल्म देशभर के लगभग चार सौ सिनेमाघरों में रिलीज हुई। दूसरी व्यावसायिक फिल्मों के मुकाबले यह संख्या बहुत छोटी थी। उस दिन लगा– कहानी लिखना, पटकथा लिखना, प्रोडयूसर का साथ में आ जाना, फिल्म बना लेना ...शायद आसान काम है। लेकिन रिलीज करवा पाना नहीं। यह एक ऐसा तंत्र है जहाँ सिर्फ पूँजी की सुनी जाती है! उन्हें साहित्य नहीं, अभिनेता नहीं, ऐसे सितारे चाहिए जो टिकट खिड़की पर लोगों को खींच सके! जिस रेणु को हिंदुस्तान के दूरदराज के गाँव का एक आम लड़का पहचानता है, जानता है, उस महान रचनाकार को फिल्म के वितरक नहीं पहचानते या पहचानना नहीं चाहते। क्योंकि ऐसा करना उनके व्यावसायिक हितों के आड़े आता है! कहते हैं कोई फिल्म अपनी मेरिट पर चलती है, लेकिन ऐसा तब हो पाएगा जब वह तरीके से दर्शकों तक पहुँच पाए। मुद्दे की बात यह कि व्यावसायिक स्तर पर ना साहित्य के प्रति हमारा अनुराग, ना ही रेणु जी का नाम, ना ही मँजे हुए अभिनेताओं का अभिनय किसी खास काम

आया। फिल्म रिलीज हुई और दो हफ्तों के बाद इतिहास के पन्नों में सिमट गई। शायद ऐसा कोई इतिहास का पन्ना जिस पर आपकी भी नजर ना पड़ी हो!

लोगों ने कहा 'पंचलैट' फिल्म में कोई स्टार नहीं था ...लेकिन रेणु जी की रचना पर बनी पहली फिल्म 'तीसरी कसम' में राज कपूर थे, वहीदा रहमान थीं, वह फिल्म भी शैलेंद्र जी को अपनी लागत वापस नहीं कर पाई थी। फिर भी... पंचलैट को कुछ दर्शक मिले! हिंदुस्तान के अलग–अलग हिस्सों में होने वाले कई फिल्म फेस्टिवल्स में भरे हुए प्रेक्षागृहों में दर्शकों ने इसे देखा, जमकर ठहाके लगाए, इसकी सादगी की प्रशंसा की! गोवा में आयोजित इंडिया इंटरनेशनल फिल्म फेस्टिवल का हिस्सा बनी यह फिल्म! कई अन्य फिल्म महोत्सवों में अवार्ड भी जीते! कई अखबारों, पत्रिकाओं में इसकी काफी प्रशंसा हुई। गूगल के इस दौर में आप भी चुटकी बजाकर वह सब लिख–पढ़ सकते हैं। आईएमडीबी (IMDB) में यह लेख लिखे जाने के समय इसकी रेटिंग 8.2 की है! दूरदर्शन पर भी दिखाई गई। कई स्कूलों, वृद्धाश्रमों में इसके स्पेशल शो हुए। टिकट खिड़की पर निराशा मिली ...लेकिन देखने वालों को खुश कर गई यह फिल्म! आज भी कई जगह इसके स्पेशल शो करने के लिए आवेदन आते रहते हैं।

मुझे नहीं मालूम रेणु जी की कहानी पर बनी इस फिल्म के इस संक्षिप्त विवरण से आप उस फिल्म के बनने के सात साल लंबे कठिन सफर का अनुमान कर पाए या नहीं! लेकिन इस पूरे सफर के दौरान यह सवाल मुझे मथता रहा जिसका जिक्र मैंने इस आलेख के प्रारंभ में किया है।

रेणु जी की रचनाओं को लेकर हिंदी सिनेमा उदासीन क्यों है? इस बिंदु पर चिंतन करते समय मेरे दिमाग में यह बात आई कि भारत में कुछ बातें सूत्र वाक्य की तरह कह दी जाती हैं। जैसे कि– "सच बोलो! किसी का दिल मत दुखाओ! नारी देवी स्वरूपा है!"बच्चे स्कूली निबंधों में लिख आते हैं। वक्ता अपने भाषणों में उनका प्रयोग करते हैं। बाद में भूल जाते हैं। ऐसा ही एक सूत्र वाक्य है कि "भारत की आत्मा गाँवों में बसती है"।

लेकिन इस सूत्र वाक्य का उपयोग करने वाला एक बड़ा तबका वह है जो शहरों में और महानगरों में रहता है। वह इस वाक्य का प्रयोग करने के बाद उसे भूल भी जाता है। और गाँव में रहने वाले को इसे याद रखने की जरूरत ही नहीं पड़ती। क्योंकि वह इस सत्य को जीता तो है लेकिन उस तरीके से उसे महसूस नहीं कर पाता। क्योंकि आज भी उस ग्रामीण के लिए उसका गाँव ही उसका 'देस' है, उसका 'मुलुक' है! यह मात्र शब्दों का खेल नहीं है। एक पूरी सभ्यता का इतिहास इसमें छिपा है। एक महान साहित्यकार के साहित्य में इस अहसास का प्रतिबिंब दिखता है। रेणु जब 'गाँव' की कहानियाँ लिखते हैं तो वह पूरे देश की भी कहानी होती है। जब उनके साहित्य का पात्र गाँव का सीधा–सादा इनसान या शहर से भी ताल्लुक रखने वाला होता है तो उसमें रेणु हिंदुस्तान की आत्मा को ही खोजते हैं। उन पात्रों की जुबान से निकलने वाली भाषा में आलोचकों – समीक्षकों ने आंचलिकता की छाप देखकर उसका एक सहज वर्गीकरण करने की कोशिश की लेकिन सच तो यह है कि हिंदुस्तान में ही क्या, पूरी दुनिया में 'कुछ कोस पर पानी और वाणी' के बदलते रहने के सच के बीच एक गाँव का पात्र अपनी भाषा नहीं बोलेगा तो क्या बोलेगा? रेणु एक खास अंचल के रहने वाले थे। उस अंचल की दुख तकलीफों को नजदीक से समझा था। वहाँ के लोगों की आशाओं–उमंगों को पहचाना था और उसे ही अपनी रचनाओं में जगह दी थी। शायद यही वजह थी कि एक विशेष काल खंड की महामारी, जिसकी गंभीरता आज के समय कब की खत्म हो चली है उसे अपनी जिस रचना के केंद्र में रेणु जी ने रखा– उस 'मैला आँचल' की सार्थकता उस बीमारी के साथ आज भी खत्म नहीं हुई। क्योंकि वह महज उस बीमारी की बात करते ही नहीं। 'परती–परिकथा' में वर्णित अंचल और वहाँ के जनमानस का दुख हरित क्रांति के आ जाने से कम होता प्रतीत होता है लेकिन उस दुख के भिन्न रूप उपन्यास के पन्नों में से निकलकर आज भी अखबारों और न्यूज का हिस्सा बन जाते हैं। रेणु जी अपनी कहानी में शीतलपाटी बनाने

वाले जिस लोक–कलाकार के आत्मसम्मान की बात करते हैं वह आज भी कई जगहों पर दरकता हुआ दिखाई देता है। 'लाल पान की बेगम' क्या सिर्फ उस औरत की कथा है जो अपने परिवार के साथ मेले में जाना चाहती है? 'नैना जोगिन' की गालियाँ बकने वाली औरत क्या हर उस औरत के आक्रोश को प्रकट नहीं करती जिसका शारीरिक और मानसिक शोषण होता है?

साहित्य की सार्थकता इसी में है कि वह एक कालखंड में सीमित नहीं रह जाता। एक अंचल विशेष की कथा कहते हुए भी अपनी व्यापकता से सबको प्रभावित करता है। रेणु जी की रचनाओं ने भी ऐसा ही किया। प्रेमचंद जी की रचनाओं में भी यह गुण था। समाज में आदर्श की प्रतिष्ठा करनी है या केवल यथार्थपरक चित्रण करना है– इन पैमानों पर दोनों की रचनाओं में फर्क ना देखा जाए तो यह बिलकुल सही लगता है कि रेणु जी की रचनाओं को मुंशी प्रेमचंद के बाद के काल के सर्वोत्तम साहित्य का हिस्सा माना जाए। कैसी विचित्र समानता है कि हिंदी सिने जगत ने मुंशी प्रेमचंद की रचनाओं के प्रति भी उदासीनता ही दर्शाई है। तो इस बात को मैं एक फिल्मकार के तौर पर सिरे से ही खारिज कर देता हूँ कि रेणु जी सिर्फ गाँवों के बारे में लिखते थे। वह उनकी पृष्ठभूमि जरूर थी, लेकिन वह लिखते अपने देश के बारे में थे, अपने समय का दस्तावेज लिखते थे। तो क्या फिल्में अपने देश के गाँव को दिखाने से हिचकिचाती हैं। जवाब शायद हाँ में ही है। रेणु की रचनाएँ अपनी ठेठ ग्रामीण पृष्ठभूमि को जिस ईमानदारी से दर्शाती है, वह ईमानदारी हिंदी फिल्मों में नहीं है। जिस सहजता के साथ रेणु अपने कथ्य को कह जाते हैं वह सहजता फिल्मों को रास नहीं आती। फिल्मों में एक आरोपित बनावटीपने का होना अपेक्षित होता है।

मैं यहाँ समानांतर फिल्मों की बात नहीं करूँगा क्योंकि वह फिल्में भी दर्शकों की कमी की समस्या से जूझती हैं। और ग्रामीण पृष्ठभूमि में बनी कुछ व्यावसायिक फिल्मों की बात जाने दें– जैसे कि 'मदर इंडिया' आदि– तो हमें दूर–दूर तक सूखा रेगिस्तान ही दिखता है। सबसे अधिक सफल फिल्मों की श्रेणी में गिनी जाने वाली फिल्म 'नदिया के पार' में कथ्य की मासूमियत तो है लेकिन पहनावे और परिवेश के चित्रण के तौर पर आम सिनेमाई परिपाटी का उल्लंघन नहीं कर पाती। ऊपर से तुर्रा यह कि आज भी बहुत सारे आलोचक–दर्शक उसे जबरन 'भोजपुरी फिल्म' की श्रेणी में रखकर मुख्यधारा की हिंदी फिल्मों से अलग कर देते हैं। ऐसा करना एक अघोषित साजिश का हिस्सा दिखता है क्योंकि इस तरह की फिल्मों की मुख्यधारा में स्वीकृति उनके बने–बनाए, प्रमाणित व्यावसायिक फॉर्मूले को बिगाड़ सकती है। 'नदिया के पार' के कथानक को सालों बाद एक 'आधुनिक शहरी' और 'चमक–दमक' वाले परिवेश में रूपांतरित कर सफलता पूर्वक प्रस्तुत करना भी फिल्म उद्योग की विवशता को ही दर्शाता है। विवशता इस बात की कि उसे वैसी ही फिल्म बनानी है जिसे शहरी उपभोक्ता खरीद सके। फिल्मों का उपभोक्ता शहरों में रहता है, जिसकी महत्वाकांक्षाओं को 'एनआरआई' की लुभावनी जिंदगी पर बनी फिल्में उकसाती हैं। शहरी उपभोक्ता को गाँव से क्या लेना! उसे तो गाँव से आने वाले अनाज के वास्तविक मूल्य का भी अनुमान नहीं या वह उसे जानना नहीं चाहता। कहीं पढ़ा था मैंने कि 'तीसरी कसम' को भी फिर से बनाने की योजना पर काम हो रहा है– लेकिन पृष्ठभूमि को बदलकर उस कहानी को शहर में एक कार–चालक के इर्द–गिर्द घटता हुआ दिखाकर।

रेणु की रचनाएँ आपको गाँव की ओर, भारत की आत्मा की ओर खींचती हैं। अगर भारतीय फिल्में उस आत्मा की बात नहीं करना चाहतीं, अगर हिंदी फिल्में सिर्फ व्यवसाय को ध्यान में रखकर बनाई जानी हैं, अगर निर्माता के पैसे वापिस करवा पाना ही फिल्मकारों का 'परम धर्म' है तो बेहतर होगा कि सिनेमा को कला की श्रेणी से पूरी तरह हटाकर सिर्फ 'उद्योग' की ही श्रेणी में रखा जाए। वैसे भी सिनेमा को 'उद्योग' का दर्जा देने की माँग बरसों से की जा रही है।

बहुत जगह बहुत बार उल्लेख किया जा चुका है कि रेणु जी के उपन्यास 'मैला आँचल' को

शायद पहले पटना के किसी स्थानीय प्रकाशन ने छापा था। जब अज्ञेय जी के हाथ में वह उपन्यास आया तो उन्होंने देश की एक प्रमुख प्रकाशन संस्था से बात की और उस संस्था के मालिक ने रेणु जी के साथ अलग अनुबंध किया, सारी पुरानी प्रतियाँ खरीद लीं और नए कलेवर में उस उपन्यास को फिर से छापा और पूरे देश में उपलब्ध करवाया। 'मैला आँचल' की सफलता अब इतिहास के पन्नों में हमेशा के लिए दर्ज है। पुस्तकों का प्रकाशन भी व्यवसाय ही है और कई ऐसे संस्थान हैं जो किताबों के प्रकाशन को केवल व्यावसायिक दृष्टिकोण से नहीं देखते लेकिन वह सालों से सफलता पूर्वक चल रहे हैं। सिनेमा को भी ऐसे ही दूरदर्शी और दिलेर निर्माताओं की, फिल्मकारों की जरूरत है जो अपने लाभ के लिए, सिनेमा के लाभ के लिए साहित्य की ओर मुड़ें– ख़ासकर रेणु जी के साहित्य की ओर। ना सिर्फ उनके उपन्यास और कथा साहित्य में, बल्कि रिपोतार्ज और संस्मरणों में ऐसा खजाना छिपा हुआ है जो भारतीय सिनेमा को समृद्ध कर सकता है, दर्शकों को चमत्कृत कर सकता है। और तो और, रेणु जी का अपना जीवन भी किसी रोमांचक गाथा से कम नहीं है। किसी कमर्शियल फिल्म की भाषा में कहूँ तो रेणु जी के जीवन में देशभक्ति है, रोमांस है, एक्शन है, हास्य है, राजनीतिक उतार–चढ़ाव है, विद्रोह है ...मतलब कि एक पूरा पैकेज है!

रेणु को तथा रेणु साहित्य को सिनेमा के जरिए लोगों तक पहुँचा कर साहित्य का और रेणु जी का उतना भला नहीं होगा जितना स्वयं सिनेमा जगत का और दर्शकों का होगा!

अब पंचलैट फिल्म ओटीटी पर एम एक्स प्लेयर (MX Player) पर उपलब्ध हो गई है।

– 100/5ए, पी के गुहा लेन, मॉडर्न पार्क, दम–दम कैंट, कोलकाता–28

❑❑❑

रेणु के जीवन का भटकाव और रास्ता

भारत यायावर

रेणु का चौदहवाँ साल चल रहा था। उनके भीतर रूप–पिपासा की लपट–सी उठने लगी थी। यह मानसिक रोग था, जिसकी गिरफ्त में वे आते जा रहे थे। अररिया में कई बंगाली परिवारों के घर उनका आना–जाना होता था। तब तक उन्होंने रवींद्रनाथ की अनेक कविताएँ कंठस्थ कर ली थीं। वे शरतचंद्र के उपन्यासों का भी पारायण कर चुके थे। अपने बंगाली मित्रों के साथ बांग्ला साहित्य पर उनका गपशप खूब होता। उनके भीतर एक प्रेमी हृदय का निर्माण हो रहा था। उसी समय एक सुंदर बंगाली लड़की के प्रति उनका आकर्षण बढ़ रहा था। वे उसके घर जाते और उस लड़की से उनकी घंटों बातचीत होती। उस बातचीत में कभी–कभी उसके भाई–माता –पिता भी शामिल हो जाते। रेणु के मन में उसके प्रति एकतरफा प्रेम पैदा हो रहा था। वे कहते कुछ नहीं थे। ऊपर से सामान्य रहते और नियमित स्कूल जाते।

एक दिन स्कूल में उनका एक सहपाठी अपने बस्ते में एक किताब ले आया। वह पुस्तक थी– जवाहरलाल नेहरू की 'पिता के पत्र पुत्री के नाम।' जवाहरलाल नेहरू तब युवा हृदय सम्राट थे। उनका आकर्षक व्यक्तित्व और ओजस्वी भाषण लोग बेहद पसंद करते थे। रेणु के मन में नेहरू के प्रति बहुत आदर था। लोग उनकी इकलौती बेटी इंदिरा प्रियदर्शिनी की भी काफी चर्चा करते थे। यह कैसी है? रेणु को भी देखने की जिज्ञासा थी। यह किताब मूल रूप से अंग्रेजी में लिखी गई थी। जवाहरलाल नेहरू ने हिंदी में प्रेमचंद से अनुवाद करवाकर बहुत अच्छे कागज पर इसे प्रकाशित करवाई थी। किताब के शुरू में आर्ट पेपर पर नवयौवना इंदिरा प्रियदर्शिनी की एक सुंदर तस्वीर थी।

रेणु ने जब उस पुस्तक को अपने सहपाठी से माँगकर देख, तो तस्वीर देखकर मुग्ध हो गए। अपने सहपाठी से अनुनय–विनय कर पढ़ने के लिए उन्होंने यह किताब ली। डेरे पर आकर उस फोटो को निहारते रहते। सुंदर मदमाती आँखें। लंबी नाक। उनके मन–मस्तिष्क पर इतना असर कर गई थी कि वे उसे घंटों निहारते रहते। सुबह उठकर एक बार देखकर नित्यक्रिया करते। फिर स्कूल से आने के बाद बार–बार उसे देखते।

उनके सहपाठी ने पुस्तक लौटाने के लिए कहा तो रेणु ने जवाब दिया– "एक–दो दिनों में लौटाता हूँ। अभी कुछ पढ़ना शेष रह गया है!"

कुछ दिनों बाद किताब लौटाने के लिए उनका सहपाठी लड़ाई करने पर उतारू हो गया। अंत में, आजिज आकर रेणु ने किताब लौटा दी। उनके सहपाठी ने जब किताब को खोलकर देखा तो इंदिरा प्रियदर्शिनी की तस्वीर गायब थी। वह गुस्से में भर उठा– "तस्वीर कहाँ गई ?" रेणु ने कहा– "मैंने निकाल ली है और उसे नहीं लौटाऊँगा।"

उनका अपने परम मित्र से इस बात पर बहुत झगड़ा हुआ। बात क्लास टीचर के पास

पहुँची। उन्होंने भी रेणु को समझाया। पर रेणु अड़े रहे। हेडमास्टर साहब तक बात पहुँची तो उन्होंने पिटाई भी कर दी। लेकिन रेणु टस–से–मस नहीं हुए और वह तस्वीर नहीं ही लौटाई! ऐसा उस रूप का आकर्षण था।

वे अपनी पढ़ाई जारी रखते हुए रोज स्कूल जाते। लेकिन उस तस्वीर को देखना नहीं भूलते। उसे कई बार मोड़कर अपनी धोती में छुपाकर रखते। जब एकांत मिलता, एक नजर देख लेते। अंत में वह तस्वीर जब जीर्ण–शीर्ण हो गई, तभी रूप का वह आकर्षण समाप्त हुआ।

इसी समय उन्होंने शरतचंद्र का उपन्यास 'देवदास' पढ़ा। धीरे–धीरे वे अपने–आपको 'देवदास' समझने लगे। और जिस बंगाली लड़की से वे प्रेम करते थे उसे पारो।

यहाँ विषयांतर में जाकर 'देवदास' उपन्यास के बारे में बताना आवश्यक समझता हूँ। इस उपन्यास की रचना शरतचंद्र ने 1917 में की थी। एक बार उन्होंने कहा था– "देवदास के सृजन में मेरे हृदय का योग है।" इस उपन्यास में भावुकता से भरे एक असफल प्रेमी का आत्महंता स्वरूप अजीब तरह से नवयुवकों को अपने में आविष्ट कर लेता था और कई भावुक युवकों ने इसे पढ़कर आत्मघात भी कर लिया था। बाद में शरतचंद्र ने यह स्वीकार भी किया था कि देवदास की आत्मघाती भावुकता को इतना निश्च्छल और महान बनाकर आदर्श रूप में उन्हें प्रतिष्ठित नहीं करना चाहिए था। लेकिन वे क्या करते? जब वे लिख रहे थे उस समय वे ऐसे ही प्रेम की पीड़ा से छटपटाते रहते थे। वे छटपटाहट और प्रेम की पीड़ा की कसक एक अपरिपक्व किशोर हृदय की है और पार्वती या पारो तक पहुँचने का सही रास्ता स्वयं को समाप्त करना भी ठीक नहीं है। लेकिन 'देवदास' छप चुका था और उसके पाठकों की संख्या बढ़ती ही जाती थी। हिंदी अनुवाद होकर जब वह हिंदी प्रदेशों में फैला तो अनगिनत नवयुवकों के हृदय को उसने झकझोर दिया। 'देवदास' में प्रेम की प्रगाढ़ता एक अजीब तरह की बेचैनी पैदा करती है। भावुकता का प्रसार करती है। और जो प्रेम के मायाजाल में फँसे हुए हैं, उन्हें तो मानो पागल ही बना देती है।

रेणु प्रेम में पड़े हुए थे और शरतचंद्र का देवदास उनके भीतर प्रवेश कर गया था। कुछ दिनों तक इंदिरा प्रियदर्शिनी की तस्वीर ने इस देवदास का ध्यान पारो से हटाया, पर जब उस मुड़ी–तुड़ी तस्वीर का अस्तित्व समाप्त हो गया, तो फिर पारो की तरफ उनका मन भागने लगा। ऐसे में ही 1934 का साल बीत गया। आठवीं कक्षा उत्तीर्ण कर 1935 में वे नवीं कक्षा में गए। लेकिन उनका मन पढ़ाई से उचट चुका था। वे इधर–उधर से जुगाड़कर कहानी और उपन्यास पढ़ते। साहित्यिक पुस्तकें पढ़ने का यह रोग तो उनमें कम उम्र से ही था, वह अब उफान पर आ चुका था।

वे जैनेंद्र कुमार का कहानी–संग्रह 'फाँसी' पढ़ चुके थे। इसे पढ़कर वे इसके पात्र शमशेर और जुलैका के बारे में घंटों विचार करते रहते। बहुत बाद में उन्होंने 'फाँसी' कहानी के इन दोनों पात्रों को लेकर जैनेंद्र पर लिखते हुए एक रूपक बाँधने की कोशिश की थी, जो इस प्रकार है–

लोगों,
शमशेर से क्यों डरते हो ?
वह फौलादी है,
पर देखो, कितना झुक जाने को तैयार है!
लेकिन, खबरदार!
उसकी धार के सामने न पड़ना,
वह न्याय की तरह बारीक है।
शमशेर दो बातें जानता है.....
बहादुरी और गरीबी
जिनमें दोनों नहीं, वे क्या आदमी हैं ?

...जानते हो, शमशेर प्यार का क्या करता है? उसे कुचल डालता है, फिर जरा रो लेता है और अपने काम में लग जाता है।

रेणु की तब यही मनःस्थिति थी। उनका एक मन फौलादी था और एक मन झुकने को तैयार रहता था। उनका एक मन अपना सबकुछ लुटाकर

मुफलिसी को गले लगाना चाहता था, पर बहादुरी को कभी खुद से अलग करना पसंद नहीं करता था।

'फाँसी कहानी में शमशेर और जुलैका प्रसंग पर वे लिखते हैं–

"और कुछ नहीं शमशेर, और कुछ नहीं?"

"और कुछ नहीं? ....मरते वक्त और कुछ नहीं?"

"नहीं!"

"थोड़ा–सा प्यार?"

"जुलैका, क्या कहती हो ?"

"बिल्कुल जरा, जरा–सा प्यार..."

रेणु लिखते हैं– "मेरा पूरा विश्वास है कि हिंदी का प्रिय कवि शमशेर वही है, जिसे जुलैका प्यार करती थी। इसी विश्वास को लेकर जी गया। वरना पार्वती के दरवाजे पर किसी दिन सुबह भीड़ लग जाती और बैलगाड़ी पर लदी हुई लाश को लोग हाथ में अंकित नाम से ही पहचानते। देवदास पढ़ने के बाद ही अपने हाथ पर अपना नाम 'गोदवा' चुका था।

देवदास बने रेणु के मन में पलायनवादी मानसिकता का निर्माण हो चुका था। वे भावुकता के भीषण दौर से गुजर रहे थे। प्रेम के लिए आत्मोत्सर्ग की भावना उनमें बलवती हो रही थी। एक दिन वे अररिया से फरार होकर भागलपुर पहुँच गए। दो दिनों तक इधर–उधर भटकते रहे। फिर घर की याद आने लगी– माँ, बाबूजी और दादी। सभी भाई–बहन। फिर अपनी प्रिया की याद आई। वे लौट आए। एक बार वे भागकर गौहाटी चले गए। किंतु, मन को चैन नहीं था।

अररिया में स्कूल जाते, घर आते और गुमसुम रहते। लेकिन पढ़ने का जो रोग लगा था, वह बरकरार रहा। वे हिंदी और बांग्ला साहित्य की साहित्यिक किताबें बड़े ही मनोयोग से पढ़ते। एक रोग और भी उनमें लगा था– मेला देखने का। रूप का आकर्षण, प्रेम की ज्वाला, पढ़ने–लिखने के साथ–साथ मेला के अनेक दृश्यों को बहुत गौर से देखना– उनके व्यक्तित्व में समाहित था। ये सभी प्रसंग एक साथ चल रहे थे। इसलिए इस प्रेम–प्रसंग की कथा कहने के पहले मेला–प्रसंग की कथा कहना जरूरी है।

पूर्णिया जिले में दुर्गापूजा के समय से अगहन महीने तक जगह–जगह मेला लगा करता था। उसमें तरह–तरह की नौटंकी कंपनियाँ अपना 'खेल' दिखातीं। दुकानें सजतीं। तरह–तरह के सामान बिकते। रेणु स्कूल से भागकर इन मेलों में प्रायः जाते रहते थे। उनकी कहानी 'तीसरी कसम' अर्थात् 'मारे गए गुलफाम' में फारबिसगंज में लगे एक मेले का आंशिक चित्र भी उन्होंने उपस्थित किया है, किंतु अपनी कहानी 'नेपथ्य का अभिनेता' में उन्होंने अपने स्कूली दिनों के मेला देखने के शौक को संस्मरणात्मक रूप में प्रस्तुत किया है।

1929 ई. में रेणु पहली बार गुलाबबाग मेला अपने पिताजी के साथ गए थे। गुलाबबाग पूर्णिया शहर के नजदीक एक व्यापारिक मंडी है। वहाँ के एक बड़े मैदान में यह मेला लगता था और यह पूर्णिया जिले का सबसे बड़ा मेला होता था। रेणु जब पहली बार गुलाबबाग मेला गए थे, तो वहीं पहली बार एक हवाई जहाज को बहुत नजदीक से देखा था। वहाँ कलकत्ता से एक थियेटर कंपनी आई थी, जिसमें तिल धरने की जगह भी नहीं थी। उन्हें बेहद अजूबा लगा था– मंच पर ही रेलगाड़ी आती–जाती थी– इंजिन सहित, पुक्का फाड़ती, धुँआ उगलती हुई! मंच पर ही लाल–पीली रोशनी में अनेक परियों को उन्होंने पहली बार देखा था और देखते रह गए थे। जीवन में पहली बार थियेटर में यह सब देखकर वे बेहद उत्तेजित हो गए थे और आश्चर्य से भर उठे थे। उनका एक मित्र था बकुल बनर्जी! उसने बताया था कि इस थियेटर कंपनी में नागेसरबाग मेला से निकाले गए कलाकार ही हैं। इसमें एक कलाकार का अभिनय रेणु को बहुत पसंद आया था। उस कलाकार ने एक रेलवे पोर्टर का अभिनय किया था– वह रेलवे के वेटिंग रूम में सोए हुए लड़के का छुरे से खून कर रहा था। देखकर रेणु का डर से रोम–रोम सिंहर उठा था। यह दृश्य भूलता ही

नहीं था– गुलाबबाग मेला का वह थियेटर–मंच पर पंजाब मेल का आना– लड़के का खून!

फिर कई साल के बाद सिंहेश्वर मेला में उमाकांत झा की कंपनी में इस अभिनेता को उन्होंने पहचान लिया था! अरे यह तो वही था खूनी हत्यारा! लेकिन यहाँ 'बिल्वमंगल' नाटक खेला जा रहा था और चिंताबाई की मजलिस में एक बाबाजी के भेष में वह सुमधुर कंठ से गा रहा था–

काया का पिंजरा डोले रे
साँस का पंछी बोले!

रेणु चौंक पड़े! गुलाबबाग मेला में ठीक हत्यारे की तरह लग रहा था– हाथ में चाकू और लाल–लाल आँखें। पर यहाँ तो ठीक बाबाजी लग रहा है– गेरुआ कपड़े पहने! उस हत्यारे का कथन तो मानो उनको याद ही हो गया था–

क्यों मेरे हाथ!
तू क्यों थरथरा रहा है ?
तू तो केवल अपने मालिक का हुक्म अदा कर रहा है।
मत काँप मेरे खंजर... वक्त बर्बाद मत कर!
शिकार सोया है चादर तानकर!
ले तू भी अपना काम कर!

लेकिन यहाँ तो यह सचमुच का बाबा लग रहा है! फिर उसने एक अद्‌भुत कवित्त का पाठ किया–

मृदंग कहै धिक है, धिक है!
मंजीर कहै किनको, किनको ?
तब हाथ नचाय के गणिका कहती
इनको, इनको, इनको, इनको!

फिर आद्‌या प्रसाद की नाटक कंपनी में 'श्रीमती मंजरी' नामक खेल में वही अंग्रेज जज का भेष बनाकर टेबुल पर हथौड़ा ठोंककर बोला था– "वेल मोंजरीबाई! हाम टुमको सिड़ीमटी मोंजरी का खेताब डेटा हाय। आज से टुमको सिड़ीमटी मोंजरी बोलेगा, समझा!"

फिर इस दृश्य के कुछ समय बाद वह बाबाजी के गेरुए भेष में वही गीत गाता हुआ प्रकट हुआ था– *काया का पिंजरा डोले रे! साँस का पंछी बोले।*

रेणु के मन में थियेटर के इस अभिनेता के प्रति बेहद आकर्षण था। लेकिन अपने इलाके के रंगमंच के वे भी जमे हुए अभिनेता थे। उनके स्वाभिमान को ठेस लगने से वे तनकर खड़े हो जाते और उसका उत्तर दो टूक दिया करते। उस समय रेणु के भीतर देवदास की आत्मा घुसी हुई थी और दिल बहलाने को वे इधर–उधर भटकते रहते थे।

एक बार फारबिसगंज में मेला लगा हुआ था और अभिनेताओं का दल दिन में पान–सिगरेट–चाय के लिए निकला था। उसमें लैला, मजनूँ, शीरी, फरहाद, राजा, डाकू आदि का रोल करने वाले एक ग्रुप में गपशप करते हुए धीरे–धीरे आगे बढ़ रहे थे और यह नया देवदास उनके पीछे–पीछे उनकी बातें सुनता चल रहा था। अचानक 'काया का पिंजरा डोले रे' गाने वाला साधु यानी वह हत्यारा यानी वह अंग्रेज जज पीछे मुड़ा और इस देवदास को कड़े शब्दों में फटकारा– "क्यों बे छोकरे! इस तरह क्यों घूम रहा है हमारे पीछे–पीछे? पॉकेट मारेगा क्या ?"

यह देवदास बने रेणु के आत्मसम्मान पर आघात था। उनके अहं को चोट लगी थी। उन्होंने करारा उत्तर दिया– "आपके पॉकेट में है ही क्या जो कोई मारेगा?"

"क्यों? तू यह कैसे जानता है कि मेरा पॉकेट खाली है?" उसने चकित होकर पूछा था।

रेणु के भीतर से तब देवदास निकलकर फुर्र हो गया था। उनके शिक्षक ने उन्हें सिखाया था कि अपरिचित आदमी से जब भी बात करो, अंग्रेजी में करो। क्योंकि अंग्रेजी बोलने से रौब जमता है और स्कूल का नाम भी होता है। लोग कहते हैं कि देखो, इस स्कूल को देखो,यह विद्‌यार्थी फर्राटे से अंग्रेजी में बात कर लेता है। लेकिन उनके भीतर हिंदी के प्रति बेपनाह प्रेम था, इसलिए अपनी

अंग्रेजी को भीतर ही रोककर उन्होंने हिंदी में कहा– "क्यों, रात को जो भीख माँग रहे थे– दाता तेरा भला करे!"

वह अभिनेता पिछली रात को नाटक में भिखारी का अभिनय कर रहा था। उसी की याद रेणु ने दिलाई थी। उनकी बात सुनकर सभी अभिनेता ठठाकर हँसकर पड़े थे। उसने कहा– "यह छोकरा तो बहुत तेज है!"

तब रेणु की अंग्रेजी बाहर आई और उस अभिनेता को झाड़ते हुए उन्होंने कहा– "यू सी मिस्टर रेलवे पोर्टर–ऐक्टर! डोंट से मी छोकरा! आई एम ए हाई स्कूल स्टूडेंट! यू नो ?"

रेणु के इस अंदाज में कहे गए शब्दों पर फिर सभी ठठाकर हँस पड़े।

वहीं मेले में घूमते हुए उनकी नजर एक आदमी पर पड़ी। वह गोदना गोद रहा था। रेणु के भीतर से फिर घायल प्रेमी देवदास जाग्रत हुआ और उन्हें लगा कि जब उनकी लाश लावारिस रूप में पड़ी होगी तो लोग कैसे पहचानेंगे? उन्होंने अपने नाम के प्रथमाक्षर को एक कागज पर लिखकर गोदना वाले को दिया– (एफ. एन. एम. आई) और उनकी बाँह पर गोदना अंकित हो गया।

1935 ई. में नौवीं कक्षा में वे पढ़ रहे थे। देवदास की भावुकता भरी छाया से वे लिप्त होते और फिर मुक्त होते। उनकी पारो की शादी तय हो गई थी। उसके परिवार में गहना–जेवर खरीदने की चिंता सता रही थी। एक दिन देवदास जी अपने गाँव गए और अपनी माँ के गहने जाकर ले आए। घर में जब जेवर की खोज शुरू हुई तो पिता का संदेह पुत्र पर हुआ। उन्होंने रेणु से पूछा तो उन्होंने अपने पिता को सब बातें बता दीं। फिर यह भी बताया कि उसकी शादी हो गई है और वह ससुराल चली गई है।

फिर रेणु के भीतर का देवदास फफक–फफककर रोने लगा!

पिता उसे देखते रह गए। उनके हृदय में दुख की लहरें उठने लगीं। उन्होंने सोचा था कि बेटा हमारा बड़ा नाम करेगा! लेकिन यह पुत्र तो प्रेम में पड़कर नालायक हो गया था अर्थात् किसी काम का नहीं रह गया था। घर भर में मातम पसर गया था। उसने यह भी घोषणा कर दी कि अररिया स्कूल में अब वह नहीं पढ़ेगा।

देवदास बने रेणु गुमसुम रहते। माँ उनको जबरदस्ती कुछ खिलाती, वरना भूखे रहते। फिर उन्होंने रवींद्र और शरत को विधिवत पढ़ना शुरू किया। उनके बांग्ला साहित्य के गुरु फुदो बाबू हर सप्ताह आते और रेणु की अनेक जिज्ञासाओं को शांत करते। रेणु को रवींद्र की अनेक कविताएँ तब याद हो गई थीं। हिंदी कविता और कथा–साहित्य भी वे मनोयोग से पढ़ते थे। वे ऋषभचरण जैन के कथा–साहित्य को भी बड़े ही चाव से पढ़ते।

रेणु अररिया स्कूल में पढ़ना नहीं चाहते थे, इसलिए औराही में ही रहते। उनके पिता ने उन्हें बहुत समझाया और हाथ पकड़कर स्कूल ले गए। फिर उनको अपनी कक्षा में जाकर बिठा दिया। फिर गाँव चले आए। कुछ देर के बाद रेणु मियाँ भी स्कूल से फरार होकर अपने गाँव चले आए। लेकिन पिताजी की मार न पड़ जाए, इसलिए धान रखने के कोठार में जाकर छुप गए। कोठार में धान भरा हुआ था। उसमें छुपने के लिए पैर को मोड़ना और सिर को झुकाकर रखना आवश्यक था। ऐसी दशा में कुछ देर रहने के बाद ही उनका दुबला–पतला शरीर भी अकड़ने लगा। उनके सामने समस्या थी कि इतनी कम जगह में मेंढ़क की तरह बैठा कैसे जाए। वे कभी–कभार हाथ–पैर फैलाते तो खटर–पटर की आवाज सुनाई पड़ती। किसी ने कोठार की जब यह हलचल सुनी तो जोर से चिल्लाया– चोर! चोर!

घर के सभी लोग जुट गए– आँय! कोठार में चोर घुसा हुआ है? इसके पहले कई घरों में कई बार चोरियाँ हो चुकी थीं। लोग चोरों से परेशान थे। शोर सुनकर पड़ोस के लोग भी जमा हो गए थे। सबने अपने हथियार अपने हाथों में पकड़े हुए थे– आज चोर को पकड़ ही लेना है!

रेणु मेंढ़कावस्था में कोठार में छुपे हुए मुस्कुरा रहे थे। तभी उनकी अपने पिताजी की कड़क

आवाज सुनाई पड़ी– "ऊपर से भाला भोंक दो। जो भी चोर होगा, वहीं राम नाम सत्य हो जाएगा।"

रेणु की जान सूख गई! चोर भी तो आदमी ही है। ऐसे कहीं भाले से भोंककर मारा जाता है! उन्होंने चिल्लाकर कहा– "पिताजी! मैं रेणु हूँ!" फिर कोठार के मुँह से अपना सिर बाहर निकाला।

"अरे, यह तो रेणु है!" कहकर चोर पकड़ने वाले लोगों की भीड़ छँटती चली गई। शिलानाथ मंडल रेणु का हाथ पकड़कर अपनी बैठकी में ले आए और कहा, "तुम्हें तो मैं सुबह लेकर स्कूल में तुम्हारी कक्षा में बिठा आया था, फिर क्यों भाग आया ?"

रेणु ने सपाट उत्तर दिया, "मुझे इस स्कूल में नहीं पढ़ना है। मेरा दिल नहीं करता। इसलिए आप मेरा टी.सी. लेकर फारबिसगंज में नाम लिखा दीजिए।"

उनके पिताजी को धीरे–धीरे सभी बातें समझ आ रही थीं। उन्होंने कहा, "ठीक है!"

दूसरे दिन में हेडमास्टर के कक्ष में बैठकर वे रेणु का टी.सी. ले रहे थे। टी.सी. पर हस्ताक्षर करते हुए हेडमास्टर साहब ने कहा, "मंडल जी, इस लड़के को जिस स्कूल में ले जाना है, ले जाओ! दुनिया–जहान की सैर कराओ। लेकिन इस मूर्ख लड़के का कुछ नहीं हो सकता! अस्तबल बदलने से घोड़ा तेज नहीं होता।"

शिलानाथ मंडल ने बस इतना कहा, "देखते हैं आगे यह घोड़ा भागकर कहाँ–कहाँ जाता है? लेकिन, सर! मैं यह समझ गया हूँ कि यह बँधकर रहनेवाला घोड़ा नहीं है।"

फिर वे रेणु को घर ले आए। आगे जो भी करना था, गणेश प्रसाद विश्वास और रामदेनी तिवारी 'द्विजदेनी' से विचार–विमर्श कर ही करना था।

रेणु के बचपन के शिक्षक गणेश प्रसाद विश्वास ढोलबज्जा स्कूल चले गए थे। वे फारबिसगंज से सटे ढोलबज्जा मिडिल स्कूल में पढ़ाने पैदल ही जाते। 1934 ई. के मध्य में फारबिसगंज के 'ली एकेडेमी' नामक हाई स्कूल में शिक्षक का एक पद रिक्त हुआ और उन्होंने आवेदन दिया। वे वहाँ बहाल हो गए। वे लिखते हैं– "अष्टम श्रेणी पास कर जब रेणु नवम् में गया तो एक दिन उसके पिताजी ने एकाएक फारबिसगंज में आकर मुझसे एकांत में कहा– "गणेश बाबू, मैं जिस उच्च अभिलाषा से प्रेरित आपके विद्यार्थी को अररिया भेजा था, उस पर उसने पानी फेर दिया। वह एक बंगाली लड़की के प्रेम–चक्कर में फँस गया है। घर के पैसे के अलावे उसने कुछ स्वर्ण आभूषणों को भी उसके हवाले कर दिया है। अब मैं भारी परेशानी में पड़ गया हूँ। आप ही इसका उपचार सोचें।"

आगे वे लिखते हैं– "मैं यह दुर्भाग्यपूर्ण समाचार सुनकर अवाक् एवं किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। फिर उन्होंने अपना विचार प्रकट करते हुए कहा– आप अन्यथा न मानें तो मैं पुनः आपको कष्ट दूँ। मैं उसे फिर से आपके जिम्मे लगाना चाहता हूँ। आप उसे सुधारें।"

गणेश प्रसाद विश्वास ने सहर्ष सहमति दी। फिर वे फारबिसगंज में ही रह रहे रामदेनी तिवारी 'द्विजदेनी' से मिले और रेणु के संबंध में सभी बातें बताईं। उन्होंने भी अपने संरक्षण में रखने की स्वीकृति दे दी। शिलानाथ जी अपने गाँव लौट गए। उन्होंने रेणु को अपने पास बुलाया और समझाया, फिर तिवारी जी और गणेश बाबू के सान्निध्य में रहकर फारबिसगंज में ही शिक्षा प्राप्त करने की बात कही। रेणु ने अपनी सहर्ष सहमति दी अर्थात् वे फारबिसगंज में रहने के लिए तैयार हो गए।

एक दिन एक संदूक में उसके कपड़े और किताबों के साथ फारबिसगंज में तिवारी जी के घर शिलानाथ मंडल उनको छोड़ आए। तिवारी जी ने चंदा उगाहकर फारबिसगंज में एक नेशनल स्कूल एक खपरैल के मकान में कायम किया था, जो चल नहीं पाया था। उसी में कांग्रेस के कुछ युवा कार्यकर्ता रहा करते थे। रेणु पहले भी कांग्रेस के इस दफ्तर में रह चुके थे। तिवारी जी के घर से यह लगा हुआ था। तिवारी जी ने इसी के एक

कमरे में रेणु के रहने की व्यवस्था कर दी। यहाँ रहकर उनका सघन अध्ययन का अभ्यास और भी तीव्र हुआ। तिवारी जी इन सभी युवाओं को देश–दुनिया की बातें बताते और बीच–बीच में कई हास्य–प्रसंग सुनाकर हँसाते। समय निकालकर पास में ही स्थित ली एकेडेमी स्कूल में जाकर वे गणेश मास्टर से भी शिक्षा ग्रहण करते।

पूर्णिया जिले में उन दिनों हिंदी के प्रमुख कथाकार अनूपलाल मंडल रहा करते थे। वे उपन्यासकार थे। उनके उपन्यास भागलपुर के उन्हीं द्वारा स्थापित युगांतर साहित्य संस्थान से प्रकाशित होते थे। इसी नाम से उनकी किताबों की दुकान थी। वे पूर्णिया जिले के विभिन्न कस्बों में जाकर अपनी किताबें बेचा करते थे। उन्हींके शब्दों में उनका आत्मवृत्तांत सुनिए– जब मुझे रुपयों की विशेष आवश्यकता पड़ती, एक बड़े बक्स में पुस्तकें भर कर सीधी ट्रेन से फारबिसगंज जा पहुँचता और वहाँ के नेशनल स्कूल में अपने साथी श्री बोकाय मंडल के यहाँ डेरा डालता। उन दिनों नेशनल स्कूल टूट चुका था, उसकी जगह कांग्रेस पार्टी के दस–बारह स्वयंसेवक रहा करते थे, जिनके संचालक मेरे साथी श्री मंडल थे। उन्हीं दिनों मेरे एक श्रद्धास्पद् और हितैषी थे, उनका मकान उक्त स्कूल के पास था। वे स्वयं अच्छे नाटककार थे और उनके कई नाटक निकल चुके थे। उनका वहाँ बड़ा सम्मान था। वे मुझ पर बड़े सदय और मेरे बड़े प्रशंसक थे। उन्हींके सहयोग से मेरी सारी पुस्तकों की खपत हो जाती थी।

अनूपलाल मंडल अपनी किताबों पर अपना नाम तब मंडल की जगह साहित्यरत्न लिखते थे यानी अनूप साहित्यरत्न। द्विजदेनी जी के यहाँ यदा–कदा उनकी भेंट शिलानाथ जी से हो जाती थी, जो अपने मंडल को छुपाकर विश्वास बताया करते थे। वे अपने पुत्र की रचनात्मक प्रतिभा की प्रशंसा भी करते रहते थे।

1935 ई. में तिवारी जी के घर पर साहित्यरत्न की भेंट विश्वास से हुई। उन्होंने पूछा– आपका पुत्ररत्न कहाँ है ? क्या कर रहा है ?

पिता ने बताया कि उसने पढ़ना छोड़ दिया है। वह यहीं कांग्रेस आश्रम में रहकर कांग्रेस पार्टी की वोलंटियरी करता है। शायद आपने देखा भी होगा।

अनूप जी ने कहा– "कांग्रेस के आश्रम में तो दस–बारह लड़के रहते हैं, इसलिए पहचान नहीं पाया!"

शिलानाथ ने कहा– "अभी तो आप हैं न! मैं उसे आपसे मिलने को कह दूँगा।"

फिर वे जब लौटने लगे तो रेणु को बता गए कि प्रसिद्ध साहित्यकार अनूप साहित्यरत्न आए हुए हैं और वे तिवारी जी के यहाँ ठहरे हुए हैं। तुमसे मिलना चाहते हैं, मिल लेना।

रेणु अनूपलाल की किताबें पढ़ चुके थे। अपने पिता के लेखक मित्र से मिलना उनका सौभाग्य था। अगले दिन तीन बजे वे अनूपलाल जी का चरण–स्पर्श कर सामने खड़े हो गए और अपना नाम बताया। वे रेणु के व्यक्तित्व को देखकर बहुत प्रभावित हुए– किशोर वय का शरीर, लंबा और सुडौल, पानीदार साँवला–सलोना रंग, सिर पर सघन केश–कुछ ललाट पर छाए हुए, तीखे नाक–नक्श। वे देखते ही मोहित हो गए।

उन्होंने पूछा– "तुम कविता करते हो?"

रेणु के सिर हिलाने पर उन्होंने सुनाने के लिए कहा। रेणु ने अपना लिखा एक सवैया सस्वर सुनाया, जिसकी आखिरी पंक्ति थी–

कवि रेणु कहे, कब रैन कटे, तमतोम हटे!

अनूपलाल जी ने तब पूछा– "तुमने अपना कवि नाम रेणु रखा है। रेणु का मतलब क्या होता है?"

रेणु ने उत्तर दिया– "जी रेणु का मतलब धूल होता है। मुझे धूल और धरती से बहुत लगाव है!"

अनूपलाल जी बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने दिल खोलकर आशीर्वाद दिया और समझाया, "पढ़ाई करना बहुत जरूरी है। तुम देशहित में काम कर रहे हो, लेकिन भारत जब आजाद होगा तो पढ़े–लिखे

लोगों का ही मान होगा। तुम्हारे बाबूजी तुम्हें पढ़ाना चाहते हैं। तुम्हें कुछ बनते हुए देखना चाहते हैं। वोलंटियरी करने से तुम्हें कुछ लाभ नहीं होगा। देखो रेणु, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। पढ़ना शुरू कर दो। किसी स्कूल में नाम लिखाकर। क्या कहते हो? पढ़ोगे न?"

रेणु ने कुछ क्षण मौन रहकर कहा– "हाँ–हाँ, मैं पढ़ूँगा। आप मेरे बाबूजी से कह दें, वे मेरे पढ़ने की व्यवस्था कर दें।"

अनूपलाल जी ने कहा– "वे चार बजे मुझसे मिलने आएँगे, मैं उनसे कह दूँगा।"

रेणु को तो पढ़ने का भीषण रोग लगा ही हुआ था। वे नियमित साहित्यिक पत्र–पत्रिकाएँ और पुस्तकें पढ़ रहे थे। स्कूल में पढ़ने से भी उनकी कोई असहमति नहीं थी। किंतु, अररिया में रहते हुए उनके भीतर जो प्रेम का संचार हुआ था, वह उन्हें मथता रहता था। द्विजदेनी जी के सान्निध्य में रहते हुए वे इस भीषण यंत्रणा से बाहर आने की कोशिश करते रहते थे। वे उन्हें लेकर विभिन्न गाँवों में जाया करते। एक बार वे अपने तीन–चार शिष्यों को लेकर कांग्रेस और गांधी के संदेश को प्रचारित करते दूर के गाँव के एक संपन्न व्यक्ति के यहाँ पहुँचे। उन्होंने सब लोगों के लिए चाय की व्यवस्था की। रेणु के सामने भी चाय का गिलास रखा गया। तब तक वे चाय नहीं पीते थे। उन्होंने चाय पीने से इनकार कर दिया। तब द्विजदेनी जी ने चाय पर एक दोहा बनाकर सुनाया–

दूध–चीनी–चाय डाली, केतली गरमागरम।
एक प्याला पी लो रेणु, सर्वरोग विनाशनम।

यह दोहा सुनकर सब हँसने लगे। गुरु का आदेश था। रेणु ने पहली बार चाय पी। सभी रोगों का विनाश चाय कैसे कर सकती थी? रेणु को तीन रोग लग चुके थे जो असाध्य थे। पहला रोग पढ़ने–लिखने का था। दूसरा स्वाधीनता प्रेमी का और तीसरा प्रेम का! पहले दोनों रोग उनको विकास के पथ पर ले जा रहे थे लेकिन तीसरा रोग तो उनको भीतर–भीतर कुतर–कुतर कर खा रहा था।

गर्मियों के दिन थे। रेणु के मन में इच्छा हुई कि कविगुरु और शरत को देखा जाए। इनकी चर्चा बांग्ला पत्र–पत्रिकाओं में ही नहीं, हिंदी की पत्रिकाओं में भी भरपूर रहती थी। रवींद्र और शरत को तो वे लगातार पढ़ते ही रहते थे। एक दिन बिना किसी को बताए वे कलकत्ता के लिए प्रस्थान कर गए। फारबिसगंज से ट्रेन पकड़कर वे कटिहार जंक्शन पहुँचे। यह पूर्णिया जिले का सबसे बड़ा जंक्शन था। वहीं से कलकत्ता के लिए ट्रेन में बैठकर यात्रा की। इधर उनके गायब होने से उनके पिता और घर वाले बहुत चिंतित हुए। द्विजदेनी जी ने कांग्रेस आश्रम के सभी शिष्यों से कहा– "रे रेणु कहाँ है, खोज–खोज!"

लेकिन रेणु तो कलकत्ता पहुँचकर इधर–उधर भटक रहे थे। वे महानगर की भव्यता की चकाचौंध से विस्मित थे। कई दिनों के बाद खोजते–खोजते रवींद्रनाथ के महल के द्वार तक पहुँचे। उनके कपड़े धूल–धूसरित हो गए थे। उन्हें गेट पर ही रोक दिया गया। वे कविगुरु के भव्य भवन को देखते ही रह गए। उन्होंने चौकीदार से पूछा– इस जगह का नाम जोड़ासांको क्यों है? उसने बताया कि यहाँ पहले एक नाला था, जिसपर लकड़ी के पतले दो पुल बने थे। एक आने के लिए और एक जाने के लिए। पुल को बांग्ला में सांको कहते हैं। इसी के कारण इस जगह को जोड़ासांको पुराने जमाने से कहा जाने लगा। अंग्रेजों ने जब इसका निर्माण किया तो नाले को भूमिगत कर दिया।

रेणु को रवींद्रनाथ के दर्शन तो नहीं हो सके, लेकिन अब शरत से मिलना था। उन्होंने शरत के घर का पता लगाया तो उन्हें मालूम हुआ कि दक्षिण कलकत्ता के बालीगंज इलाके में 24, अश्विनी दत्त रोड में उनका मकान है। जैसे–तैसे वे वहाँ पहुँचे। पर शरत के मकान को खड़ा होकर देखा और सोचा– एक लेखक अपने दम पर इतने बड़े मकान का निर्माण करवाकर रह रहा है। यह बड़ी बात है। फिर उनके मन में आया कि कलकत्ता आए पाँच दिन हो गए हैं और मेरी माँ तथा बाबू जी चिंतित हो रहे होंगे। पितातुल्य तिवारी जी मुझे खोजते हुए भटक रहे होंगे। घर लौटना चाहिए। जो रकम थी, वह भी खत्म होने वाली थी। वे घर

की ओर लौटे। घर लौटते हुए उनके मन में विचार आया कि इस तरह फटेहाल घर जाना ठीक नहीं है। वे पूर्णिया के बाद जैसे ही गढ़बनैली स्टेशन आया, उतर गए। वहाँ से वे बड़ी बहन लतिका की ससुराल बरेटा गाँव पहुँचे। दीदी ने नहला–धुलाकर खाना खिलाया। दूसरा कपड़ा पहनने को दिया और पहने हुए कपड़े को धोकर सुखा दिया। दो दिन आराम करने के बाद शरीर में स्फूर्ति आई। फिर घर की ओर प्रस्थान करने के लिए स्टेशन आए।

गढ़बनैली का छोटा–सा स्टेशन। प्लेटफॉर्म पर कोयले की छाय बिछी हुई। ऊपर से पुरवा हवा के साथ झमाझम बारिश होने लगी। जोगबनी की तरफ जानेवाली ट्रेन जब पहुँची तो उसमें हर डब्बे के दरवाजे पर अपार भीड़। बहादुर लोग ठेलम–ठेल कर किसी तरह भीतर प्रवेश कर रहे थे। बारिश के कारण हर डिब्बे की खिड़कियाँ यात्रीगण बंद किए हुए थे। रेणु इधर–उधर पानी में भीगते हुए भीतर घुसने की कोशिश कर रहे थे, पर सफल नहीं हो पा रहे थे। गार्ड साहब की तीखी सीटी के बाद इंजन का मोटा सुर बजा। गाड़ी चल पड़ी। तब तक रेणु इधर–उधर दौड़–भाग ही कर रहे थे।

चलती हुई गाड़ी का सामने का जो डिब्बा मिला, उसका हैंडल पकड़कर वे लटक गए। दरवाजा बंद था। बारिश लगातार हो रही थी। दूसरे डिब्बे के दरवाजे पर एक आदमी गिरने ही वाला था कि उसके मित्र ने कहा– हत्था पकड़। हत्था! और इधर कुशाग्र बुद्धि रेणु ने भी हत्था पकड़ लिया।

रेणु ने इस प्रसंग को अपने ही दिलचस्प अंदाज में लिखा है– "उस समय प्लेटफॉर्म पर जो हो–हल्ला हो रहा था– वह मेरे ही लिए। गढ़बनैली के अदय–पगला प्वाइंट्समैन की बोली आज भी कानों के पास स्पष्ट गूँज जाती है– "ए–य! छोटे मियाँ– आँ–आँ! मरेगा साला!"

छोटे मियाँ उसने मुझे ही कहा था और गाली मुझे ही दी गई थी। बात यह है कि हमारे इलाके में उन दिनों पाजामा पहनने का रिवाज आम नहीं हुआ था। इसे मुसलमानों का ही पोशाक समझा जाता था। पाजामा नहीं–सूथना!

रेणु भी पहले धोती ही पहनते थे। हाल–फिलहाल में ही उन्होंने पाजामा पहनना शुरू किया था। पाजामा पहनने के कारण ही मियाँ कहा गया था। उन्होंने सोचा– ...छोटे मियाँ मरेगा। हवा और बारिश की मार को कब तक बर्दाश्त कर सकेगा! जलालगढ़ पहुँचने के पहले ही वह गिरेगा–मरेगा। छोटे मियाँ काँप उठा। लपककर 'हत्था' पकड़ते समय ही उसने दरवाजे पर फर्स्ट क्लास का रोमन अंक देख लिया था। उसने सोचा– अंदर कोई अंग्रेज या एंग्लो इंडियन बैठा होगा। अनुनय–विनय करने पर दरवाजा खोलेगा। खादी का पाजामा–कुर्ता देखकर बूट की ठोकर मारकर गिरा देगा। छोटे मियाँ का कलेजा धड़कने लगा। जीभ सूखकर पहले लकड़ी हो चुकी थी। मरता क्या न करता!

छोटे मियाँ के मुँह से ब–मुश्किल निकला– "ओपेन सर! प्लीज! आई एम डाईंग–डाईंग–ओपेन!!"

दरवाजा खुला। एक गोरी कलाई, एक गोरा मुँह ?

छोटे मियाँ ने आँखें मूँद लीं– अब बूट मारा!

हैंडिल से हाथ कैसे छूटा और मैं डब्बे के अंदर कैसे गया– सो, न आज याद है और न उस दिन!

गौर वर्ण व्यक्ति कोई गोरा या एंग्लो नहीं ? शुद्ध खादीधारी! स्वजनोचित मुस्कान? शुद्ध हिंदी में ही उन्होंने पूछा, "क्यों? चलती गाड़ी में क्यों सवार हुए आप?"

"जी, गाड़ी यहाँ ठहरना ही नहीं चाहती....।" तब गढ़बनैली में कभी–कभार ही गाड़ी रुकती थी। कोई रुक गई तो जल्दी चढ़ जाओ, नहीं तो स्टेशन पर किसी और गाड़ी के रुकने की प्रतीक्षा करते रहो।

"कौन–सा स्टेशन था यह ?"

"गढ़बनैली!"

"कहाँ जाना है?"

"सिमराहा स्टेशन!"

मैं लज्जित हुआ। क्योंकि बर्थ पर बैठी हुई लड़की रेणु के भींगे कपड़ों को देखकर शुरू से ही मुस्कुरा रही थी– एक ही अंदाज में। भले आदमी ने उस लड़की से कुछ कहा। न अंग्रेजी, न हिंदी, न ही बांग्ला–मैथिली। किंतु, एकदम ग्रीक या चीनी भी नहीं। मैंने जितना–सा समझा– ठीक ही समझा। उन्होंने कहा था– अभी तो यह गिरकर मरता।..... लूगा? कपड़े को हमारे गाँव में 'लूगा' ही कहते हैं।

'लूगा' सुनते ही मुस्कुराती हुई लड़की उठी। चमड़े के बक्स से खादी की धोती निकालकर वह अपनी भाषा में बोली, "धोती तो हुई लेकिन कुर्ता?"

मैंने कहा, "क्या जरूरत है ? सूख जाएगा..।"

भद्र व्यक्ति ने मेरे हाथ में धोती देते हुए बाथरूम का दरवाजा दिखलाया। शहर की धुली खादी की महीन धोती पहनकर निकला– देखा, एक धुला हुआ हाफ शर्ट! पहनकर देखा– बिल्कुल फिट। कमीज के अंदर गर्दन के पास लाल सूत से एक मोनोग्राम अंकित था टी.पी. क...।

गाड़ी जलालगढ़ स्टेशन पर आकर रुकी। चेकर ने मुझे गढ़बनैली में ही देखा था। अतः गाड़ी रुकते ही दौड़ा आया– "कहाँ वह छोकरा?" फिर मुझ पर दृष्टि पड़ते ही कर्कश स्वर में चिल्लाया– "बाहर निकलो!"

भद्र व्यक्ति ने उसे रोककर कहा, "सिमराहा तक इसके पास थर्ड–क्लास का हाफ टिकट है। फर्स्ट क्लास का बना दीजिए।"

धोती–कुर्ता लेने के समय मैंने थोड़ा 'किंतु–परंतु' किया था। इस बार कुछ बोल ही नहीं सका। उधर वह लड़की, जो मेरी ही उम्र की रही होगी– मुस्कुराती जा रही थी।

इसके बाद, भले आदमी ने मुझे अपने पास बैठाया।

नाम–धाम, पढ़ाई–लिखाई के बारे में पूछा। मैंने देखा, लड़की 'चाँद' मासिक पत्रिका को खोलकर हँसी को छुपाने की चेष्टा कर रही थी।

मैंने कहा– "इन स्कूलों में मेरा मन नहीं लगता है। पहले गुरुकुल कांगड़ी जाना चाहता था। बाबूजी तैयार नहीं हुए। अब कहता हूँ शांतिनिकेतन भेज दीजिए। तो माँ तैयार नहीं होती।"

लड़की ने 'चाँद' के पृष्ठों को बंद कर रख दिया। इस बार भले आदमी ने भी मुस्कुराना शुरू किया। मैं 'चाँद' पत्रिका का अंक हाथ में लेकर बोला– "नया अंक है!" फिर 'दुबेजी की चिट्ठी' निकालकर पढ़ने लगा। (चाँद पत्रिका में 'दुबेजी की चिट्ठी' एक व्यंग्य स्तंभ था, जिसे उस समय के प्रसिद्ध साहित्यकार विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक लिखा करते थे।) फिर बात कैसे बढ़ी कि मैंने 'भारत–भारती' का सस्वर पाठ शुरू कर दिया– "भगवान भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती!"

भद्र व्यक्ति मंत्रमुग्ध हुए थे या नहीं, किंतु मुस्कुराहट मुझे पल–पल उत्साहित कर रही थी। और उनके साथ की लड़की की मुस्कुराहट मुझे उत्तेजित। इसके बाद रवींद्रनाथ की कई कविताएँ– *दिनेर शेषे–घूमेर देश घोमता परा ए छाया... भूलाले रे भूलाले मोर प्राण... न वासरे करिलाम पन लेबे स्वदेशेर दीक्षा...सुनाई।*

बारिश रुक गई थी। मेरा स्टेशन निकटतर होता जा रहा था। स्वरचित कविता सुनाने का समय नहीं था। अब मेरी प्रश्नावली की बारी थी।

"आपका नाम? कहाँ जाइएगा? कहाँ से आ रहे हैं? घर कहाँ है?"

नाम सुनकर तनिक चमत्कृत हुआ था, 'कोइलावाला' ?

घर विराटनगर बताया, तो मुझे अचानक अपने 'दोस्तबाप' की याद आई– विराटनगर के खरदार साहब– जिन्हें मैंने देखा नहीं। माँ और बाबूजी के मुँह से सुनी कहानी– दोस्तबाप की.....।

मैंने कहा, "मेरे दोस्तबाप..... माने मेरे बाबूजी के मित्र विराटनगर में रहते हैं।"

"क्या नाम है आपके पिताजी के मित्र का?"

"खरदार साहब!"

बस, रूपवती कन्या की हँसी छलक पड़ी। बेवजह की हँसी का क्या अर्थ? मैं अप्रतिभ तनिक भी नहीं हुआ, किंतु!

"कौन खरदार साहेब? वहाँ तो कई खरदार साहेब हैं। नाम क्या है उनका?..... खरदार साहेब

नाम नहीं। वह तो आपके यहाँ जैसे कहते हैं न मुन्सिफ, डिप्टी कलक्टर.....।"

छोटे मियाँ का मुँह छोटा हो गया। तो, खरदार साहब नाम नहीं? वह कुनमुनाया, "नाम नहीं?..... जिन्होंने टेढ़ी में आश्रम बनाया था। जिनका स्कूल है।"

"अच्छा! कभी आप गए नहीं विराटनगर? नहीं? तो आइए कभी। आपके पिताजी के मित्र पहले से हैं– अब आपसे मेरी मिताई.....।"

इस बार वह सौभाग्यवती हँसते–हँसते मर गई मानो।

मैंने कहा, "आने का मन तो बहुत दिनों से है। लेकिन.....।"

मेरी मंजिल निकटतम की सीमा रेखा पारकर डिस्टेण्ट सिग्नल के पास पहुँची तो सकपकाया– "ये कपड़े? कमीज–धोती ?"

बोले, "ठीक है आप आ ही रहे हैं!"

अपने गाँव का स्टेशन– सिमराहा स्टेशन– इतना नजदीक पहुँचने का दुख पहली बार हुआ। इसके पहले, गाड़ी पर सवार होते ही सोचता– बीच के स्टेशनो पर नहीं रुककर– सीधे हमारे स्टेशन पर आकर क्यों नहीं रुकती गाड़ी ?

रेणु ने अपने जीवन के प्रसंगों को लिखते हुए दृश्यों की संरचना सही की है, किंतु कुछ तथ्यों में उनसे भूल हो जाती थी। विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला से ट्रेन में पहली बार उनकी भेंट हुई थी, किंतु वे द्वितीय श्रेणी में यात्रा कर रहे थे। उस समय उनकी उम्र बाईस साल की थी। उनकी पत्नी सुशीला कोइराला पंद्रह साल की थी। वे तब पटना से अपनी पत्नी को लेकर विराटनगर जा रहे थे। रेणु की साहित्यिक प्रतिभा से वे चमत्कृत हुए थे। अपने घर जाकर अपने इस नवोदित मित्र के बारे में रस ले–लेकर बताया था। इस प्रसंग को उन्होंने रेणु पर लिखे अपने संस्मरण में इस प्रकार बताया है–

बात 1935 की है। महीना मुझे याद नहीं। मैं अपनी पत्नी सुशीला के साथ अपने घर विराटनगर (नेपाल) जा रहा था। हमारी नई–नई शादी हुई थी। हम कटिहार से जोगबनी जाने वाली गाड़ी में सफर कर रहे थे। जोरों की वर्षा हो रही थी। एक स्टेशन से गाड़ी जब खुली तो देखता हूँ कि एक किशोर हमारे डिब्बे के बाहर डंडी पकड़कर पाँवदान पर खड़ा है। गाड़ी साँय–साँय करती हुई द्रुतगति से दौड़ने लगी थी। वह युवक भीगकर पानी–पानी हो रहा था। हमारा डब्बा सेकेंड क्लास का था। उन दिनों का राजसी सेकेंड क्लास! उस डब्बे में हम केवल पति–पत्नी थे। हम दोनों इसी उधेड़बुन में थे कि उस नितांत अपरिचित व्यक्ति को डब्बे के अंदर आने दिया जाए या नहीं। क्या यह कोई उचक्का तो नहीं है हो सकता है वह चोर हो और हमें एक प्रकार से निर्जन पाकर हमारी हत्याकर हमारा सामान लेकर चलता बने! लेकिन सुशीला से रहा नहीं गया। उसकी सतही सही, उस समय की हालत पर तरस खाकर उसने डब्बे का दरवाजा खोल दिया। अंदर आने पर जब उसने देखा कि डब्बे में पति–पत्नी सरीखे केवल दो ही प्राणी हैं तो वह सकते में आ गया और सीट पर बैठने से कतराता रहा, लेकिन बैठने के लिए हमारे बारंबार अनुरोध पर वह एक सीट पर दुबककर बैठ गया।

रेणु और विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला को इस प्रथम भेंट की याद जीवन भर रही। और रेणु के जीवन में भी यहीं से एक मोड़ आया।

जब वे सिमराहा स्टेशन पर उतरकर पाँव–पैदल अपने गाँव पहुँचे तो अपने पिताजी के एक मित्र से भेंट हुई। उन्होंने रेणु से पूछा, "अरे तुम इतने दिन कहाँ थे? तुम्हारे पिताजी आग–बबूला हैं। कह रहे हैं कि जो नया खड़ाऊँ बनवाया है, उसी से इस बार पिटाई करूँगा।"

रेणु पिता की पिटाई की बात सुनकर डर गए। उन्होंने सोचा– अभी घर जाने में खतरा है! उन्होंने कहा, "चाचाजी, आप मेरे पिताजी को कह दें कि मैं सकुशल हूँ। लेकिन वे जब तक गुस्से में रहेंगे और मारपीट करेंगे, मैं घर नहीं आऊँगा। मैं फारबिसगंज जा रहा हूँ।"

और रेणु सिमराहा लौट गए। पर कोई ट्रेन नहीं थी। वे पैदल ही लगभग चौदह किलोमीटर की दूरी तय कर रेलवे लाइन पर चलते हुए

अर्धरात्रि को फारबिसगंज पहुँचे। पिताजी की यह उक्ति वे बार–बार स्मरण करते–

पाँच वर्ष की उम्र तक लालन

उसके बाद सोलह वर्ष की उम्र तक ताड़न

सोलह की उम्र के बाद पुत्र से मित्रता के व्यवहार का पालन।

लेकिन अभी तो वे पंद्रह साल के ही थे यानी ताड़न की अवस्था। वह भी खड़ाऊ से ताड़न।

फारबिसगंज शहर में सब दुकानें बंद थी। वे स्टेशन के पास बंद हो चुकी गाजीराम की दुकान के सामने के एक बेंच पर पड़े रहे। कांग्रेस आश्रम जाने का मतलब था फँस जाना। उन्होंने विराटनगर जाने का फैसला कर लिया था। उन्होंने सोचा कि भागलपुर, गौहाटी और कलकत्ता तो घूम आया हूँ, लेकिन अब तक हिमालय की ओर नहीं गया। बगल में सटे मोरंग जिले में नहीं गया। विराटनगर अब तक नहीं गया। तो मौका है, कल की ट्रेन पकड़कर जोगबनी जाना है और वहाँ से विराटनगर तो सटा ही हुआ है।

माँ उनको कई बार एक महापुरुष की कहानी सुनाती थी कि वह जब गौने के बाद ससुराल आई थी तो चौथे ही दिन शाम को एक टप्परगाड़ी से एक देवता जैसा पुरुष और उसके साथ देवी दुर्गा जैसी उनकी स्त्री का पदार्पण हुआ। उनकी स्त्री बुखार से लबेजान थी बेचारी? तुम्हारे बाबूजी ने तुम्हारी दादी से कहा था– "माँ, शायद देवता ही हैं वे!"

वे देवता यानी दिव्य पुरुष विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला के पिता कृष्ण प्रसाद कोइराला थे। नेपाल की राणाशाही के दमन से बचने के लिए वे नेपाल से चुपचाप पलायन कर गए थे। विराटनगर से औराही–हिंगना बैलगाड़ी से लगभग बीस किलोमीटर दूर चलकर आए थे। जब उनकी पत्नी स्वस्थ हो गई थी, तब जाते हुए उन्होंने कहा था– "ये दिन और यह दोस्ती कभी नहीं भूलूँगा!"

रेणु जी के पिताजी के वे दोस्त थे और रेणु ने उन्हें कभी नहीं देखा था, पर वे जानते थे कि ये खरदार साहेब उनके 'दोस्तबाप' हैं। पिछले साल उनके बाबूजी ने बताया था कि नेपाल के नए प्रधानमंत्री ने खरदार साहब को नेपाल के विराटनगर में स्कूल खोलने की इजाजत दे दी है और उन्होंने वहाँ एक 'आदर्श विद्यालय' की स्थापना की है। इसके पहले बिहार में वे टेढ़ी आश्रम में शिक्षा का आदर्श रूप प्रस्तुत कर रहे थे। जब विराटनगर में उन्होंने आदर्श विद्यालय की स्थापना की थी, तब टेढ़ी आश्रम के सभी तपे–तपाए शिक्षक भी आ गए थे। हिंदी के प्रसिद्ध लेखक और काकोरी कांड के अभियुक्त मन्मथनाथ गुप्त के पिताजी इस स्कूल के हेडमास्टर थे।

सुबह की पहली गाड़ी से रेणु फारबिसगंज से जोगबनी पहुँचे। जोगबनी में रेलवे का टी–स्टॉल था, जहाँ बहुत अच्छी चाय बनती थी। वे रात में खाना नहीं खा पाए थे। चाय पीकर तृप्त हो गए। फिर भारत और नेपाल सीमा पर नो मेंस लैंड अर्थात् दस गज जमीन को पार किया। यह पहली बार सरहद के पार जाना था। उस पार एक जूट–मिल बन रहा था। रेणु नेपाल की धरती पर पहली बार आए थे, लेकिन नेपाल के बारे में तब भी काफी जानकारी रखते थे। उन्होंने लिखा है– "स्टेशन के पूरब, सीमा के पास अन्य यात्रियों के साथ मोटर–लौरी की प्रतीक्षा करते समय मालूम हुआ कि बीड़ी–सिगरेट जिसके पास पकड़ी जाएगी– उसको काठ से धुन दिया जाएगा और जेल भेज दिया जाएगा। बात उन दिनों की है जब नेपाल के महाराजाधिराज यानी पाँच–सरकार के जन्मोत्सव में एकाध दीप टिमटिमाते थे और तीन–सरकार (प्रधानमंत्री) के जन्म–दिन पर विराटनगर में होली और दीपावली एक साथ मनाई जाती थी। तीन दिनों तक उत्सव के बाजे बजते रहते थे। इसीलिए, छोटी–सी बात पर भी काठ से धुना जाने का खतरा था। इतनी–सी राजनीतिक चेतना उस समय भी थी।"

नेपाल की सीमा में प्रवेश कर रेणु किसी वाहन की प्रतीक्षा करने लगे। कुछ समय के बाद एक ट्रक विराटनगर से आकर रुका। उसमें मजदूरों का हुजूम सवार था। उनके उतरते ही धड़ाधड़ विराटनगर जाने वाले मजदूर उसमें चढ़ने लगे।

रेणु को ट्रक में खचाखच भरे नेपाली मजदूरों के बीच खड़ा होकर यात्रा करने में भय लगा। वे ड्राइवर के पास गए और अपने बगल में बिठाकर ले चलने की याचना करने लगे। ड्राइवर के बगल में एक पंडितजी बैठे हुए थे। उन्होंने रेणु को अपने बगल में बैठा लिया। बैठते ही एक सुगंध उनके मन और प्राण को आह्लादित करने लगी। पंडित जी ने पूछा– "कहाँ जाना है?"

रेणु ने जवाब दिया– "अपने मित्र के घर।"

फिर सवाल– "क्या नाम है मित्र का ?"

"नाम! अस्पताल के पच्छिम में घर है।..... कोइलवरवाला। खूब गोरे हैं। मुस्कुराते रहते हैं। खादी पहनते हैं।"

जोगबनी से विराटनगर की कच्ची सड़क कीचड़ से भरी थी।

जंगलों और तराई के बीच कच्ची सड़क की कीचड़ को मथती हुई गाड़ी विराटनगर के बाजार–अड्डा पर जा लगी। पंडित जी ने कहा, "चलो, मैं पहुँचा दूँगा। मेरा घर भी अस्पताल के पच्छिम में है। लेकिन, कोई कोइलवरवाला मेरे घर के पास नहीं रहता है।"

तब रेणु ने कहा, "शायद कोई कोयलावाला रहता हो?" पंडित जी ने तब खिलखिलाकर हँसते हुए कहा था, "नीचे कीचड़ और गड्डे देखकर सावधानी से चलो।"

रेणु ने जिज्ञासा प्रकट की, "यहाँ कोई म्युनिसिपल बोर्ड या लोकल बोर्ड जैसी कोई चीज नहीं?"

पंडित जी ने तब समझाया, "अपने मित्र से पूछना घर चलकर। यहाँ रास्ते में लोग कीचड़ और धूल से बचते हैं, बोलते नहीं।"

पंडित जी रेणु को साथ लेकर एक लकड़ी के दो मंजिले मकान के सामने पहुँचे। ट्रेन वाली लड़की ऊपर की एक खिड़की से मुस्कुराती हुई झाँक रही थी। पंडित जी ने कहा– "यह रहा तुम्हारे मित्र का घर– लकड़ी से बना दुमंजिला।" फिर उन्होंने आवाज दी, "बिशु को मीत आयेकोछ!"

सीढ़ी के पास बैठकर वहाँ रखे पानी से पंडित जी अपने पैर धोने लगे। रेणु ने कहा– "आपका बहुत–बहुत धन्यवाद पंडित जी! अब आप जाइए!"

पंडित जी ने कहा– "पहले पैर धो लो!"

रेणु ने अपने पैरों को धोकर जब सिर ऊपर किया तो देखा कि उनके मित्र सहित बहुत लोग दुमंजिले से नीचे झाँक रहे हैं। वे सभी हँस रहे थे। पंडित जी उन्हें ऊपर पहुँचाकर नीचे ही अपने आसन पर बैठ गए। रेणु के मित्र ने बताया कि ये मेरे पिताजी हैं। आयँ पंडित जी ही खरदार साहब हैं और 'दोस्तबाप' हैं! जैसे ही ज्ञात हुआ वे दौड़कर गए और 'दोस्तबाप' का चरण–स्पर्श किया।

अब दोस्तबाप को रेणु ने पहली बार 'पिताजी' कहकर संबोधित किया और जीवनभर करते रहे। पिताजी ने पूछा– "उधर ये लोग क्यों हँस रहे हैं, जानते हो?"

इसका कोइराला बंधुओं की सबसे छोटी और लाड़ली बहन बुन्नू अर्थात् विजयलक्ष्मी ने उत्तर दिया, "छक्क पर्ने अचरज की बात! हाफ शर्ट पहना तारिणी दाज्यु का और दोस्त कहते हैं सान्दाज्यु को!"

बिशू यानी विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला रेणु से उम्र में बड़े थे। उनके बाद केशव और उनके बाद तारिणी थे। ट्रेन में जो शर्ट उन्होंने पहना था, वह तारिणी का था। तारिणी उनके हम उम्र थे। मुस्कुराने वाली लड़की ने अपने हँसने का राज खोला, "मैं तो ट्रेन में ही यह नजारा देखकर हँस रही हूँ कि इन्होंने कहा, अब आपसे मेरी मिताई हुई।" फिर वह खिलखिलाकर हँसने लगी। बी.पी. यानी सांदाज्यु ने परिचय कराया– "यह सुशीला है। आपके दर्जे में ही पढ़ती है, लेकिन तुम्हारी तरह 'भारत–भारती' का सस्वर पाठ नहीं कर सकती!"

अब उस शर्ट का मालिक टी. पी. अर्थात् तारिणी का आगमन हुआ और रेणु को अपनी बाँहों में भर लिया और फिर सुशीला से कहा, "देखा भाभी! देखा न! मैंने कहा था न, मेरी खोई हुई कमीज कुछ खोजकर वापस आएगी। मुझे तो एक 'मुसल्लम मितर' मिल गया।"

पहले विश्वेश्वर 'मीत' बने, फिर उसे बदल दिया गया और तारिणी मीत बने। सुशीला भाभी को रेणु ने प्रणाम किया, पर उसने आशीर्वाद नहीं दिया, सिर्फ मुस्कुराती रही।

रेणु दो दिन कोइराला–निवास में रहे और इतना प्यार तथा अपनत्व उन्हें मिला कि अपने को इस परिवार का सदस्य ही समझने लगे। माँ दिव्या कोइराला ने घोषणा की, "अब मेरे पाँच नहीं छह पुत्र हैं।" पाँचों भाइयों ने कहा, "हम पाँच नहीं छह भाई हैं।"

रेणु जब लौटने लगे, तब सबने एक स्वर में कहा, "जब भी इच्छा हो, चले आना। तुम्हारा एक घर विराटनगर में भी है।"

रेणु लौट रहे थे, पर उनके भीतर यही वाक्य अनुगूँजित हो रहा था– तुम्हारा एक घर विराटनगर में भी है। धीरे–धीरे यह वाक्य उनके भीतर घर कर गया। सहसा रवींद्रनाथ की उनकी पढ़ी हुई एक कविता की दो पंक्तियाँ याद आ गईं–

निःस्व आमि, रिक्त आमि, देबार किछु नाई/आछे शुधु भालोबाशा, दिलाम आमि ताई!

अर्थात् मेरा स्व यानी मैं होने का बोध समाप्त हो गया है, मैं भीतर से रिक्त हो गया हूँ, कुछ देने की स्थिति में नहीं हूँ। मेरे पास सिर्फ प्रेम है, वही मैंने दिया। यह देना अपना हृदय ही सौंप देना था। अपनी पूरी भाव–संपदा सौंपकर ही तो सब कुछ पाया जा सकता है।

– यशवंत नगर, हजारीबाग, झारखंड–825301

❑❑❑

भाषा ISSN 0523-1418

रेणु होने का मतलब

राहुल राज आर्यन

रेणु का पूरा नाम 'फणीश्वरनाथ रेणु मंडल' है। साहित्य जगत में रेणु उपनाम से ही ज्यादा जाने जाते रहे हैं। यह वर्ष उनका जन्मशती (जन्म 4 मार्च, 1921) है। भारत भूमि पर आज से सौ वर्ष पूर्व एक ऐसा पुरुष आया जिसने भारत की धूल मिट्टी को जन–जन के ड्राइंग रूम और विश्वविद्यालयों के पुस्तकालय तक पहुँचा दिया। आज रेणु नहीं है लेकिन उनका सृजनकर्म है। उनके इस सृजनकर्म को अनेक दृष्टियों से देखने का कार्य निरंतर होता चला आ रहा है। इन सब के बीच एक महत्वपूर्ण सवाल यह है कि रेणु होने का मतलब क्या है? क्या रेणु होने का मतलब उपन्यास, कहानियाँ, रिपोर्ताज आदि है? क्या 'रेणु होने का मतलब आंचलिकता, सामाजिकता, ग्राम्यपन या भदेसपन है? क्या रेणु का मतलब शूल, फूल, धूल, काँटे, कीचड़, ताल–तलैया है? क्या रेणु का मतलब संघर्ष, विरोध, असहमति और विद्रोह है? अनेक व्याख्याओं और अनेक वादों– विचारधाराओं के प्रवाह में एक प्रमुख चर्चा जो होनी चाहिए थी वह कहीं खो सी गई।

किसी रचनाकार के होने का मतलब उसमें अंतर्निहित उस संदेश की महानता, सार्वभौमिकता, मूल्यवत्ता, शाश्वतता और उसकी व्यापक मानवीय संबद्धता के आधार पर नियत– निर्धारित होती है जो कालिक और भौगोलिक सीमाओं को अतिक्रमित कर विश्व–मानवता के सार्वकालिक हित तथा कल्याण की कामना से उद्भूत हो। इस दृष्टि से हर महान कृति किसी युग विशेष की नहीं युग–युग की होती है, अमर होती है और हर महान कलाकार वैयक्तिक रूप में अपने समय और परिवेश में जीते हुए भी अपने सर्जक रूप में अपने न होने के बाद भी जीवित रहता है तथा पुनः–पुनः मूल्यांकित होकर युगों तक अपनी सार्थकता एवं मूल्यवत्ता बनाए रखता है। रेणु की रचना यात्रा अपने समय और परिवेश के धूल–धुएँ और कोहरे को भेद कर भविष्य की रोशनी में मानव की जययात्रा के अनुसंधान की प्रक्रिया है। स्वातंत्र्योत्तर काल में नई करवट लेकर बदलते हुए गाँव और उनके जीवन की विसंगतियों का जैसा सटीक और यथार्थ चित्रण रेणु ने किया है, वैसा बहुत कम मिलता है। बहुतों में यह अनुभूत न होकर आरोपित होता है। इसका सबसे प्रमुख कारण उनके लेखन के केंद्र में एक उदात्त मनुष्य है। रेणु की रचनाओं में उपस्थित रागात्मकता उसे प्राणवान बनाती है और यह उन्हें आरोपित शब्द–जाल,नारेबाजी या चुटकुलेबाजी से बचा लेती है जिस कारण रेणु का रचना संसार निराशावाद से मुक्त है। रेणु होने का मतलब आनंद और उल्लास है, रेणु होने का मतलब उदात्त मनुष्य का होना है।

रेणु मूलतः कथाकार थे। उन्होंने उपन्यास, कहानी, संस्मरण आदि विधाओं को ना केवल समृद्ध किया, बल्कि उनपर अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप अंकित की। वे अपनी प्रथम कृति 'मैला आँचल' से ही हिंदी कथा साहित्य में विशिष्ट कथाकारों में प्रतिष्ठित हुए। हिंदी साहित्य में यह पहली बार था कि रेणु की सशक्त एवं सक्षम

लेखनी ने एक गाँव के अतरंग एवं बहिरंग जीवन का समग्र रूप चल–चित्र की तरह जीवंत फ्लैश के रूप में–शब्दों में उपस्थित किया। इस दृष्टि से रेणु प्रेमचंद, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, नरेश मेहता की परंपरा से जुड़ते हैं। उनका रास्ता उन व्यक्तिवादी कथाकारों से अलग था जो मनुष्य के अंतर्मन की चक्करदार गलियों की तलाश में भटक कर रह जाता है। दूसरी ओर वे उन कथाकारों से भिन्न थे, जो किसी राजनीतिक चौखटों की वजह से असली मनुष्य की पहचान भूल जाते हैं। रेणु की दृष्टि बहिर्मुखी थी और उनमें ऐसा न था कि वे नागरिक की सच्चाईयों को न देख सके। परंतु उन्होंने खुद के जीवन से जुड़े ग्राम्यजीवन को अपनी रचनात्मक अभिव्यक्ति का केंद्र बनाया इसलिए बहुत बार उनपर गाँव के प्रति 'नॉस्टैल्जिक' होने का आरोप लगाया जाता है।

रेणु हिंदी के उन विरले लेखकों में हैं जो अपने बारे, अपने अंतर्विरोधों के बारे में, जो अंततः हमारे समाज के अंतर्विरोध हैं, खुलकर चर्चा करते हैं। रेणु का होना मतलब एक ही साथ सुर और असुर, पापी और विवेकी, सुंदर और असुंदर, परमात्मा और संत का होना– मतलब पूरे समाज का होना है। रेणु अपने को समाज में अभिरोपित कर ऐसा कहते हैं। 'मैला आँचल' की भूमिका में वे स्वयं कहते हैं– "इसमें फूल भी हैं शूल भी, धूल भी है और गुलाल भी, कीचड़ भी है और चंदन भी, सुंदरता भी है और कुरूपता भी– मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया।" यह समाज के अस्तित्व को उसकी समग्रता में, उसके जटिल अंतर्विराधों के साथ स्वीकारना है, किसी से भी दामन बचाकर निकल जाना नहीं। रेणु होने का मतलब इसी समग्रता की स्वीकारोक्ति और अभिव्यक्ति है। आज ऐसा प्रतीत होता है जैसे यह साहस अब शेष नहीं।

कोई भी रचनाकार अपनी रचना सोद्देश्य करता है। रेणु की रचनाधर्मिता का उद्देश्य ग्राम सभ्यता और संस्कृति को उजागर करना है। यह उद्देश्य प्रत्यक्ष भी हो सकता है और परोक्ष भी। प्रत्यक्ष उद्देश्य 'कला जीवन के लिए' के सिद्धांत पर है और अप्रत्यक्ष उद्देश्य 'कला कला के लिए' का पोषक है। रेणु के यहाँ दोनों उद्देश्यों को जगह मिली है। रेणु होने का मतलब एक अलग 'सामाजिक मूल्य' और 'मानव धर्मिता' है। इसी संदर्भ में श्रीमती कामनी श्रीवास्तव लिखती हैं– "इसमें संदेह नहीं कि रेणु की प्रायः कहानियाँ मानवीय संचेतना से युक्त हैं। उनकी कहानियों में जन–जीवन की जीती जागती तस्वीरें हैं"।

हम जिस यथार्थ को जीते हैं उसी से हमारा अनुभव संसार बनता है। अनुभव संसार के भीतर इंद्रियबोध, भावबोध और सौंदर्यबोध का विकास होता है। हमारे इंद्रियबोध, भावबोध, सौंदर्यबोध और सोच के अनुसार हमारी सृजनात्मकता और उपयुक्त भाषा का विकास होता है।

रेणु कथा की रचना और कथावस्तु की संरचना में मौजूद रहते हैं। वे वातावरण के चित्रण और ब्योरों की सच्चाई में भी उपस्थित रहते हैं। कभी–कभी पात्रों के व्यक्तित्व और गतिविधि पर टिप्पणी भी करते हैं। इन सब जगहों पर रेणु की अपनी भाषा होती है, लेकिन जहाँ पात्र स्वयं अपना दिल खोलते, वहाँ रेणु पीछे हट जाते हैं। 'तीसरी कसम' का हीरामन ठीक कहता है "कचराही बोली में दो–चार सवाल–जवाब चल सकता है, दिल खोल गए तो बात गाँव की बोली में ही की जा सकती है।" मैनेजर पांडेय लिखते हैं– "ऐसा दिल खोल गल्प या गप वही रच सकता है जो गाँव की बोली और गाँव वालों की दिल की एक–एक धड़कन से परिचित हो"। रेणु की रचनाधर्मिता ऐसे कथनों से भरपूर है। वे ग्रामीण पात्रों के अनुभव संसार और उसमें निर्मित भाषा की सीमा का ध्यान रखते हैं और उसका विस्तार भी करते हैं। एक उदाहरण– हीरामन पर्दे के छेद से देखता हैं। हीराबाई एक दियासलाई की डिब्बी के बराबर आईने में अपने दांत देख रही है। .....मदनपुर मेले में एक बार बैलों को नन्ही–चित्ती कौड़ियों की माला खरीद दी थी हीरामन ने। छोटी–छोटी नन्ही कौड़ियों की पाँत। हीरामन को हीराबाई के सुंदर दाँतों को देखकर न हीरे याद आते हैं न मोती। जो जीवन में नहीं आए वो स्मृति में कैसे आ सकते हैं?, हीरामन का सौंदर्यबोध और उसको व्यक्त करने वाली भाषा उसके अनुभव संसार से उपजी है इस अर्थ में रेणु

होने का मतलब जीवन के अनुभव की रचनाधर्मिता है, कल्पनालोक का कल्पित भवन नहीं।

रेणु की रचनाशीलता का सार्थक रूप ग्रामीण जीवन के चित्रण में दिखाई देता है। यहाँ उनका संवेदनात्मक उद्देश्य पूरी सफलता प्राप्त करता है। उनकी कहानियों के उद्देश्य के संदर्भ में मैनेजर पांडेय लिखते हैं– "कहानियों का मुख्य उद्देश्य है अमानवीय परिस्थितियों के बीच और उनके विरोध में खड़ी मानवीयता की तलाश। मानवीयता की तलाश की यह प्रक्रिया दोहरी है– मानवीय संबंधों और भावनाओं के स्तर की तलाश और मनुष्य–विराधी स्थितियों और शक्तियों की पहचान। ''यह दोहरी प्रक्रिया महत्वपूर्ण कहानियों में साथ–साथ चलती है। 'संवदिया', 'जलवा', 'रसप्रिया', 'ठेस', 'तीसरी कसम' आदि इसी प्रकार की रचनाएँ हैं जिसमें अमानवीय परिस्थितियों के बीच मानवीयता के विकास का चित्रण है। इस अर्थ में विचार किया जाए तो रेणु के होने का मतलब है अमानवीय परिस्थितियों में मानवता का उद्घाटन।

रेणु का पाठक यह महसूस करता है कि हम एक ऐसी दुनिया में जी रहे हैं जिसमें मनुष्य विरोधी समाज–व्यवस्था है, उस व्यवस्था को बनाए रखने वाली मूल्य–व्यवस्था और उस मूल्य–व्यवस्था से नियंत्रित मानवीय संबंधों का पीड़ित संसार है। इस व्यवस्था का ताना–बाना मनुष्य विरोधी और समाज विरोधी मनुष्यों से बना हुआ है। यहाँ समाज की मानवीयता और मनुष्य की सामाजिकता दोनों खतरे में हैं। मानवीय संबंध और मानवीय संवेदना निरर्थक हो रहे थे। ऐसे में रेणु के सामने यह प्रश्न था कि क्या कला और कलाकार का दायित्व समाज की मानवीयता और मनुष्य की सामाजिकता की रक्षा करना नहीं है? इस अर्थ में रेणु होने का मतलब इनसान और इनसानियत की तलाश का माध्यम होना है।

रेणु सिर्फ सवाल ही उत्पन्न नहीं करते अपितु समाधान भी प्रस्तुत करते हैं। एक तरफ वे मानवीयता और इनसानियत के लोप होने का सवाल उठाते हैं तो दूसरी तरफ उसके विकल्प के रूप में लोक संस्कृति को सामने लाते हैं। समाज को मानवीय और मनुष्य को सामाजिक बनाने के उद्देश्य से वे 'लोकसंस्कृतिमूलक समाज के गठन' की बात करते हैं क्योंकि लोकसंस्कृति में रेणु मानवीयता के विकास की संभावनाएँ देखते हैं।

ग्राम्य जीवन इसी खास पैटर्न पर आधारित नहीं होता। वहाँ जिंदगी बेतरतीब होती है, स्थिर नहीं गत्यात्मक होती है। जिंदगी अक्रमबद्ध होकर भागती है। रेणु इस गत्यात्मकता के चितेरे हैं। न केवल उन्होंने इस अक्रमबद्धता को महसूस किया है बल्कि करोड़ों पाठकों को भी सजीव रूप में प्रदान किया है। इसी भाव के अनुरूप उनकी शैली भी है। उनकी शैली पर टिप्पणी करते हुए विश्वनाथ प्रसाद तिवारी लिखते हैं, "रेणु प्रेमचंद की तरह किस्सा कहते हुए सरल गति से आगे नहीं बढ़ते। उनका कथा–शिल्प भागती गाड़ी की तरह हैं, सुपरफास्ट ट्रेन की तरह। असंख्य दृश्य, तरह–तरह के दृश्य, सहज और अद्भुत दृश्य, कितने भाव, कितने मूड गुजरते रहते हैं। कभी–कभी तो दो विराधी भाव एक ही वाक्य में मिल जाएँगे। अवसाद, हास्य, व्यंग्य, विनोद का ऐसा घुला–मिला रूप, सुंदर और कुरूप का ऐसा वैविध्य दुर्लभ है। रेणु किसी एक बिंदु पर अपने को ठहराते नहीं। उनकी दृष्टि स्थिर नहीं गत्यात्मक है। वे भागते हैं भले ही अक्रमबद्ध। एक गतिशील सौंदर्य के साथ। मगर भागते हुए भी उनका अनुभव उथला नहीं होता हैं, बल्कि सघन होता जाता है। चटकीला और बाँधने वाला स्थायी"। इस अर्थ में रेणु होने का अर्थ है अक्रमबद्धता का क्रमबद्ध प्रस्तुतीकरण।

कहा जा सकता है कि प्रेमचंद का वारिस होने का दावा तो लगभग सभी कथाकार करते हैं लेकिन तलाश रेणु पर आकर ही पूरी होती है। प्रेमचंद के बाद ग्राम्य जीवन के परिवर्तनों का इतना सूक्ष्म चित्रण अन्यत्र नहीं मिला। वे जो परिदृश्य चित्रित करते हैं, वह ऊबड़–खाबड़ हैं, एक सीधी रेखा में नहीं हैं, जटिल हैं, अनेकायामी हैं, हलचल भरे हैं, गंदले हैं, बाढ़ के पानी जैसे हैं लेकिन अपने वास्तविक रूप में हैं, उसपर कोई मुलम्मा नहीं है। ग्रामीण जिंदगी के यथार्थ का विकृत पहलू भी है, ग्रामीण जिंदगी का अभाव और वैषम्य भी है, इस जिंदगी की कुरीतियाँ, रूढ़ियाँ

और कठोर वास्तविकताएँ भी हैं। रेणु ने यथार्थ के इस सारे चित्रण को भौडे ढंग से नहीं, बल्कि कला के आवरण में प्रस्तुत किया है। यह बात विशेष रूप से ध्यान देने वाली है कि रचनाकार के लिए जो सहानुभूति, सहृदयता और रागात्मक लगाव जरूरी है वह रेणु के पास है। इसी के कारण उनकी रचनाएँ पाठक के मर्म को छूकर न केवल उन्हें प्रभावित करती हैं बल्कि बदलती भी हैं। इनमें वह क्षमता है कि वह पाठक को मानवीय बनाती हैं, उन्हें मनुष्यता के जमीन पर लाती हैं, रेणु के पास अगर जाना है तो दुराग्रह मुक्त होकर जाना चाहिए। यदि जीवित मनुष्य को देखना हो, मनुष्य के भीतर राग, रंध, गंध को महसूस करना हो, उस अंचल की संपूर्ण धड़कन को सुनना हो तो रेणु के पास जाना चाहिए। यहाँ नर के भीतर नारायण की व्यथा मिलेगी। इस अर्थ में रेणु होने का मतलब है सहानुभूति, सहृदयता और रागात्मक लगाव के साथ नर के भीतर नारायण की व्यथा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. श्रीमती कामनी श्रीवास्तव– बिहार के प्रतिनिधि कहानीकार, पृ.सं.–27
2. भारत यायावर (संपादक) –फणीश्वरनाथ रेणु अर्थात् मृदंगिए का मर्म, (लेखक मैनेजर पांडेय) वाणी प्रकाशन, पृ.– 152
3. वही, पृ.– 152
4. वही, पृ.– 147
5. भारत यायावर (संपादक) फणीश्वरनाथ रेणु अर्थात् मृदंगिए का मर्म, (लेखक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी) वाणी प्रकाशन, पृ.–154

सहायक–सामग्री

1. फणीश्वरनाथ रेणु अर्थात् मृदंगिए का मर्म, संपादक, भारत यायावर, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–1991
2. भारतीय साहित्य के निर्माता; फणीश्वरनाथ रेणु, सुरेंद्र चौधरी, साहित्य अकादमी, संस्करण–2008
3. फणीश्वरनाथ रेणु : सृजन और संदर्भ, संपादक अशोक कुमार आलोक, आधार प्रकाशन, संस्करण–1994
4. रचनाकार रेणु, डॉ. पुष्पा जतकर, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–1992
5. फणीश्वरनाथ रेणु की राजनीतिक चेतना, शिवचंद प्रसाद
6. रेणु का रचना संसार, संपादक विजय, विभूति प्रकाशन
7. फणीश्वरनाथ रेणु की कहानियों में आंचलिकता, प्रो. सहदेव. एच. कांबले, अमन प्रकाशन
8. फणीश्वरनाथ रेणु और सतीनाथ भादुड़ी के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. रश्मि बहल, सूर्य प्रकाशन
9. समसामयिक हिंदी साहित्य : संपादक हरिवंश राय बच्चन, नगेंद्र, भारत भूषण अग्रवाल, साहित्य अकादमी, दिल्ली, संस्करण–1997
10. हिंदी उपन्यास : उत्तर शती की उपलब्धियाँ : विवेकी राय, राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–1983
11. विवेक के रंग : संपादक देवी शंकर अवस्थी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण–1985

– म. नं. 89, गली नं. 6, भगत कॉलोनी, संत नगर, बुराड़ी, दिल्ली–110084

❑❑❑

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के रिपोर्ताज में अंचल का यथार्थ रूप

प्रियंका कुमारी

समकालीन हिंदी कथा साहित्य में जहाँ एक ओर फणीश्वरनाथ 'रेणु' कथाकार के रूप में स्थापित हैं वहीं उनके द्वारा लिखे गए संस्मरण और रिपोर्ताज का भी महत्वपूर्ण स्थान है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद साहित्य में एक नई विधा का प्रारंभ हुआ रिपोर्ताज। रेणु रिपोर्ताज लेखक के रूप में अप्रतिम है या यूँ कहें कि रेणु उन लेखकों में से हैं जिन्होंने इस विधा को हिंदी साहित्य में प्रतिष्ठित किया।

हिंदी साहित्य में फणीश्वरनाथ 'रेणु' की पहचान एक कालजयी रचनाकार के रूप में है। अपने पहले उपन्यास 'मैला आँचल' (1954) से ही इन्होंने हिंदी कथा साहित्य को एक नई दिशा दी। इस उपन्यास के प्रकाशित होते ही हिंदी कथा साहित्य में आंचलिकता की नींव पड़ी। रेणु संपूर्ण जीवन राजनीति से साहित्य और साहित्य से राजनीति की ओर एक शोधक यात्री की तरह यात्रा करते रहे। इनकी इस यात्रा को अकारण या भटकावपूर्ण नहीं कहा जा सकता बल्कि यह रेणु के सामाजिक बदलाव के प्रति उत्कट अभिलाषा और तीव्र छटपटाहट को दिखाता है। रेणु का संपूर्ण साहित्य राजनीति की मजबूत बुनियाद पर स्थित है। रेणु ने सामाजिक बदलाव में साहित्य की भूमिका को कभी राजनीति से कमतर नहीं माना। रेणु की पक्षधरता पूरी तरह से शोषितों के प्रति है। इस बात का पता उनके द्वारा लिखे गए अन्य साहित्य–रूपों की तुलना में रिपोर्ताज में अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

रेणु का पहला रिपोतार्ज 'विदापत–नाच' से ही रेणु ने रिपोर्ताज का क्लासिकल प्रतिमान स्थापित किया। रेणु का रिपोर्ताज लेखन एक साथ समय की जरूरत एवं रिपोर्ताज को एक विधागत उत्कर्ष तक ले जाने की थी। हिंदी का पहला रिपोर्ताज शिवदान सिंह चौहान द्वारा लिखित 'लक्ष्मीपुरा' को माना जाता है जो कि रूपाभ (पत्रिका) के दिसंबर 1938 के अंक में प्रकाशित हुआ था। यानी कि रेणु के पहले रिपोर्ताज से मात्र सात वर्ष पूर्व! 'रेणु' लगातार रिपोर्ताज लिखते रहे और अपने रिपोर्ताज लेखन की यात्रा के दौरान उन्होंने दर्जनों रिपोर्ताज लिखे। ये रिपोर्ताज जितने ही भाव–प्रवण हैं उतने ही व्यंग्यधर्मी। पहला ही रिर्पोताज 'विदापत–नाच' अपने विधागत तत्व जैसे तथ्यात्मकता, वातावरण की जीवंतता, भावनात्मक संवेदना और मानवीय दृष्टिकोण एवं नाटकीयता से अलग नहीं है। यह रिपोर्ताज 'मैथिल कोकिल' और 'अभिनव जयदेव' की उपाधि से विभूषित मैथिली के प्रसिद्ध कवि विद्यापति को लोक द्वारा ग्रहण करने का जीवंत दस्तावेज है। 'रेणु' इस रिपोर्ताज में बताते हैं कि 'विदापत–नाच' निम्नस्तर के लोगों की ही चीज रह गई है। तथाकथित भद्र समाज के लोग इस नाच को देखने में अपनी हेठी समझते हैं, लेकिन मुसहर, धाँगड़, दुसाध के यहाँ विवाह, मुंडन तथा अन्य अवसरों पर इसकी धूम मची रहती है। रेणु तथाकथित भद्र समाज पर व्यंग्य करते हैं और कहते हैं कि "जब से मैं अपने को भद्र और शिक्षित समझने

लगा, तब से इस नाच से दूर रहने कि चेष्टा करने लगा किंतु थोड़े दिनों के बाद ही मुझे अपनी गलती मालूम हुई और मैं इसके पीछे फ़िदा रहने लगा।" यहाँ रेणु की पीड़ा और छटपटाहट है कि शिक्षित लोग लोक से कटते चले जाते हैं। सात–आठ कलाकार, दो वादय यंत्र–मृदंग और मंजीरा, एक विदूषक और दो–तीन सहायक गवैये के साथ–साथ लाल साहू की घांघरी और पीतल–काँसे के गहनों के साथ चलने वाला यह 'विदापत–नाच' अपने समय एवं समाज की विद्रूप स्थितियों पर खुलकर कटाक्ष करता है। मृदंग की ताल पर जब नर्तक, सामाजिक के चारों ओर भावँरी यानी चक्कर देना शुरू करता है तो दर्शक निहाल हो जाते हैं। एक प्रकार का माहौल बन जाने के बाद विकटा मैथिली में कहता है।

हे नैक जी (नायक जी)
आब हमरो सुनूँ' (अब मेरी भी सुनिए)'
बाप रे!...
बाप रे कोन दुर्गति नहीं भेल,
सात साल हम सूद चुकाओल,
तबहूँ उरिन नहीं भेलौं।

.....

बकरी बेंच सिपाही के देलियेन्ह,
फटक नाथ गिरधारी।

बारे रे, मेरी कौन दुर्गति नहीं हुई! सात वर्षों तक मैं सूद चुकाता रहा, तब भी ऋण से मुक्त नहीं हुआ। एक बकरी थी, जिसे बेचकर रुपए सिपाही को दे दिए और अब 'फटकनाथ गिरधारी' यानी पूरी तरह से कंगाल हुआ फिर रहा हूँ। हास्य रस से भरपूर इस रिपोर्ताज में रेणु ने उत्तर बिहार के दरभंगा, भागलपुर, पूर्णिया आदि जिलों में व्याप्त गरीबी का दृश्य उकेर कर रख दिया है। अपनी लाजवाब कहन–शैली, आंचलिक शब्दों के प्रयोग के द्वारा उस क्षेत्र की भीनी खुशबू का बोध कराने के साथ–साथ ऐसा लगता है कि हम पाठक नहीं बल्कि दर्शक हैं और सीधे 'सामाजिक' के बीच उपस्थित हैं। रेणु इस 'विदापत–नाच' के बारे में बताते हैं कि "दुखी–दीन अभावग्रस्तों ने घड़ी–भर हँस–गाकर जी बहला लिया, अपनी जिन्दगी पर भी दो–चार व्यंग्य–वाण चला दिए, जी हल्का हो गया। अर्धमृत वासनाएँ थोड़ी देर के लिए जगीं, अतृप्त जिंदगी के कुछ क्षण सुख से बीते। मेहनत की कमाई मुठ्ठी–भर अन्न के साथ–साथ आज इन्हें थोड़ा–सा 'मोहक प्यार' भी मिलेगा, इसमें संदेह नहीं।"

रेणु ने अपने रिपोर्ताजों में समय की नब्ज को बिल्कुल ही सही तरीके से पकड़ा है एवं किसी भी महत्वपूर्ण घटना के प्रति उदासीन न रहकर अपनी तीव्र प्रतिक्रिया दी है। उन्होंने यह प्रतिक्रिया 'सरहद के उस पार', 'नए सबेरे की आशा', 'हड्डियों का पुल', 'एकलव्य के नोट्स', 'जीत का स्वाद', 'पुरानी कहानी : नया पाठ', 'युद्ध की डायरी', 'भूमिदर्शन की भूमिका', 'नेपाली क्रांति कथा', 'पटना–जलप्रलय' आदि रिपोर्ताजों के माध्यम से दी है। रेणु के द्वारा लिखे गए ये रिपोर्ताज उस समय की महत्वपूर्ण पत्रिता में प्रकाशित हुए थे जैसे–'विश्वामित्र', 'जनता', 'जनवाणी', 'संकेत', 'योगी', 'धर्मयुग', 'उर्वशी', 'अणिमा', 'दिनमान' आदि।

रेणु अपनी रचनाओं में अपनी दृष्टि न सिर्फ़ अपने अंचल, राज्य, राष्ट्र बल्कि इसकी सीमा का भी अतिक्रमण करके पड़ोसी देशों नेपाल, बांग्लादेश आदि तक भी ले गए हैं। नेपाली क्रांति में रेणु ने सशस्त्र संघर्ष किया था। इन्होंने अपने रिपोर्ताज़ 'सरहद के उस पार' में विराटनगर की स्थितियों का वर्णन किया है। यह रिपोर्ताज़ जनता (पत्रिका) के 2 मार्च, 1947 के अंक में प्रकाशित हुआ था। विराटनगर पूर्णिया से बिल्कुल ही सटा हुआ है जहाँ रेणु का प्रारंभिक जीवन कोइराला बंधुओं के बीच बीता था। इस रिपोर्ताज़ में 'रेणु' बताते हैं कि इस राज्य में घूस को 'राजधर्म' मान लिया गया है। इसमें रेणु के प्रखर वामपंथी स्वरूप का भी दर्शन होता है। रेणु कहते हैं, "दिन–प्रतिदिन नेपाली प्रजा की जिंदगी बदतर होती जा रही है। इस पर तुर्रा यह कि अभी और भी कितने विषधर अपने–अपने दाँतों को तेज कर रहे हैं, नेपाल की सड़कों पर चक्कर काट रहे हैं। 'प्रभो!' मुझे सिर्फ़ हड्डी पीसने वाली मिल ही खोलने की आज्ञा दी जाए। अमेरिकन मशीन, नए ढंग की पिसाई..., उफ़...! बहुत जल्द ही पूंजीपतियों के घर में नेपाल राज्य बंधक पड़ जाएगा।" इस रिपोर्ताज़ का

ऐतिहासिक महत्व इसलिए भी है क्योंकि इसके प्रकाशन के बाद ही विराटनगर के मजदूरों का आंदोलन शुरू हुआ। इससे रेणु की कलम की धार को भी समझा जा सकता है। यह वह दौर है जब नेपाल की राणाशाही हर तरह से नेपाल का विनाश कर रही थी। इस रिपोर्ताज़ में रेणु ने राणाशाही के अधीन नेपाल की स्थितियों का सजीव चित्रण किया है जिसका कि एक ऐतिहासिक महत्व है। इस दृष्टि से यह रिपोर्ताज़ अपने समय में समसामयिक रहा होगा लेकिन अब इसे अगर कालजयी माना जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

बाढ़ और अकाल पर रेणु ने कई रिपोर्ताज़ लिखे हैं। हालाँकि 1942 में अकाल पर रांगेय राघव का लिखा रिपोर्ताज़ 'तूफ़ानों के बीच' का अपना महत्व है लेकिन रेणु का रिपोर्ताज़ 'हड्डियों का पुल' स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद जनता (पत्रिका) के 17 सितंबर, 1950 के अंक में प्रकाशित हुआ था। इसमें कोसी क्षेत्र में आई भूखमरी का वर्णन किया गया है। एक ऐसा अकाल जहाँ मानव के बरक्स मानवीयता ने घुटने टेके थे। नेताओं के कुत्सित रूप सामने आए। नौकरशाहों के चरित्र और कांग्रेस की भ्रष्टता देखी गई। इस अकाल में सत्य, अहिंसा, गांधी जी और राम–राज्य की छाती कुचली गई। रेणु दिखाते हैं कि इस भीषण अकाल के समय जमींदारों के यहाँ खीर–पूड़ी, मिठाई–हलवा व मांस आदि व्यंजनों की पार्टी उड़ाई जाती है वहीं मजदूरों के यहाँ दाने–दाने के लाले पड़े हैं। रेणु ने यह रिपोर्ताज़ 1950 में लिखा था। यह रिपोर्ताज़ भी अकाल पर लिखा गया है और 1966 में लिखा गया रिपोर्ताज़ 'भूमिदर्शन की भूमिका' यानी 'ऋणजल' भी अकाल पर ही है लेकिन दोनों की स्थितियों में काफ़ी भिन्नता थी। पहली बात तो यह कि 'हड़डियों का पुल' रिपोर्ताज़ सहरसा और पूर्णियाँ जिले में बाढ़ से आए अकाल यानी भुखमरी पर आधारित है लेकिन 'भूमिदर्शन की भूमिका' यानी 'ऋणजल' 1966 में दक्षिण बिहार में सूखे से आए अकाल पर केंद्रित है। रेणु की कहानी 'मारे गए गुलफ़ाम उर्फ़ तीसरी कसम' पर फिल्म बनी थी और रेणु ने एक पटकथा–लेखक के तौर पर कई बार फिल्मी नगरी मुंबई की यात्रा भी की थी। अपने अनुभव को उन्होंने 'एक फिल्मी यात्रा', 'तीसरी कसम के सेट पर तीन दिन', 'स्मृति की एक रील' में व्यक्त किया है। इन रिपोर्ताज़ों में इन्होंने फिल्मी दुनिया की बारीकियों को खोला है। रेणु ने एक कथाकार के तौर पर फिल्मी स्टूडियो के प्रति अपना दृष्टिकोण, फिल्मी जगत के लोगों के साथ अपना व्यक्तिगत संबंध और फिल्म शूटिंग के प्रति अपनी सूक्ष्म दृष्टि की अभिव्यक्ति की है।

'भूमिदर्शन की भूमिका' रिपोर्ताज़ छह भागों में 'दिनमान' (पत्रिका) के दिसंबर–जनवरी, 1966–67 के अंको में प्रकाशित हुआ था। यह एक यात्रा–कथात्मक शैली में लिखा गया रिपोर्ताज़ है जिसमें दक्षिण बिहार में सूखे से उपजी विसंगतियों का जीवंत चित्रण किया गया है। भारत यायावर के अनुसार, "'भूमिदर्शन की भूमिका' की संरचना यात्रा–कथात्मक है। इसमें रेणु भूखे, नंगे दलित वर्ग के लोगों के बीच हमें चुपचाप ले जाकर खड़ा कर देते हैं। भूख से तड़प–तड़प कर मरते हुए मनुष्यों का दर्शन कराकर रेणु असली हिंदुस्तान का साक्षात्कार करवाते है' रेणु व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं, "कौन कहता है, सूखा पड़ा है? सरकार? सोशलिस्ट (प्रजा–संयुक्त)? कम्युनिस्ट? कांग्रेसी? कौन बोलता है? कोई मिनिस्टर? कोई जनता का सेवक?.... ऑल फ्रॉड!" रेणु ने एक–एक शब्द का प्रयोग काफ़ी तराशकर किया है। प्रकृति चित्रण, बिंब, प्रतीक आदि देखते ही बनते है। इस रिपोर्ताज़ से एक बात यह भी स्पष्ट होती है कि रेणु का विश्वास 1950 की तुलना में 1966–67 में टूट चुका था। 'हड्ड़ियों का पुल' रिपोर्ताज़ वाला रेणु एक जोशीला रेणु था लेकिन 'भूमिदर्शन की भूमिका' वाला रेणु उम्मीद खो चुका रेणु है।

'पटना–जलप्रलय' रिपोर्ताज 'दिनमान' पत्रिका में 1975 में प्रकाशित हुआ था। यह रिपोर्ताज 1975 में पटना में आई बाढ़ पर लिखा गया है। 'रेणु' पहली बार बाढ़ में इस प्रकार घिरते हैं रेणु इस रिपोर्ताज में कुछ ज्यादा ही व्यंग्यधर्मी हो गए हैं। इस रिपोर्ताज में भी 'फ्लैश बैक' शैली का प्रयोग किया गया है। भारत यायावर के अनुसार,

"वे वर्तमान को देखते हुए सुदूर अतीत की स्मृति–चित्रों को कभी याद करते हैं, तो कभी भविष्य में भी झाँकने की कोशिश करते हैं, परंतु उनका ज्यादा देखना वर्तमान के क्रिया–कलापों को ही दर्शाते हैं। वे यथार्थ को उसकी बहुरंगी विविधता एवं जटिलता में अत्यंत सूक्ष्मता के साथ इन रिपोर्ताज में अंकित करते है।" रेणु इस रिपोर्ताज में लोककथा का प्रयोग कर रोचकता ला देते हैं। इस रिपोर्ताज के लेखन के समय आपातकाल के काले साए में लेखक जी रहा था। अतः रेणु सरकार पर खुलकर प्रहार नहीं कर पाए हैं जो एक प्रकार से रचना को कमजोर कर देती है। यह लेखक का अंतिम रिपोर्ताज है। अतः इसमें शिल्प और संवेदना अपने पूरे उत्कर्ष पर है। अनेक प्रतीकों, बिंबों एवं आंचलिक भाषा के प्रयोग से रिपोर्ताज में अत्यधिक निखार आ गया है। चूँकि बाढ़ पटना शहर में आई थी, न कि किसी बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में। अतः इस पर लिखे गए इस रिपोर्ताज का ऐतिहासिक महत्व है।

रेणु ने अपने रिपोर्ताजों के द्वारा पाठक वर्ग का ध्यान इस ओर आकृष्ट कराया है कि भारतीय जनता मूलरूप से उत्सवधर्मी है। बाढ़ और सूखे के समय में भी इनकी उत्सवधर्मी जिजीविषा का जवाब नहीं। इन्होंने अपने संक्रमण–काल में साहित्यकार सह–पत्रकार की हैसियत से बहुत ही तीखेपन के साथ सामाजिक विद्रूपताओं के खिलाफ लिखा। इन्होंने अपने रिपोर्ताज में सरकारी तंत्र के जन–विरोधी निरंकुश चरित्र के ख़िलाफ़ खुलकर लिखा। अपनी इस निष्पक्षता एवं पारदर्शिता के लिए ये हमेशा सराहे जाते रहेंगे। रेणु की प्रसिद्धि एक आंचलिक उपन्यासकार एवं कहानीकार के रूप में है। इनके रिपोर्ताज साहित्य पर भी आंचलिकता की गहरी छाप है। ये रिपोर्ताज खाँटी देसीपन से भरपूर होते हुए भी एक क्लासिकल प्रतिमान हैं। रेणु भाषा को लेकर बहुत ही उदार थे। उन्होंने शब्दों के देशज, विदेशज आदि रूपों का प्रयोग किया है। इनके द्वारा प्रयुक्त लोकोक्यिाँ एवं मुहावरे जहाँ पाठक को जमीनी गंध मुहैया कराते है। वहीं गीत काफी मर्मभेदी हैं। रिपोर्ताज में कहीं फ्लैश–बैक शैली का दर्शन मिलता है तो कहीं कल्पना के द्वारा भविष्य को मूर्त किया गया है। उन्होंने कहीं–कहीं गीत–कथा का भी प्रयोग करके वातावरण को रोचक बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। रेणु नाटकीयता का प्रयोग काफी सफलतापूर्वक करते हैं। नाटकीयता का एक प्रमुख तत्व संवाद या कथोपकथन होता है। 'रेणु' ने कथोपकथन के द्वारा रिपोर्ताज को दृश्यात्मक, लयात्मक एवं रोचक बनाने में पूर्ण सफलता हासिल की है। प्रतीकों का प्रयोग करके जहाँ इन्होंने प्रचलित परंपराओं को दिखाया है वहीं इनके द्वारा खड़ा किया बिंब दृश्य को मूर्त करने में पूर्ण सफल हुआ है। रेणु के रिपोर्ताजों में अंकित बाढ़ की विभीषिका के चित्र और बाढ़ के पश्चात् नेताओं और सामाजिक कार्यकर्ताओं के लूट–खसोट वाले चरित्र पर काफी तीक्ष्ण व्यंग्य किया गया है। बाढ़ और अकाल पर लिखे गए इनके रिपोर्ताज कई मायनों में प्रासंगिक हैं। जब–जब सत्ता और सरकारी तंत्र की जनविरोधी नीतियाँ सामने आएँगी, तब–तब ये रिपोर्ताज एक मशाल की तरह इसके वीभत्स चेहरों को दिखाएगा।

– शोधार्थी, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली

❑❑❑

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के रिपोर्ताजों में निहित जनपक्षधरता

मो. दानीश

रिपोर्ताज पत्रकारिता की एक विशिष्ट विधा है। जब कोई पत्रकार या लेखक किसी घटना से तथ्य और सूचना के स्तर पर ही नहीं बल्कि मुख्य रूप से संवेदना के धरातल पर जुड़कर घटना की जीवंत तस्वीर प्रस्तुत करता है तो रिपोर्ताज की सृष्टि होती है।

'रिपोर्ताज' फ्रांसीसी भाषा का शब्द है। इसके पर्याय रूप में अंग्रेजी में आमतौर पर 'रिपोर्ट' शब्द प्रयुक्त होता है। लेकिन 'रिपोर्ट' और 'रिपोर्ताज' में पर्याप्त भिन्नता है। इस संदर्भ को हिंदी साहित्य कोश में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है– "रिपोर्ट के कलात्मक तथा साहित्यिक रूप को रिपोर्ताज कहते हैं। वस्तुगत तथ्य को रेखाचित्र की शैली में प्रभावोत्पादक ढंग से अंकित करने में ही रिपोर्ताज की सफलता है।"[1] वस्तुतः जहाँ रिपोर्ट महज तथ्यात्मकता और सूचना संप्रेषणीयता पर बल देती है वहीं रिपोर्ताज अपनी कलात्मक अभिव्यंजना में घटना के परिवेश को भी पूरी संवेदना के साथ जोड़े रखता है। तथ्यों के साथ संवेदना का यही जुड़ाव रिपोर्ताज को रिपोर्ट से अलग करता है। रिपोर्ट में घटना का यथातथ्य प्रतिबिंब मात्र होता है जबकि रिपोर्ताज में घटना और संबंधित परिवेश की पूरी प्रभावान्विति होती है।

इस प्रकार रिपोतार्ज रिपोर्ट की तरह सिर्फ सूचना नहीं संप्रेषित करता बल्कि सूचना के विभिन्न आयामों की परिवेशगत पड़ताल भी करता है। ऐसा करने के लिए लेखक साहित्य की कई विधाओं को प्रयोग में लाता है। इसलिए जब पत्रकारिता का संयोग कहानी, निबंध, डायरी, संस्मरण और रेखाचित्र से कर दिया जाता है तब वह रिपोर्ताज की श्रेणी में आकर नई विधा बन जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर की टिप्पणी ध्यातव्य है– "लेख घटना का विवरण होता है, स्केच में रेखाचित्र और संस्मरण में जीवन का स्पंदन पर विवरण, चित्र और स्पंदन का समन्वय ही रिपोर्ताज है।"[2] अपनी टिप्पणी को और विस्तारित करते हुए उन्होंने लिखा है– "दूसरे शब्दों में संपादकीय में विचार होता है पर रिपोर्ताज समाचार एवं विचार का संगम है। शायद यों कहकर मैं और समीप आ जाऊँ कि उसमें दृश्य और चिंतन का संगम है।"[3] निश्चित रूप से इन दोनों टिप्पणियों में रिपोर्ताज की पहचान को निर्धारित करने के सूत्र छिपे हैं। रिपोर्ताज को विभिन्न विधाओं की संयुक्त विधा स्वीकारने के साथ–साथ इसमें वैचारिक आयाम को भी प्रमुखता से उभारा गया है। विचारतत्व और भावपक्ष को प्रधानता देने के कारण ही यह स्थापना ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाती है।

हिंदी में रिपोर्ताज को शास्त्रीय ढंग से विवेचित करने का काम शिवदान सिंह चौहान ने किया। रिपोर्ताज के स्वरूप और अभिव्यक्तिमूलक पक्षों को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है– "रिपोर्ताज में वर्ण्य घटना अपने परिवेश की संपूर्ण चित्रात्मकता के साथ अंकित की जाती है और उसमें भाग लेने वाली शक्तियों के इरादों, उनके कार्यक्रमों, गतिविधि,

रीति–नीति और उनके संघर्ष के परिणाम पर निर्भर भविष्य की दिशाओं का मूल्यांकन इस कलात्मक रीति से होता है कि संपूर्ण घटना एक यथार्थ अनुभव बन जाती है। रिपोर्ताज गद्यात्मक युग की कलात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम है।"[4] इस परिभाषा में न केवल घटना, विचार, चित्रात्मकता, यथार्थता, संप्रेषणीयता, प्रभावान्विति जैसे रिपोर्ताज के मौलिक पक्ष समाहित हैं बल्कि इसमें रिपोर्ताज की अन्यतम विशेषता–क्रांतिधर्मिता को भी प्रधानता दी गई है। क्रांतिधर्मिता के इसी पक्ष के कारण रिपोर्ताज का विकास जनपक्षीय पत्रकारिता के एक सशक्त माध्यम के रूप में हुआ।

हिंदी में रिपोर्ताज लेखन की शुरुआत यूरोपीय प्रभाव के कारण हुई। यथार्थवाद की प्रवृत्ति ने 'जो जैसा है वैसा ही' चित्रित करने की प्रेरणा दी। युद्ध, भूख तथा निरंकुश सत्ता द्वारा शोषित, पीड़ित, दमित असहाय जनसामान्य की दारुण दशा को लेखकों और पत्रकारों ने रिपोर्ताज के रूप में पाठकों तक पहुँचाना शुरू किया। युद्ध के मोर्चे से लेकर, जनक्रांति तक की घटनाओं का आँखोंदेखा हाल पूरी भावात्मकता के साथ प्रस्तुत किया गया। बहुत ही कम समय में पाठकों के बीच यह विधा अत्यंत लोकप्रिय हो गई। जॉन रीड, एलिया एहरेंबुर्ग, विलियम बॉलिंग जैसे पत्रकार अपने रिपोर्ताजों के कारण विश्वप्रसिद्ध हो गए। जॉन रीड की बोल्शेविक क्रांति (1917) पर आधारित 'दस दिन जब दुनिया हिल उठी', एलिया एहरेंबर्ग की 'पेरिस का पतन', 'वूरमा'(हिटलर द्वारा रूसी आक्रमण पर केंद्रित) जैसी रचनाएँ इस विधा की क्लासिक रचनाओं में गिनी जाने लगीं।

इसी पृष्ठभूमि में हिंदी में रिपोर्ताज साहित्य का विकास हुआ। शिवदान सिंह चौहान लिखित 'लक्ष्मीपुरा'(1938) से शुरू हुई इस परंपरा को रांगेय राघव की लेखनी ने नई ऊँचाई दी। बंगाल के भयंकर अकाल को उन्होंने 'तूफानों के बीच' में लिपिबद्ध किया है। इस संग्रह में संकलित कुल आठ रिपोर्ताजों के माध्यम से लेखक ने अकाल पीड़ित लोगों की बेबसी, दुःख, मनुष्य का मनुष्य के प्रति पशुवत व्यवहार और प्रकृति के क्रूर अट्टहास को मार्मिक रूप में अभिव्यक्त किया है। हिंदी के अन्य प्रमुख लेखकों में कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, धर्मवीर भारती, प्रकाशचंद्र गुप्त, रघुवीर सहाय आदि हैं।

हिंदी में रिपोर्ताज लेखन की परंपरा में फणीश्वरनाथ 'रेणु' एक युगप्रवर्तक रचनाकार हैं। उन्होंने न केवल हिंदी रिपोर्ताज का फलक विस्तृत किया बल्कि उसमें कई नए आयाम जोड़कर उसे उत्कर्ष तक पहुँचाया। विषयों की विविधता हो या बात कहने का तरीका हर जगह उन्होंने अपनी मौलिकता से इस विधा को समृद्ध किया है। उन्होंने रिपोर्ताज को बीसवीं सदी की एक युगांतकारी उपलब्धि माना है– "गत महायुद्ध ने चिकित्सा–शास्त्र के चीर–फाड़ विभाग को पेनिसिलीन दिया और साहित्य के कथा–विभाग को रिपोर्ताज।"[5] रेणु का यह वक्तव्य धर्मयुग पत्रिका (1963–64) में उनके रिपोर्ताज 'पुरानी कहानी : नया पाठ के साथ' प्रकाशित हुआ था। बताने कि जरूरत नहीं है कि जैसे पेनिसिलीन प्रतिजैविक ने महामारी और संक्रमण से त्रस्त मानव शरीर को स्वस्थ और निरोग किया उसी तरह रिपोर्ताज ने दुःख, पीड़ा, निराशा से त्रस्त मानव मन को संबल और सहानुभूति दी। उसे मानवीय भावों से एकाकार किया। इन्हीं अर्थों में रेणु रिपोर्ताज की क्रांतिकारी भूमि का और ऐतिहासिक महत्ता को प्रतिष्ठित करते हैं। रिपोर्ताज लेखन रेणु के लिए एक क्रांतिकर्म की तरह था जिसे वे अपनी लेखनी से अंजाम दे रहे थे। यही नहीं अपनी प्रतिबद्धता से परिचित कराते हुए उन्होंने लिखा है– "मैं प्रतिबद्धता का केवल एक ही अर्थ समझता हूँ आदमी के प्रति प्रतिबद्धता बाकी सब बकवास है।"[6] इस टिप्पणी से उन्होंने अपने जनपक्षीय सरोकारों को स्पष्ट कर दिया हैं।

रेणु ने विभिन्न विषयों जैसे– बाढ़ अकाल, संस्कृति, युद्ध, फिल्म और क्रिकेट आदि पर उत्कृष्ट रिपोर्ताज लिखे। अपने रिपोर्ताजों में उन्होंने प्राकृतिक आपदाओं के समय संपन्न लोगों की अमानवीय और स्वार्थ, गाँवों में विष की तरह फैल रहे जातिवाद और घृणा तथा प्रदर्शन प्रियता जैसी सामाजिक कुरीतियों को बखूबी उजागर किया है। बाढ़ और अकाल पर लिखे उनके रिपोर्ताज अत्यंत मार्मिक, यथार्थपरक और विचारोत्तेजक हैं।

अकाल पर लिखे उनके एक रिपोर्ताज का यह अंश द्रष्टव्य है जिसमें रेणु ने अपने सूक्ष्म निरीक्षण, गहरी संवेदना और मार्मिक अभिव्यंजना से सामाजिक त्रासदी को सजीव कर दिया है। "देख रहा हूँ एक भी मध्यमवर्गीय किसान के पास अब अपनी जमीन नहीं रह जाएगी।..... परिवार टूट रहे हैं। औरतों की देह के गहने (यहाँ तक कि बच्चों के गले की 'ताबीज' भी) बंधक पड़ चुके हैं– मैंने आज अपनी कमला का कंगन बेचा है। बेचकर परिवार का चालव ख़रीदा है। बस पंद्रह दिनों की खुराक। इसके बाद? जमीन? –मगर जमीन है कहाँ?..... चंद महीनों के बाद ही सारे जिले में बंगाल से भी भीषण अकाल का महा–तांडव नृत्य शुरू हो जाएगा।"[7]

रेणु के इस मर्मस्पर्शी वर्णन से, लोकजीवन से उनके गहरे जुड़ाव का भी पता चलता है। वो इन स्थितियों के महज दर्शक नहीं थे बल्कि भोक्ता भी थे। कोसी अंचल में जन्म लेने के कारण बाढ़ और अकाल की इन विभीषिकाओं को उन्होंने बचपन से देखा था। रेणु के अपने अंचल से घनिष्ठ संबंध पर टिप्पणी करते हुए अशोक ओझा ने लिखा है– "फणीश्वरनाथ 'रेणु' तो पूर्णिया जिले के फणीश्वरनाथ मंडल के व्यक्तित्व का एक हिस्सा था जो साहित्य लिखता था। साहित्य के द्वारा वे अपने अंचल के दो कीटाणुओं जहालत और गरीबी को दूर करना चाहते थे। उनकी यह मान्यता थी कि लेखक को अपने बसेरे से दूर नहीं जाना चाहिए। उस अंचल के सर्वांग से उसे परिचित होना चाहिए क्योंकि लेखक जो लिखता है अपना दुख दर्द बँटाने के लिए लिखता है। अपने आपको खोजने के लिए लिखता है और अपने आपको हम अपनी भूमि में ही खोज सकते हैं। वास्तव में रेणु ने जो कुछ लिखा, वह उनके समाज का पूर्णिया अंचल के समाज का सच है। रेणु का केवल उससे परिचय ही नहीं है कई को उन्होंने जिया भी है।"[8] तभी वो इन त्रासदियों की भयावहता को इतनी गहराई से समझ पाए। अकाल और बाढ़ जैसी प्रलयंकारी प्राकृतिक आपदाओं पर लिखे उनके रिपोर्ताज इस मायने में मील का पत्थर हैं कि उनमें तदयुगीन समाज की उन सभी विद्रूपताओं को दर्ज किया गया है जिनसे पूंजीवादी शोषणकारी सामंती व्यवस्था को फलने–फूलने का अवसर मिलता है। इन रिपोर्ताजों में आजादी के बाद बिखर गए उस लोककल्याणकारी राज्य की परिकल्पना का ध्वंसावशेष भी दिखलाई पड़ता है जिसका मूल उद्देश्य अंतिम आदमी अर्थात् हाशिए के समाज का विकास करना था। दरअसल इन रिपोर्ताजों को पढ़ते हुए भारतीय लोकतंत्र के धनतंत्र और शोषणतंत्र में बदलते जाने की प्रक्रिया समझ में आने लगती है।

इन रिपोर्ताजों में तथाकथित सभ्य समाज के प्रतिष्ठित और माननीय लोगों के असली स्वार्थी, शोषक चरित्र की पहचान उजागर करते हुए रेणु ने लिखा है– "पाँच जन केर मजदूरी.... पाँच मुट्ठी एहे खेसारी देखऽ। खेसरियो निपट्ट घुनाएल से देखऽ। मालिकवन के कौन फिकिर? घर में अनाज पानी भरल है। हमनिये के उपजायल औसायल बरायल और घर में सईंतल अनाजवा देखल अनाजवा कहाँ चल जैते भैया? अपने बिजली के कुइयाँ खना रहलन हैं। गरीबवन के देखे वाला कोई नहीं! सात दिन केर लड़कोरिया के एह खेसारी के घाटा? हे परमेसर अइसन कभी न देखली।"[9]

दक्षिण बिहार के अकाल पर केंद्रित 'भूमिदर्शन की भूमिका' (1965) रिपोर्ताज से उद्धृत यह अंश उस मेहनतकश समाज का विलाप है जिसे हाड़–तोड़ मेहनत के बावजूद दो जून की रोटी नसीब नहीं होती। जिस समाज की एक सद्यः प्रसूता को हानिकारक खेसारी की सड़ा दाल खाने को विवश होना पड़ता है। भले ही धान के कटोरा के रूप में प्रसिद्ध दक्षिणी बिहार के किसान परिवार भात खाने को तरस जाएँ और उनका यह बयान हृदय को बेध दे कि 'असिने में भात खैलिए'[10] लेकिन इन साहूकारों के पास अनाज की कोई कमी नहीं होती और मेहनतकशों का शोषण कर राज करने वाले इन लोगों का सुख–ऐश्वर्य कभी कम नहीं होता।

असमानता और अन्याय का चित्र और चरित्र हर जगह एक जैसा है चाहे वह दक्षिणी बिहार हो या उत्तरी बिहार। कोशी अंचल के अकालग्रस्त लोग काम की तलाश में गाँव घर छोड़कर निकले।

कई जगह प्रयास के बाद अंत में एक जगह महज 'भरपेट भात' की क़ीमत पर काम मिला भी तो इस शोषणकारी व्यवस्था ने वहाँ भी उनका पीछा नहीं छोड़ा– "लक्ष्मीपुर बाबू के यहाँ उस टोले के कुछ लोग पेट भात पर भी काम करने को राजी हुए तो सुना कि पाव भर चावल पर भी बज्जर।"[11] भुखमरी के इस मार्मिक प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए रेणु ने लिखा है–" वह अपनी देह की बची–खुची ताकत को आँखों पर डालती है, आँखें बाहर निकल आती हैं। बड़ी–बड़ी आँखें। आँखें मानो शून्य में गड़ी रह जाती हैं।..... उसके पाँव धरती पर जम नहीं पाते। उसके पेट में भीषण पीड़ा मालूम होती है। चार महीने का गर्भ..... मांस का पिंड बाहर आने के लिए खीर पूरी का मुलुक देखने के लिए अंतिम जोर लगाता है। भगिया धरती पर गिर पड़ती है।..... धरती गर्म खून से पट जाती है।"[12] भुखमरी की इस अंतहीन पीड़ा से कई लोग मौत के शिकार हो गए लेकिन बड़े जमींदारों पर इसका कोई असर नहीं पड़ा। उनकी जड़ हो चुकी संवेदना में कोई परिवर्तन नहीं आया बल्कि वे और ज्यादा अत्याचारी और दानवी हो गए। भूख से बिलखती आबादी के श्रम का शोषण तो इन्होंने किया ही, बाढ़ में मुट्ठी भर मकई के लावे के बदले दलित स्त्रियों–लड़कियों का शारीरिक शोषण भी किया। इन विद्रूपताओं की परत–दर–परत खोलते हुए रेणु ने लिखा है– "रहिकपुर के बाबू कम उम्र के लड़के जिनकी मसे भी अभी नहीं भीगी।..... चार पाँच दिनों से मुसहर टोली में चक्कर काट रहे हैं..... झोली में मकई के दाने लिए रहते हैं।.... /कहते हैं जिन्हें मकई लेना है लो सेर दो सेर नहीं चार मुट्ठी कर्ज। लेकिन सूद पहले ही चाहिए। उनकी नई जवानी बूढ़ी या जवान में कोई फर्क नहीं समझती।"[13] इस कुकर्म में इन बाबुओं के अलावा मुनीम, सिपाही, सेठ सब शामिल थे।

इन यातनामयी परिस्थितियों में राजनेताओं के दोहरे चरित्र और धनबल–बाहुबल के गठजोड़ को उजागर करते हुए रेणु ने मंत्री जी द्वारा जारी रिपोर्ट का हवाला देते हुए लिखा है– "अकाल नहीं है। मौत नहीं हुई। खबरें झूठी हैं। अकाल की बात करने वाले गद्दार हैं, स्वार्थी हैं। सारे जिले में सिर्फ दो मौते हुई हैं..... एक बीमार था दूसरा भिखमंगा।"[14] उल्लेखनीय है कि यह वही मंत्री जी थे जिन्होंने बाढ़ग्रस्त इलाकों का दौरा इस अंदाज़ में किया था– "देवता के मोटरबोट पर एक खास किस्म के रेडियोसेट का इंतेजाम है। भला जल विहार में जब संगीत नहीं हो तो क्या मजा।"[15] जनता की सेवा को अपना धर्म कहने वाले इन नेताओं की पोल खोलते हुए रेणु ने यह स्पष्ट कर दिया है कि ये आम जनता के नहीं पूंजीपति वर्ग के सेवक हैं और उन्हीं के पोषक हैं। उनका जनसरोकारों से कोई लेना–देना नहीं है।

अकाल और तदजन्य परिस्थितियों पर केंद्रित इन रिपोर्ताजों में मेहनतकश समाज की जिस मर्मांतक पीड़ा का चित्रण किया गया है उस पर टिप्पणी करते हुए सुरेंद्र चौधरी ने लिखा है– "सूखा एक अदृश्य कारक है इस सूखे को प्राकृतिक घटना से अधिक मानवीय दुर्भावना के रूप में चित्रित कर लेखक ने वर्ग विभाजित समाज में छिपी वास्तविकता को उघाड़ कर रख दिया है। ऋणजल का अदृश्य आतंक निरंतर अदृश्य होता चलता है– पशुधन और मनुष्य की अपूरणीय क्षति। जीवन पर मृत्यु की गहराती छाया।..... सूखे की इस रपट में कुतूहल या नाटकीयता नहीं है। उसमें एक करुणाशील उत्ताप है, जीवित क्रोध।"[16]

इसी संदर्भ में भारत यायावर की यह टिप्पणी उल्लेखनीय है.... "इन दोनों रिपोर्ताजों में रेणु भूखे, नंगे दलित वर्ग के लोगों के बीच हमें चुपचाप ले जाकर खड़ा कर देते हैं। भूख से तड़प–तड़पकर मर रहे मनुष्यों का दर्शन करवाकर मानो असली हिंदुस्तान से ही साक्षात्कार करवाते हैं। इन दोनो रिपार्ताजों में उन्होंने जीवन की विसंगतियाँ दिखलाकर व्यंग्य किया है"[17] निश्चित रूप से अकाल की इन यातनामयी परिस्थितियों के लिए प्रकृति से ज्यादा मनुष्य दोषी है। इसीलिए इस यथास्थिति को बदलने हेतु रेणु आह्वान करते हैं– "रत्तूसिंह मर जाएगा तो क्या होगा? इतने लोग मर गए तो क्या होगा? कुछ नहीं होगा?"[18]

इन प्रश्नों के माध्यम से, प्रकारांतर से लेखक इस व्यवस्था को बदलने का भाव प्रकट करता है क्योंकि बिना इस व्यवस्था को बदले समतामूलक समाज का निर्माण अंसभव था। आचार्य नरेंद्र देव, राममनोहर लोहिया और जयप्रकाश नारायण जैसे समाजवादी दिग्गजों के सान्निध्य में दीक्षित रेणु जैसे समर्पित समाजवादी को इन स्थितियों को बदलने का आह्वान मात्र करने से संतोष नहीं मिल सकता था। तभी तो चौतरफा मची लूट और अराजकता में भी वो यथास्थितिवाद को बदलने का संकेत कुछ यूँ करते हैं– "जवानों ने टाँगी कुदाली से बाँस की बल्लियों, लकड़ियों को काटकर मचान बाँधना शुरू किया।..... नौजवान लोग जीवट के साथ जुटे हुए हैं। मचान बाँध रहे हैं, केले के पौधों को काटकर बेड़ा बना रहे हैं।..... जब तक सांस तब तक आस।"[19] बताने कि जरूरत नहीं है कि जब बाढ़ के समय सरकारी अमले से लेकर जनप्रतिनिधि तक लूट–खसोट में लगे थे तब रेणु आमजनता की सामूहिक सहभागिता के अदम्य प्रयासों को एक आशा की किरण की तरह महसूस कर रहे थे। कहने का तात्पर्य यह है कि चेतनशील जनता की सामूहिक परिवर्तनकारी कार्रवाइयों से ही मुकम्मल बदलाव हो सकता है इसी विश्वास को वो पुष्ट कर रहे थे। अपने इस विश्वास को और मजबूती प्रदान करते हुए वे बाढ़ पीड़ितों की अतुलनीय जिजीविषा का चित्र भी खींचते हैं– "सर्वहारा लोगों की टोली, सिर झुकाए बचे–खुचे पशुओं को हाँकते, बाल–बच्चों, मुर्गे–मुर्गियों, बकरे–बकरियों की गाड़ियों, बहँगियो को पीठ पर लादकर अपने गाँव की ओर जा रही है। जहाँ न उनकी मड़ैया साबित है न खेतों में एक चुटकी फसल। किंतु पैर तेजी से बढ़ रहे हैं। तीस–बत्तीस दिन के रौरववास के बाद उनके दिलों में अपने–अपने बेघर के गाँव और कीचड़ से भरे खेतों के लिए प्यार की बाढ़ आ गई है।..... कीचड़ पर उनके पैरों के छाप दूर–दूर तक अंकित हो रहे हैं।"[20] जीवन को फिर से नवसृजित करने का यह साहस ही परिर्वतन की आधारभूमि तैयार करता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में जब सारी व्यवस्थाएँ लोक के लिए, उनके हित के लिए हैं तो इसमें समा चुकी विकृतियों को दूर करने का दायित्व भी 'लोक' को ही उठाना होगा तभी असल अर्थों में सुराज की अवधारणा यथार्थ में बदल सकती है। जहाँ एक ओर रेणु सर्वहारा की इस जीवटता को उभार रहे थे वहीं सर्वहारा की मुक्ति– जहाँ समता, समानता और बंधुता सबके लिए हो, के लिए व्यापक एकता के भी हिमायती थे। मजदूरों, किसानों से लेकर बुद्धिजीवियों की अटूट गोलबंदी से ही मुकम्मल बदलाव का लक्ष्य हासिल हो सकता था। अपने रिपोर्ताज 'नए सवेरे की आशा' में उन्होंने इसे प्रकट भी किया है जब वो सिलसिलेवार यह बताते हैं कि कैसे पूरे पटना शहर में किसानों के सवाल के पक्ष में बिहार के तमाम बुद्धिजीवी, चित्रकार, पत्रकार, कवि, लेखक, अध्यापक आदि सड़कों पर एक साथ उतर गए थे और चारों ओर यही नारा गूँज रहा था– "रोटी, कपड़ा और मकान, माँग रहा है हिंदुस्तान।"[21] समानतापूर्ण व्यवस्था के समर्थक रेणु जनता के अधिनायकत्व में विश्वास करते थे और भ्रष्ट सत्ता को सशक्त चुनौती भी जनता की सामूहिक गोलबंदी के जरिए ही देते हैं– "राजधानी चलो हजारों की तादाद में जमा होकर, अहंकार के नशे में मदहोश, जनता से दूर जनता के दुख दर्द से परे, जनमत से परे, गद्दी के मालिकों को झकझोर कर जगाओ और कहो– "अंधे हो गए हो, देखते नहीं,? बहरे हो गए हो सुनते नहीं? वादा भूल गए झूठे?"[22]

रेणु भारतीय लोकतंत्र की सफलता को शासन में किसानों, मजदूरों और वंचितों की भागीदारी से मूल्यांकित करने के पक्षधर थे। इस संबंध में भारत यायावर ने लिखा है– "वे मजदूर–किसान राज की स्थापना को ही असली सुराज मानते थे।"[23] इसकी वजह यह थी कि भारत जैसे कृषिप्रधान देश में जब किसानों, मजदूरों का शासन में समुचित प्रतिनिधित्व सुनिश्चित नहीं होगा तब तक समावेशी विकास जैसी कोई भी बात या वादा छलावा सिद्ध होगा। ग्राम जीवन को प्रगति की मुख्य धारा से जोड़ने के लिए इन वर्गों की समुचित भागीदारी बगैर जनांदोलनों के संभव नहीं हो सकती। इस

परिप्रेक्ष्य में सुरेंद्र चौधरी ने लिखा हैं– "रेणु के रिपोर्ताज यही सिद्ध करते हैं कि भारतीय उपमहाद्वीप के स्तर पर ग्राम समुदायों और अंचलों के जीवन की जड़ता टूट रही है और आजादी के बाद उनकी धड़कनें इसी कालातीत जीवन में द्वीपों की तरह आत्मनिर्भर (या जड़?) गाँवों की वास्तविकता को बदलेंगी। ऐसी क्रांतिकारी आशाएँ तमाम लोगों के साथ रेणु के मन में भी थीं।"[24]

रेणु के रिपोर्ताज लेखन का सफर 'बिदापत नाच' (1945) से शुरू हुआ था। अपने पहले ही रिपोर्ताज में रेणु ने जिस विषयवस्तु को केंद्र में रखा है वह यह जानने के लिए सबसे प्रामाणिक स्रोत है कि रेणु कितनी शिद्दत और ईमानदारी से हाशिए के समाज के साथ, उनके सवालों के साथ खड़े थे। उनकी पक्षधरता की बुनियाद को समझने का यह एक महत्वपूर्ण आयाम है। इस रिपोर्ताज में क्रूर जाति व्यवस्था के कारण शताब्दियों से दंश झेल रहे दलित समाज की पीड़ा और उनकी सांस्कृतिक परंपरा दोनों को बहुत ही बारीकी से उभारा गया है। सांमती समाज में दलितों के इस सांस्कृतिक प्रदर्शन पर भी प्रतिबंध था लेकिन रेणु ने इसे लोकजीवन की समृद्ध परंपरा से जोड़ दिया और आधुनिक महानगरीय नृत्य आचार्यों पर इन शब्दों में व्यंग्य किया है– "नृत्य कला के आचार्य श्री उदय शंकर जी से प्रार्थना करूँगा कि वे इसे मेरी अधिकार चेष्टा कदापि नहीं समझें। मेरा तो अनुमान है कि उन्होंने इस नाच का नाम भी नहीं सुना होगा। ओरिएण्टल और क्लासिकल नृत्य में दिलचस्पी रखने वाले पाठक–पाठिकाओं का समय व्यर्थ ही बर्बाद न हो, इसलिए मैं पहले ही अर्ज कर देता हूँ– यह महज 'बिदापत नाच' है।"[25] इस व्यंग्य से लेखक ने तथाकथित महानगरीय आधुनिक विमर्शों में लीन लोगों को उनकी सीमाओं का बोध भी कराया है। इसी रिपोर्ताज़ में रेणु ने ऋण के जाल में फंस चुके दलितों की अंतहीन शोषणगाथा को भी प्रस्तुत किया है। पूंजीपति सामंती समाज द्वारा पहले तो उन्हें ऋण के जाल में फंसाया जाता है फिर आजीवन उन्हें बंधुआ मजदूर बना दिया जाता है फिर भी उन्हें ऋण से मुक्ति नहीं मिल पाती–

बाप रे
बाप रे कोन दुर्गति नहीं भेल
सात साल हम सूद चुकाओल,
तबहुँ उऋण नहीं भेलौं।
कोल्हुक बरद सन खटलों रात–दिन,
करज बाढ़त ही गेल।
थारी बेंच पटवारी के देलियैन्ह
लोटा बेच चौकीदारी
बकरी बेच सिपाही के देलियैन्ह
फटक नाथ गिरधारी।[26]

'बिदापत नाच' रिपोर्ताज की महत्ता को रेखांकित करते हुए सुरेंद्र चौधरी ने टिप्पणी की है– "रेणु की प्रारंभिक रचनाओं में एक विचित्र प्राणशक्ति लक्षित की जा सकती है यह प्राणशक्ति अजेय है विषमताओं और मारक अभिव्यक्ति विभीषिकाओं के बीव मृत्यु और दुर्योग से संघर्ष करती यह प्राणशक्ति तमाम घटनाओं से ऊपर है।"[27]

रेणु के समाजवाद का लक्ष्य विश्वव्यापी था वो संपूर्ण मानवता की समानता के पक्षधर थे। उनकी इस पक्षधरता को किसी भौगोलिक चौहद्दी में बाँधना असंभव था और यही वजह रही कि हिंदी का यह यशस्वी लेखक एक योद्धा के रूप में नेपाल की मुक्तिकामी जनता के साथ नेपाली क्रांति (1951) का हिस्सेदार बन गया। राणाशाही के निरंकुश भ्रष्ट राजतंत्र से त्रस्त नेपाल में जब कृष्ण प्रसाद कोइराला के नेतृत्व में लोकतांत्रिक शासन के लिए जनक्रांति आरंभ हुई तो रेणु ने उसमें कलम और बंदूक दोनों से भागीदारी की। दिन में युद्ध के मोर्चे पर सशस्त्र सैनिक के रूप में और रात में अपनी कलम के जरिए इन घटनाओं की रिपोर्टिंग करके वो यह जिम्मेदारी निभा रहे थे। 'नेपाली क्रांति कथा' रिपोर्ताज आधुनिक नेपाल के लोकतांत्रिक संघर्षो का एक जीवंत दस्तावेज है। नेपाल को रेणु 'सानो आमा' अर्थात् 'छोटी माँ' कहा करते थे इसकी वजह यह थी कि वहाँ उनकी प्रांरभिक शिक्षा–दीक्षा हुई थी और बाद में समाजवाद का ज्ञान भी यहीं मिला था। उसी नेपाल में गरीबी से त्रस्त आमजन भुखमरी के कगार पर पहुँच गए थे– "सानी माँ यों ढिठो के

सित खाने हो? (अर्थात् मौसी जी यह मक्के की खिचड़ी किस चीज के साथ खाऊँ, घर में नमक भी नहीं है।"[28] नेपाल की इस प्रगतिशील कविता से वहाँ की दुरावस्था को समझा जा सकता है। ऐसे हालातों में जनक्रांति का होना स्वाभाविक भी था और उसमें रेणु जैसे व्यक्ति का भाग लेना भी। आज जब नेपाज में संसद और प्रादेशिक विधानसभाओं के लिए लोकतांत्रिक रूप से चुनाव चल रहे हैं तब रेणु के इस रिपोर्ताज और उनकी प्रतिबद्धता का स्वरूप स्वयं उद्घाटित हो जाता है। वर्षों तक राजशाही झेल चुकी नेपाली जनता को आज जो अधिकार लोकतंत्र के रूप में मिला है उसकी आधारशिला 1951 की 'नेपाल क्रांतिकथा' में मौजूद है।

निर्मल वर्मा ने रेणु पर केंद्रित अपने लेख 'समग्र दृष्टि' में लिखा है– "कलात्मक 'विजन' और क्रांति दोनों की पवित्रता उनकी समग्र दृष्टि में निहित है, संपूर्णता की माँग करती है: एक ऐसी संपूर्णता, जो समझौता नहीं करती, भटकती नहीं सत्ता के टुकड़ों पर या कोरे सिद्धांतों की आड़ में अपने को दूषित नहीं करती। वह एक ऐसा मूल्य है जो खुली हवा में साँस लेता है और इसलिए अंतिम रूप से पवित्र और सुंदर और स्वतंत्र है।"[29] वाकई रेणु ने कभी मूल्यों से समझौता नहीं किया और न ही कभी झुके। जनता और समाज के प्रति एक रचनाकार के रूप में अपनी प्रतिबद्धता की सबसे बड़ी मिसाल उन्होंने आपातकाल के विरोध में अपनी पद्मश्री (जिसे रेणु पापश्री मानते थे) की उपाधि और सरकार के पेंशन को वापस करके पेश की थी। उनकी पक्षधरता का स्वरूप बहुआयामी और विश्वव्यापी था। वे शोषित, दमित मानव की पूर्ण मुक्ति के पक्षधर थे। हर तरीके के शोषण– सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि को सामप्त करके ही संपूर्ण मानवता को बराबरी मिल सकती है अपने इसी विश्वास को उन्होंने अपने लेखन खासकर रिपोर्ताजों में दर्ज किया है।

पत्रकारिता को लोकतंत्र के चौथे खंभे के रूप में और सशक्त बनाते हुए उन्होंने अपने रिपोर्ताजों से सदा एक प्रतिपक्ष की भूमिका अदा की। ऐसा प्रतिपक्ष जिसकी निष्ठा का हरेक सिरा जनकल्याण से जुड़ा होता है। इन्हीं अर्थों में वे पत्रकारिता के मिशनरी रूप को भी आगे बढ़ा रहे थे और भविष्य के लिए मार्गनिर्देश भी कर रहे थे। भूख और गरीबी की कृत्रिम वजहों की ऐतिहासिक पड़ताल को उनके रिपोर्ताज़ बड़ी बेबाकी से करते हैं और तब यह पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि इन त्रासदियों का जन्म कैसे एक सुनियोजित प्रक्रिया द्वारा हुआ है निःसंदेह इन्ही अर्थों और आयामों से रेणु की जनपक्षधरता निर्मित हुई थी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. धीरेंद्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश, प्रथम भाग, पृ. 560
2. कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, क्षण बोले कण मुस्काए, पृ. 177
3. वही
4. शिवदानसिंह चौहान, साहित्यानुशीलन, पृ. 52
5. धर्मयुग कहानी विशेषांक, 1963–64, पृ. 62
6. भारत यायावर (सं), रेणु रचना संचयन, पृ. 25
7. भारत यायावर (सं), रेणु रचनावली, भाग–4, पृ. 47
8. अशोक ओझा, रेणु आत्मकथ्य, पृ. 13
9. वही, पृ. 169
10. वही, पृ. 172
11. वही, पृ. 165
12. वही, पृ. 53
13. वही, पृ. 58
14. वही, पृ. 62
15. वही, पृ. 39
16. सुरेंद्र चौधरी, फणीश्वनाथ 'रेणु', पृ. 24
17. भारत यायावर (सं), रेणु रचना संचयन, संपादकीय से
18. भारत यायावर (सं), रेणु रचनावली, भाग–4, पृ. 180
19. वही, पृ. 121
20. वही, पृ. 22
21. वही, पृ. 35
22. वही, पृ. 36

23. भारत यायावर (सं), रेणु रचना संचयन, पृ. 20
24. सुरेंद्र चौधरी, फणीश्वरनाथ 'रेणु', पृ. 52
25. भारत यायावर (सं), रेणु रचनावली, भाग–4, पृ. 7
26. वही, पृ. 9
27. सुरेंद्र चौधरी, फणीश्वरनाथ 'रेणु', पृ. 59
28. भारत यायावर, रेणु रचनावली, भाग–4, पृ. 268
29. फणीश्वरनाथ 'रेणु' ऋणजल धनजल, पृ. 17

– महालेखाकार कार्यालय, वरिष्ठ अनुवाद अधिकारी, पटना, बिहार

❑❑❑

हिंदी उपन्यासों में ग्राम्य–चेतना : 'परती–परिकथा' के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. नीलिमा वर्मा

स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात् साहित्यकारों का ध्यान भारतीय संस्कृति के मूल परिक्षेत्र–गाँव की ओर गया। उपन्यास एक बार पुनः धरती से जुड़कर समस्याओं से टकराया, जिसे 'आचंलिक' उपन्यास की संज्ञा से अभिहित किया गया। प्रेमचंदोत्तर ग्राम्य पीरवेशजन्य जीवन एवं सामाजिक स्थितियों के सर्वाधिक प्रभावी लेखक, आंचलिक कथाकार फणीश्वर नाथ 'रेणु' ग्रामीण आत्मीयता की गंध से आपूरित जीवन को अभिव्यंजित करने हेतु प्रतिबद्ध थे। यही प्रतिबद्धता उन्हें उनके समकालीन लेखकों से– नई कहानी के पुरोधाओं से विशिष्ट बनाती है। अपने अंचल के इतिहास को साथ लेकर चलने वाले, जीवन से किसी–न–किसी रूप में जुड़े ये चरित्र अंचल के जीते–जागते 'जन' हुआ करते हैं। रेणु का लेखन प्रेमचंद की सामाजिक यथार्थवादी परंपरा का संवाहक है। प्रेमचंद के पश्चात् अमर कथा–शिल्पी रेणु गाँव को केंद्र में रखकर साहित्य–साधना कर साहित्येतिहास में महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी बने। ग्राम्य–चेतना से पूरित आंचलिक उपन्यास का उद्भव स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास–जगत की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि रही है।

रेणु का कृतित्व अपनी समग्रता में जिस उपन्यास में खिलता है, वह 'परती–परिकथा' ही है। यह उत्कृष्ट नव प्रवर्तक आंचलिक उपन्यास परिवेश और ढाँचागत स्थितियों को विच्छिन्न कर नई प्रगतिशील स्थिति के साथ संबंध जोड़ने में भी सफल रहा है। 'परती–परिकथा' अपने यथार्थवादी स्वरूप एवं समाज की अनेक परतों को सूक्ष्मता से चित्रित करते हुए कलात्मक शैली एवं शिल्प के स्तर पर बहुविध प्रयोगधर्मा एवं सर्जनशीलता का अनूठा दृष्टांत प्रस्तुत करती है। रेणु ने परती धरती का केंद्र, अंचल का प्राण, 'परती–परिकथा' का प्रमुख रंगमंच, पुरातन ग्राम 'पुरानपुर'–एक छोटे–से अंचल को अपनी लेखनी से राष्ट्रीय पटल पर विशिष्ट बनाते हुए, समसामयिक ग्रामीण जीवन का चित्र अंकित करते हुए एक असाधारण गरिमा प्रदान की है।

महात्मा गांधी की धारणा थी, "भारत की आत्मा गाँवों में बसती है... गाँव हमारी सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन की पृष्ठभूमि है।" भारत की लगभग 70 प्रतिशत आबादी की आजीविका एवं भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि और सर्वाधिक वृहत् वर्ग किसान की उन्नति से ही भारत की उन्नति संभव है। धरती का धनी कथाकार रेणु की 'परती–परिकथा' में परती भूमि की धुरी पर समस्याएँ घूमती रहती हैं। सभी समस्याओं की जड़ जमीन होने के कारण परती धरती को ही केंद्र में रखा जाना उपन्यासकार के कुशल अंकन का परिचायक है।

हिंदी उपन्यासों में ग्राम्य–चेतना

हिंदी उपन्यासों में ग्रामीण जन–जीवन का चित्रण उत्तर आधुनिकता का लबादा ओढ़े, नगरीय तौर तरीके अपनाने को आज का आम आदमी

आकुल है। ग्राम्य–जीवन में भी शहरीपन समाहित हो चुका है। ठेठ देहाती जीवन मूल्यों पर चोट करती अपसंस्कृति का दर्शन खेत–खलिहानों एवं पगडंडियों तक में हो जाता है।

हिंदी उपन्यास का आरंभ श्रीनिवासदास के 'परीक्षा गुरु' (1882 ई.) से माना जाता है। हिंदी के आरंभिक उपन्यासों में तिलिस्मी, अय्यारी व जासूसी कथानक की प्रधानता थी। हिंदी में सामाजिक उपन्यासों का प्रेमचंद से सूत्रपात हुआ। उनके कथा–साहित्य में ग्राम्य–जीवन के विभिन्न पक्षों का चित्रण हुआ है। उनके उपन्यास 'सेवासदन', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'गबन', 'निर्मला', 'गोदान' आदि प्रसिद्ध उपन्यास हैं, जिनमें ग्रामीण वातावरण का विशद चित्रण है। 'प्रेमाश्रम', 'कर्मभूमि' और 'गोदान' को ग्राम्य–जीवन पर आधारित उपन्यासों की वृहत्त्रयी कहा जा सकता है। प्रेमचंद से ग्राम्य जीवन का कोई भी पक्ष अछूता नही रहा है। उनके उपन्यास आधुनिक सामाजिक सुधारवादी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हुए ग्रामीण जीवन के दर्पण हैं। गोर्की, टॉल्सटाय, डिकेन्स आदि विश्व प्रसिद्ध महान उपन्यासकारों की श्रेणी में प्रेमचंद का महत्वपूर्ण स्थान है। विशुद्ध ग्रामीण उपन्यास 'गोदान' में होरी, धनिया, गोबर आदि लोकप्रिय चरित्र आज भी जनमानस में अमिट हैं। प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कृति 'गोदान' में ग्राम्य–जीवन का सजीव चित्रण होने के कारण उसे ग्रामीण–जीवन का महाकाव्य कहा जाता है। 'प्रेमाश्रम' उपन्यास 'भारत माता ग्राम वासिनी' काव्योक्ति को रूपायित करता है। जमींदारों द्वारा कृषकों के प्रति किया गया पाशविक व्यवहार एवं क्रूरता को उपन्यास में दर्शाते हुए ग्रामीण समस्याओं के चित्रण के साथ–साथ उनके समाधान भी प्रेमचंद ने प्रस्तुत किए हैं।

बहुआयामी रचनाकार जयशंकर प्रसाद के 'तितली' उपन्यास में ग्रामीण और कृषक–जीवन का वर्णन किया गया है। विविधता से पूर्ण रचनाकार यशपाल के 'मनुष्य के रूप' उपन्यास में विधवा का अपने परिजनों के द्वारा दी गई प्रताड़ना का चित्रण है। 'निराला' के 'बिल्लेसुर बकरिहा' रचना में ग्रामीण जीवन की संकीर्णता, छल–प्रपंच आदि की यथार्थ कथा कही गई है। 'निरुपमा' में भी ग्रामीण परिवेश के आर्थिक अभाव एवं वैचारिक संकीर्णता तथा जीर्ण शीर्ण परंपरागत संस्कारों पर निराला ने कठोर प्रहार किया है। 'अलका' उपन्यास भी ग्रामीण जनों के शोषण और व्यथा की कहानी है। गाँव के लोगों के प्रति किसी की सहानुभूति नहीं है। वृंदावनलाल वर्मा के ग्राम–परिवेश की प्रधानता वाले उपन्यास 'टूटे काँटे' में ग्रामीण अंचल के यथार्थ का प्रमुखता से चित्रण हुआ है।

रेणु के 'मैला आँचल' में बिहार के ग्रामीणों की दुर्दशा एवं ग्रामीण राजनीति का चित्रण है 'परती–परिकथा' में भी स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात् की ग्रामीण गतिविधियों का चित्रण है। ग्रामीण जनों में व्याप्त अंधविश्वासों एवं रुढ़ियों को तोड़ने का भी प्रयास अनुस्युत है। गाँव के कुत्सित पक्ष को भी रेखांकित किया गया है। रेणु के 'दीर्घतपा' उपन्यास में समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करती हुई गाँव की एक लड़की की कहानी है।

डॉ. रांगेय राघव के आंचलिक उपन्यास 'आखिरी आवाज' में गाँवों में प्रचलित बुराइयों का पर्दाफाश हुआ है। जातिवाद, संपन्न–वर्ग द्वारा विपन्न वर्ग पर किया गया अमानवीय व्यवहार चरम पर है। गाँवों की पंचायतें भी भ्रष्ट हैं, जिनमें अन्याय का ही बोलबाला है। यह कृति गाँव की दीर्घ गाथा है, जो प्रेमचंद के 'गोदान'– के समकक्ष प्रतीत होता है। शिवपूजन सहाय की 'देहात दुनिया' भोजपुर अंचल के ग्राम्य जन–जीवन के अनेक प्रसंगों का संकलन है, जो तत्कालीन गाँव को यथार्थ रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है।

रामदरश मिश्र के आंचलिक उपन्यास 'अपने लोग' स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात् गाँवों में होने वाले परिवर्तनों एवं स्वातंत्र्योत्तर नवीनता की आशा को निराशा में परिवर्तित होता हुआ दर्शाता है। मिश्र जी की यथार्थपरक एवं सशक्त औपन्यासिक कृति 'दूसरा घर' में गाँवों की मिट्टी की सोंधी गंध है, जो गाँव से दूर जाने वाले के हृदय में बसी रहती है। 'पानी के प्राचीर' में ग्रामीण लोक–गीतों व प्रकृति के मनभावन चित्र के साथ–साथ ग्रामांचल की दयनीय स्थिति, बाढ़ की विभीषिका, पारंपरिक

झगड़े तथा युवा पीढ़ी में व्याप्त दुराचार की प्रवृत्ति का भी चित्रण है। 'जल टूटता हुआ' में उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल के गाँव की व्यथा–कथा को, लोक में व्याप्त अंधविश्वासों के विविध आयामों को प्रस्तुत किया गया है।

डॉ. शिवप्रसाद सिंह के गाँव की गंध से रचे–बसे उपन्यास 'अलग–अलग वैतरणी' में स्वातंत्र्योत्तर अंचल विशेष की कथा है। गाँवों के विकास के नाम पर दी जाने वाली राशि से कोई विकास नहीं हो पाता। ग्रामीण जीवन की नारकीय स्थिति, नारी–उत्पीड़न, जमींदारों का अत्याचार–शोषण, भ्रष्टाचार, अनैतिकता, अन्याय, बेईमानी, गरीबी और अत्याचार की अलग–अलग वैतरणी सभी गाँवों में प्रवाहित है। 'औरत' उपन्यास में नारी के शोषण एवं व्यथा–कथा के साथ–साथ उसके बुद्धि–विवेक और साहस तथा ग्रामीण समस्याओं की व्यथा–कथा चित्रित है।

पद्मभूषण कमलेश्वर के 'सुबह, दोपहर, शाम' उपन्यास में ग्रामीण लोगों के स्वतंत्रता में योगदान एवं संघर्ष की कहानी निरूपित है। साथ ही, ग्रामीण जीवन को सफलता पूर्वक रूपायित किया गया है। हिमांशु जोशी के आंचलिक उपन्यास 'कगार की आग' पहाड़ी जीवन के सुख–दुख, भाव–अभाव तथा प्रकृति के साथ निरंतर संघर्ष की कहानी है। 'तुम्हारे लिए' उपन्यास ग्रामीण छात्र की शिक्षा से संबंधित आर्थिक अभावों से गुजरती, प्रेम के साथ जीवन–दर्शन को स्पर्श करती हुई कहानी हैं।

मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नमम' उपन्यास में ग्रामीण जीवन की समस्याओं को, पुरुष के हाथों नारी के उत्पीड़न की व्यथा–कथा को उठाया गया है। रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' की 'चढ़ती धूप' उपन्यास की प्रकृति राजनीतिक है, किंतु परिवेश ग्रामीण तथा प्राचीन परंपराओं और संस्कारों से भी युक्त है। गाँवों के कुशल चितेरे विवेकी राय सदैव गाँवों से जुड़े रहे। इनकी औपन्यासिक कृतियों– 'सोना माटी' एवं 'मंगल भवन' को विशेष लोकप्रियता प्राप्त हुई। 'सोना–माटी' में गाँवों में व्याप्त मूल्यहीनता एवं अर्थ की संस्कृति की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति हुई है। 'मंगल भवन' गाँव और शहर–दोनों में अपेक्षित उदात्त मूल्यों को समर्पित है। डॉ. राही मासूम रजा के 'आधा गाँव' उपन्यास में विभाजन के पश्चात् मुस्लिमों की पीड़ा वर्णित है। मुस्लिम संप्रदाय के लोग जिस धरती को अपना समझते थे, वही अब उनके लिए पराई हो गई। इस पीड़ा को लेखक ने सफलतापूर्वक उकेरा है।

ग्रामीण जन–जीवन के सशक्त कथाकार रामधारी सिंह 'दिनकर' के सभी उपन्यास– 'क्या घर, क्या परदेश', 'काली सुबह का सूरज', 'पंचमी तत्पुरुष', 'आग', 'पानी', 'आकाश', 'टूटते दायरे', 'अकाल संध्या' एवं 'दाखिल खारिज' ग्रामीण जीवन के दस्तावेज हैं, गाँव की सामाजिक एवं आर्थिक विसंगतियों को उभारने में वे सफल हैं।

नागार्जुन के सभी उपन्यासों की कथाभूमि मिथिला के गाँव हैं। 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'नई पौध', 'बाबा बटेसरनाथ', 'दुःख मोचन' एवं 'वरुण के बेटे' में नागार्जुन ने ग्रामीण–जीवन की सामाजिक विषमता, किसानों की यातनापूर्ण स्थिति, गरीबी एवं वर्ण–व्यवस्था को उजागर किया है।

'परती–परिकथा' में ग्राम्य–चेतना'

समाज गाँवों में बिखरा हुआ है और प्रत्येक गाँव की अपनी विशेष पहचान है। व्यक्ति की नहीं, व्यक्तियों के सामूहिक व्यक्तित्व के प्रतीक अंचल पूर्णिया के 'परानपुर' गाँव को नायकत्व मिला है, जिसके कारण यह उपन्यास एक कथा–सागर–सा बन गया है। 'परती परिकथा' में रेणु ने ग्रामीण समाज का जो चित्रण किया है, आजादी के इतने वर्षों के पश्चात् भी वह सर्वथा प्रासंगिक है।

कहा जाता है कि केवल धरती ही बंजर नहीं होती, कभी–कभी व्यक्ति का मन भी बंजर हो जाता है उसमें उल्लास, उमंग के कोई फूल नहीं खिलते। कोसी की विनाशलीला से संतापित यह क्षेत्र सदा से ही उपेक्षित रहा है। तभी तो कोसी को 'बिहार का शोक' कहा जाता है। जमींदारी उन्मूलन के पश्चात्वर्ती समाज, कोसी के अंचलों में व्याप्त गढ़ी–अनगढ़ी, कही–अनकही कहानियाँ, ग्राम्य–गीत, लोक–संगीत, लोक–गाथाओं की बूझ–अबूझ पहेलियाँ, तकनीकी का सद्य प्रवेश–ऐसा

प्रतीत होता है मानो सबकुछ आँखों के समक्ष घटित हो रहा है।

निर्मल वर्मा ने 'रेणु समग्र' में स्पष्ट किया है– 'परती–परिकथा' मात्र परती जमीन की कथा न होकर ग्रामीणों के परती मन की कथा भी है। जमींदारी उन्मूलन तो हुआ परंतु, जमीन की समस्या ज्यों–की–त्यों बनी हुई है। यह अजीब विरोधाभास था कि जिस परती को रेणु ने अपनी 'परती–परिकथा' हेतु चयनित किया था, वह अपनी अनुभव संपदा में सबसे अधिक उर्वरा थी... अब तक किसी कथाकार ने अपनी कलम से उसे नहीं कुरेदा था।"

उपन्यास का प्रमुख पात्र जितेंद्र और उसके विरोधियों का संघर्ष भी परती जमीन पर ही आधारित है। उपन्यास में लेखक का ध्यान इस बात पर केंद्रित है कि "भूमि ग्रामीणों का जीवन है। नैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक–सभी प्रकार की समस्याएँ इसी के इर्द–गिर्द बनती–बिगड़ती रहती हैं।" ग्रामीण जीवन में, कोसी बाँध–प्रसंग में रेणु की 'पुरातन गाँव' मे वैज्ञानिक पद्धति की परिकल्पना लक्षित होती है। कोसी की विनाशकारी लीला से ग्रामीणों को मुक्त कराने में भी जितेंद्र को उनका हृदय–परिवर्तन कराना पड़ता है। परती भूमि पर गुलाब की खेती एक श्रेष्ठ व सरस परिकल्पना है। परंतु, इस परिकल्पना में ग्रामीणों की दमित लालसा की पूर्ति का प्रयत्न दिखाना ही लेखक का उद्देश्य है। जितेंद्र, लुत्तो, वीरभद्र आदि पात्र भले ही अलग–अलग दीख पड़ते हों, परंतु लेखक का संकेत एक ही समस्या की ओर है, और वह है– भूमि की समस्या।

'परती–परिकथा' का एक लोक राग और लोक रंग भी है, जो समाज, संस्कृति और राजनीति की टकराहटों के मध्य अनोखे ढंग से उभरता है। स्वातंत्र्योत्तरकालीन नई हवा में साँस लेते इस गाँव में कांग्रेस भी है, जन संघ भी, भूदानी भी और कम्यूनिस्ट भी हैं। गाँव में शहर से पढ़कर आए लड़के हैं, जो बदलती हवा में कुछ खुद बदले हुए हैं और कुछ गाँव को बदलना चाहते हैं।

उपन्यास की पृष्ठभूमि कोसी अंचल का पुरानपुर गाँव है, जहाँ विकास के यज्ञ के नाम पर जमीन ली जानी है, पूर्णिया से सैकड़ों मील दूर दिल्ली में बैठे योजनाकार अपनी मेज पर विकास का जो नक्शा खींच रहे हैं, वह इस इलाके में कैसे डर और कैसी दरारें पैदा कर रहा है, इससे वे बेखबर हैं। कोसी के शाप की अनगिनत कहानियों से जुझते इस गाँव में पुराने जमींदार का बेटा है, जिसे गाँव वाले पागल समझते हैं, वह इस परती पर खेती के प्रयोग कर रहा है।

स्वतंत्रता के पश्चात्वर्ती जटिल भारतीय जीवन के यथार्थ का , ग्रामीण राजनीति, संस्कृति और कला का बहुआयामी चित्र रेणु के उपन्यासों में परिलक्षित होता है। उनके उपन्यासों की कथा की पृष्ठभूमि बिहार के पूर्णिया जिले का ग्रामीण क्षेत्र है। गाँव की छोटी–छोटी घटनाओं, आचार–विचार, रीति–रिवाज, उथल–पुथल तथा शोषण आदि के इतने सही, सटीक और सहज चित्र प्राप्त होते हैं कि संपूर्ण ग्रामांचल मुखर हो उठता है। राजनीतिक अस्थिरता, सामाजिक मूल्यों, मान्यताओं में उलट फेर, संबंधों और स्वार्थों की टकराहट आदि के परिणामस्वरूप जीवन का जो नया रूप निर्मित हुआ था, उसे रेणु ने गंभीरता से अनुभूत किया है। आर्थिक तंगी के बीच ग्रामीण पिस रहे हैं। वहाँ टूटन की प्रक्रिया जोरों पर है सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों से भारतीय गाँव भी अप्रभावित नहीं रह पाए हैं। गाँवों के समकालीन जीवन में प्रकट हुए परिवर्तनों का रेणु के उपन्यासों में सूक्ष्मता के साथ गहन परीक्षण किया गया है। ग्रामीण परिवेश में परिवर्तन, अवसरवादी नेताओं का उतार–चढ़ाव तथा उन्हें बेनकाब करने में युवा–पीढ़ी का संघर्ष आदि जिस तरह से उनके उपन्यासों में प्रस्तुत है, उनसे हिंदी कथा–साहित्य में रेणु की एक विशिष्ट पहचान बनती है। उनके उपन्यासों में चित्रित गाँवों की समस्याएँ आज प्रत्येक भारतीय गाँव की समस्याएँ हैं।

'परती–परिकथा' का ग्रामीण निम्नवर्ग निर्धनता और बेकारी से जूझ रहा है। परानपुर के निवासी अपनी दरिद्रता को दूर करते हेतु संघर्षरत है। लेखक ने बड़े ही मार्मिक ढंग से इसका चित्र प्रस्तुत किया है।

बच्चे मर गए हाय रे। बीवी मर गई हाय रे। उजड़ी दुनिया हाय रे। मजदूर हो गए, घर से दूर हो गए।

वर्ष महीना एक कर, खून पसीना एक कर। बिखरी ताकत जोड़कर, बर्तन पत्थर तोड़कर। इस डायन को साधेंगे। उजड़े को बसाना हैं।"

इस प्रकार, ग्रामीण मजदूरों की कार्यशीलता का यह दृश्य उनके श्रम का लेखा–जोखा प्रस्तुत कर उनके अभावों, दुख–दर्द व विभिन्न विसंगतियों को उजागर कर उनकी उस जीवंत शक्ति की कथा कहता है, जो ज्ञात होकर भी अज्ञात है।

परानपुर गाँव में निवास करने वाली सभी जातियों की समस्याएँ 'सभी वर्गों की समस्याएँ चाहे वह सामाजिक हो या आर्थिक, नैतिक हो या भौगोलिक सभी को उपन्यास में कुशलतापूर्वक उद्‌घाटित किया गया हैं। अंचल विशेष में प्रचलित तमाम लोक–कथाओं की झलक इस उपन्यास में विद्‌यमान है। उपन्यास में आंचलिकता के कारण वहाँ की मिट्‌टी की सुगंध परिवेश और क्षेत्र का सजीव चित्रण हुआ है।

कथानक के स्तर पर रेणु परानपुर को तत्कालीन भारतीय समाज के एक मिनियेचर के रूप में कल्पित करते हुए रूपक गढ़ते हैं। 'लैंड सर्वे सेटलमेंट' और 'कोसी प्रोजेक्ट' जैसी अपेक्षाकृत वृहत् परियोजनाओं, राजनीतिक दलों, चुनावों और अंतर्जातीय प्रेम विवाह जैसी घटनाओं, रूपायित होते आधुनिक संवेदनों और इस गाँव के पारंपरिक संस्कारों तथा जीवन के विविध प्रसंगों को रूपायित करते हैं।

भारतीय समाज के विषय में के.एल. शर्मा का कथन है– "भारत के सामाजिक जीवन की तीन निर्णायक संस्थाएँ गाँव, जाति और संयुक्त परिवार हैं। इन्होंने न केवल विदेशी आक्रमण और आंतरिक आघातों को झेला है, बल्कि, सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तनों की ताकतों को आत्मसात् किया है और सम्मुख आई हुई आवश्यकताओं और चेतावनियों के अनुसार अपने आपको ढाल भी लिया है।"

'परती–परिकथा' में लेखक एक सजीव, हिलता–डुलता, साँस–लेता हुआ गाँव, उसके सारे किरदारों के साथ खड़ा कर देते हैं– भाँति–भाँति की आवाजों, तरह–तरह के गीतों और बिल्कुल जादुई लोक कथाओं से भरे इस उपन्यास को जितनी बार पढ़े, आकर्षण कम नहीं होता। रेणु ने जिस तीली से किसान के उदास, धूल–धुसरित क्षितिज में छिपी नाटकीयता को आलोकित किया था, उसी तीली से हिंदी के परंपरागत यथार्थवादी उपन्यास के ढाँचे को भी एकाएक ढहा दिया था। निर्मल वर्मा ने इसे 'रेणु की अविस्मरणीय देन' और 'उपलब्धि' माना है।

तत्कालीन सामाजिक हलचलों, विकास की विडंबनाओं के बावजूद सबके लिए समानता और सामाजिक सौहार्द का स्वप्न–रेणु का आलोच्य उपन्यास अपनी समस्याओं के राजनीतिक नहीं, सांस्कृतिक हल खोजता है। टूटे हुए गाँव को जोड़ने हेतु, पुनर्निर्माण हेतु लेखक सामा–चकेवा की पुरानी लोक–कथा और उससे जुड़े लोक–नृत्य का सहारा लेकर इसी में वह हिंदी की नई कहानी का नाट्‌य मंचन भी पिरो देता है।

विशाल परती जमीन–बंध्या धरती की चौहद्‌दी पर परानपुर गाँव–पीड़ित भारतीय ग्रामीणों की भूमि–लालसा, नैतिक–अनैतिक सभी रूप धारण करती है। जमींदारी–उन्मूलन के पश्चात् भी भूमिहीनों की समस्या ज्यों–की–त्यों बनी रहती है। भूमि की समस्याएँ ग्रामीणों के हृदय में उथल–पुथल मचाती रहती हैं, उनका जीवन भले ही सामाजिक घटनाओं के मध्य दोलायित होता रहता है, परंतु भारतीय गाँव और ग्रामीण निष्प्राण होकर अपनी एक लीक पर स्थिर दिखाई पड़ते हैं।

"नाम के लिए तो जमींदारी समाप्त हो गई, किंतु सभी पुराने जमींदार और राजा बड़े–बड़े कृषक बन बैठे, जिनके पास दस–दस, पंद्रह–पंद्रह सौ बीघे जमीने थीं। ऐसी स्थिति में पुराने सामंतों और भूमिहीन कृषकों में संघर्ष होना स्वाभाविक हैं।"

आलोच्य उपन्यास में उपन्यासकार का ध्यान इस बात पर केंद्रित है कि 'भूमि ग्रामीणों का जीवन है, नैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक सभी प्रकार की समस्याएँ इसी के द्‌वारा बनती–बिगड़ती रहती हैं।... गाँवों में नैतिक मूल्यों में कमी आ गई

है। गाँव टूट रहे हैं, भूमि पारस्परिक द्वेष के संघर्ष का कारण बन गई है। प्रत्येक व्यक्ति ईर्ष्या एवं स्पर्धा की भावना से प्रेरित है। एक–दूसरे का हक लूटने को तत्पर है।" ...परानपुर ही नहीं, सभी गाँव के परिवार टूट रहे हैं। व्यक्ति टूट रहा है– रोज–रोज काँच के बर्तनों की तरह। नया, निर्माण भी हो रहा है। नया गाँव, नए परिवार और नए लोग।" इसी टकराव की सबसे बड़ी आहट जो उपन्यास के आरंभ से लेकर लगभग अंत तक बनी रहती है, गाँव में जितेंद्रनाथ मिश्र के आगमन और उसकी परिस्थिति से उत्पन्न होती है। जितेंद्र आधुनिक है– अपनी शिक्षा–दीक्षा, सोच–विचार, भाव–तंत्र, भाषा और रहन–सहन आदि तमाम चीजों में अपनी मातृभूमि के साथ उसका प्रगाढ़ संबंध है।

रेणु ने ग्रामीण जीवन में वैज्ञानिक पद्धति के परिवर्तन की कल्पना की है। वे एक ओर नवीन वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा गाँव परानपुर का स्वरूप बदलना चाहते हैं तो दूसरी ओर मानवीय संवेदनाओं के प्रति व्यापक दृष्टिकोण भी रखता है। कोसी बाँध के प्रसंग में पुरातन गाँव में वैज्ञानिक पद्धति की कल्पना दिखाई पड़ती है। कोसी की विनाशकारी लीला से ग्रामीणों को मुक्त कराने में भी जितेंद्र को उनका हृदय–परिर्वतन करना पड़ता है। जिले में किसानों और भूमिहीनों में हलचल मची हुई है। सिर्फ भूमिहीन ही नहीं, डेढ़ सौ बीघे के मालिकों ने दूसरे बड़े किसानों की जमीन पर दावे किए हैं। हजारों बीघे वाला भी एक इंच जमीन छोड़ने को राजी नहीं। भाई–भाई हक के लिए संघर्ष करने को तत्पर हैं। छह महीने में ही गाँव का बच्चा–बच्चा पक्की गवाही देना सीख गया है। गाँव बदल गया है, बाप–बेटे में, भाई–भाई में अपने हक को लेकर ऐसी लड़ाई कभी नहीं हुई। पिछले डेढ़ साल से गाँव में न कोई पर्व ही धूमधाम से मनाया गया है और न किसी त्योहार में बाजे–बजे हैं... सोहर का गीत कहीं–कहीं गाया गया है। लड़के–लड़कियों के ब्याह रुके हुए हैं... गीत के नाम पर किसी के पास एक शब्द भी नहीं रह गया है, मानो मधुमक्खी के सूखे मधु–चक्र सी बन गई है दुनिया" इन पंक्तियों में लेखक ने भारतीय संवेदना को, मानवीय संवेदना को उजागर कर दिया है। जितेंद्र भूमिपति के रूप में उपस्थित होकर परंपरित सामंतवादी युग की कथा के रूप में प्रस्तुत है।

"संपूर्ण ग्रामीण समाज में जातिवाद कोढ़ की तरह व्याप्त है। मानव–हृदय को जातिवाद के दीमकों ने छलनी कर दिया है। छोटी जाति के लोगों का कातिल होना भी बड़ी जाति के लोगों को अखरता है।" इस बात का लाभ खवास टोली का लुत्तो पूर्णतः उठाता है। लुत्तो अपने पिता को दागने वाले मिश्र परिवार से बदला लेने हेतु छोटी जातियों को उकसाता है तथा जातिवाद के आधार पर प्रजातंत्र को जाति–तंत्र में बदल देना चाहता है। इस हेतु वह समाज के अंधविश्वासों से लाभ उठाता है। गहलोटा टोले के निरसू भगता पर चक्की परती के परमादेव की सवारी लुत्तो की कूटनीति का ही एक अंग है। अतएव, निरसू सवार परमादेव कमेसरा से कहता है, "सोलकन्ह होकर, तुम बाबू बबुआन के पच्छ में हो। तुम्हारा नाश होगा।"

इसी प्रकार, गहबर से जाने के पूर्व वह कहता है, परती तोड़कर मेरी आसनी को जिसने बर्बाद किया है, उससे बदला लो। ठाकुर वाड़ी में जो रामलला है, रामलला की पूजा करने वाले पुजारी की बात सुनो, कल्याण होगा। रामलला के पुजारी पंडित सरबजीत चौबे चार हजार सोलकन्ह का नेता है। लुत्तो ने उसे ग्राम पंचायत का सरपंच बनाने का प्रलोभन दिया है। सरपंच पद के चक्कर में पड़कर वह परती को तोड़ने वाले जितेंद्र पर अस्सी हजार गौ–हत्याओं का पाप लगाने के लिए रामलला के भक्तों से नारा लगवाता है।

मर्यादा आधारित ग्रामीण संस्कृति का अर्थ केवल मेहनत की दुनिया नहीं है। ग्रामीण जन सदैव शोषित ही नहीं हैं, वरन् वह अपने सुख–दुख, संपूर्ण रीति–रिवाज, जाति–बिरादरी, पारिवारिक संबंध, सामाजिक समझ, इच्छा–शक्ति, रूढ़ि–परंपरा, मनुष्यता, जिजीविषा, बुद्धि, विवेक, धार्मिकता, आध्यात्मिकता, प्रगतिशील मूल्यों के साथ हमारे समक्ष आता है। ऋणग्रस्त ग्रामीण जन–व्यवस्था

के दमन–चक्र में पिसता हुआ तो कभी उसे विद्रोही तेवर के साथ उद्घाटित किया गया तो कभी धर्म भीरू के रूप में मान–मर्यादा तथा सम्मान की रक्षा, ईमानदारी एवं निष्ठा को बचाए रखना ग्रामीण संस्कृति है। उपन्यास में लोक–जीवन के सामाजिक संघर्ष और खेतिहर मजदूरों की समस्या को रेखांकित किया गया है।

जब नेहरू सरकार को खाद्यान्न समस्या को हल करने हेतु हरित–क्रांति का विकल्प खोजना पड़ा, भारत में जब प्रथम पंचवर्षीय योजना बनी, कृषि को अधिक महत्व दिया गया। परती पड़ी हुई जमीन को जोतकर फसल उगाना, रूढ़िवादी किसानों को वैज्ञानिक विधि से कृषि–कार्य हेतु प्रेरित करना, खाद, बीज, कृषि यंत्रों की सुविधा प्रदान करना, नदियों पर बाँध बनाना, कृषि–कार्य संबंधों का प्रदर्शन तथा वृत्त–चित्र दिखाना आदि खेती किसानी की कल्याणकारी योजनाओं का विस्तारपूर्वक चित्रण आलोच्य उपन्यास में हुआ है। 'परती–परिकथा' मूलतः जमींदारी उन्मूलन और भूमि के पुनर्विभाजन की पृष्ठभूमि में परती (परानपुर गाँव की) के पुनर्निर्माण की कथा है।

सिमराहा की सपाट धरती पर हजारों वृक्ष लगाए गए हैं। रेणु ने पूर्णिया की लाखों एकड़ बंध्या परती जमीन को हरे–भरे बागों और लहराते हुए खेतों में परिणत होने का स्वप्न देखा था। उन्होंने विश्वास किया था कि नेहरू सरकार द्वारा चलाई गई कोशी नदी घाटी योजना पूर्णिया अंचल को बाढ़ के प्रकोप से सदा के लिए मुक्त कर देगी और ऊसर बंजर पड़ी लाखों एकड़ जमीन अन्न और फलों की खेती से लहलहा उठेगी। लेखक इसी विजन को प्रस्तुत करने हेतु परानपुर स्टेट के जमींदार पुत्र जितेंद्रनाथ मिश्र को शहर से गाँव में बुलाता है, जहाँ उसकी प्रेमिका ताजमनी ही नहीं, सूखी बंजर धरती भी अपने उद्धार हेतु प्रतीक्षारत है। इस धरती के नालायक बेटे परानपुर के अपढ़ और अधपढ़ किसान कुसंस्कारग्रस्त पिछड़ी मानसिकता के ग्रामीण मिश्र परिवार के प्रति द्वेष और प्रतिहिंसा से ग्रस्त युवा नेता जितेंद्र का गाँव लौटना पसंद नहीं करते और हर कदम पर उसका विरोध करते हैं। इस संघर्ष में सारा गाँव एक जुट होकर जितेंद्र के खिलाफ खड़ा होता है, किंतु अंततः विजय जितेंद्र की ही होती है और उपन्यासकार की संपूर्ण सहानुभूति जमींदार पुत्र जितेंद्र के साथ है। कथाकार की दृष्टि में गाँव के निवासी अंधविश्वासों और कुसंस्कारों से ग्रस्त हैं। जमीन के आपसी झगड़ों में ही दिन–रात लगे रहते हैं और जमींदार परिवार के प्रति अनावश्यक प्रतिहिंसा भाव से ग्रस्त है। जमींदार पुत्र जितेंद्र का हृदय–परिवर्तन हो चुका है। वह गाँव का कायाकल्प कर देने का संकल्प लेकर अपने गाँव वापस लौटा है। वह अपने अधिकार की हजारों बीघे जमीन को ट्रेक्टर से जोत डालता है और गुलाब की खेती करता है, नए ढंग से पेड़ लगाता है।

अस्तु, ग्रामीण जीवन सदा से ही हमारे साहित्य से जुड़ा रहा है। हिंदी साहित्य भी ग्रामीण परिवेश से अछूता नहीं रहा। भारतीय गाँव समस्याओं से ग्रस्त है। ग्रामीण चेतना से युक्त उपन्यासों में राजनीतिक जागरूकता, गुलामी का बंधन, ग्राम–सुधार, रूढ़िवादिता, जातिवाद, सांस्कृतिक गतिविधियाँ आदि व्यक्त हुई हैं। 'जहाँ न जाए रवि, वहाँ जाए कवि' इस उक्ति को चरितार्थ करते हुए दूर–दराज के गाँवों में जहाँ यातायात के साधन तथा विकास की रोशनी भी नहीं पहुँची थी, वहाँ पर साहित्यकारों की दृष्टि पहुँचकर हमें गाँवों और वहाँ की विषमताओं, विसंगतियों से परिचित कराती है। गाँवों में शोषण का अंत तभी हो सकेगा, जब ग्रामीण जन एक जुट होकर गाँव के विकास हेतु कटिबद्ध होंगे।

रेणु ने अपने अंतस् की आवाज को अनसुनी न करते हुए आजादी के पश्चात् दम तोड़ते हुए गाँवों की कराह सुनी और अपने लिए एक नई राह का चयन कर लिया। रेणु की लेखनी में अगर प्रेमचंद की रचनाओं में दीखने वाला मोहभंग था तो विरासत को थामे रखने की उदासी में भी लोक धुनों और लोक गीतों को गुनगुनाने की राह खोजने वाली जीवटता भी थी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. परती परिकथा– फणीश्वरनाथ 'रेणु'

2. Satyagrahscroll-in
3. Apnimaati-com
4. रेणु समग्र– निर्मल वर्मा
5. प्रेमचंद और उनका युग– डॉ. रामविलास शर्मा
6. गोदान– प्रेमचंद
7. कर्मभूमि– प्रेमचंद
8. प्रेमाश्रम– प्रेमचंद
9. Jankpal.com– मदन सोनी
10. amachar.blogspot.com
11. भारतीय समाज– के. एल. शर्मा

– 11, कीर्तिनगर, इंदौर रोड, (लाल गेट के निकट) उज्जैन, मध्य प्रदेश–456010

❑❑❑

प्रीति, रीति और नीति के कवि : बिहारी

डॉ. आलोक रंजन पांडेय

अपनी मात्र एक रचना के बल पर रीतिकाल में अपना अप्रतिम स्थान बनाने वाले बिहारीदास ने हिंदी कविता में कम शब्दों में कहने का वह अंदाज पैदा किया जिसके लिए उन्हें 'गागर में सागर' भरने की उक्ति से नवाजा गया और यही प्रचलन बाद में उर्दू शायरी में भी मिला।

बिहारी की एक मात्र रचना 'बिहारी सतसई' ही मानी जाती है। इस सतसई में कुल 713 दोहे हैं। इसी रचना के बल पर हिंदी साहित्य में उनका नाम सुनहरे अक्षरों में लिखा गया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में "जिस कवि की कल्पना की समाहारशक्ति के साथ भाषा की समास शक्ति जितनी अधिक होगी उतना ही वह मुक्तक की रचना में अधिक सफल होगा।" आचार्य शुक्ल की इन दोनों कसौटियों पर महाकवि बिहारी पूर्णतः खरे उतरते हैं। कला पारखी बिहारी ने 48 मात्राओं के छोटे से दोहा छंद में भाव और अर्थ की सीमा को इस प्रकार समेट कर भर दिया कि पढ़ते समय सदैव एक नया आनंद, अनूठा भावोल्लास और एक अपूर्व सुखद अनुभूति प्राप्त होती है।

शृंगारिक रचना होने के कारण सतसई में शृंगार के समस्त अवयवों पर प्रकाश डाला गया है। बिहारी ने शृंगार रस के दोनों भेद– संयोग और वियोग का सफलता से चित्रण किया है। संयोग का मूलाधार शारीरिक आकर्षण है जो अनेक प्रकार के रूपों, भंगिमाओं, चेष्टाओं, वाचिक और शारीरिक विकारों, मानसिक दशाओं आदि में प्रस्तुत होता है। बिहारी ने संयोग शृंगार के अंतर्गत आलंबन के रूप एवं सौंदर्य का वर्णन किया है। सामान्य सौंदर्य वर्णन के अंतर्गत प्रायः कवियों ने नारी के रूप की व्यंजना की है। बिहारी ने भी नायिका की रूप कांति का सजीव चित्रण किया है। नायिका का रूप इतना मधुर और सलोना है कि स्वयं उसकी सखी उस पर मोहित है–

रही लट्टू ह्वै, लाल, हौं लखि वह बाल अनूप।
कितौं मिठास दयौ दई इतै सलौने रूप।।

नायिका के सौंदर्य का वर्णन करती हुई उसकी सखी कहती है कि उसके सौंदर्य में इतनी चमक है कि उसकी बराबरी केसर और चंपा भी नहीं कर पाते। उसके शरीर की शोभा को देखकर तो सोने का रूप भी छिप जाता है। इसी तरह उसके अंग में आभूषणों के रत्न जगमगाते हैं; क्योंकि उसका शरीर दीपशिखा के समान है। अतः घर का दीपक बुझा देने पर भी उसकी शरीर–कांति से घर में उजाला रहता है–

अंग–अंग नग जगमगत, दीपसिखा–सी देह।
दिया बढ़ाएँ हूँ रहै, बड़ौ उज्यारौ गेह।।

सौंदर्य की एक महत्वपूर्ण विशेषता उसकी कोमलता एवं सुकुमारता में होती है। बिहारी की नायिका एकदम कोमलांगी है। इसके साथ ही उसमें अद्भुत कोटि का माधुर्य है। उसके शरीर की शोभा अथवा कांति इतनी अधिक है कि वह प्रतिक्षण परिवर्तित होती रहती है। उसकी ठीक–ठाक अभिव्यक्ति कर पाना आसान नहीं है। यही कारण है कि संसार के अनेक बड़े–बड़े चित्रकार भी

नायिका के सौंदर्य का चित्रांकन नहीं कर सके हैं–

लिखन बैठी जाकी सबिहि गहि गरब गरूर।
भए न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर।।

क्षण–क्षण परिवर्तित सौंदर्य की दृष्टि से नायिका की वयसंधि अवस्था का रूप और भी आकर्षक होता है। कभी नायिका के शरीर से शैशव की झलक मिलती है तो कभी यौवन की। दोनों मिलकर धूप छाँही कपड़े की कांति की तरह सुंदर लगते हैं–

छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोबनु अंग।
दीपति देह दुहुन मिलि, दीप्ति तफता–रंग।

कवि ने नायिका के अंगों का चित्रण भी मोहक रूप से किया है। नायिका का आंगिक सौंदर्य यौवन के उभार के कारण नायक के मन में रतिभाव जगाने में समर्थ हुआ है, अतः यौवन का समग्र प्रभाव दिखाने के लिए कवि ने अनेक अंगों का वर्णन किया है। बिहारी को नेत्रों का सौंदर्य वर्णन अत्यंत प्रिय है। इनके द्वारा वर्णित नेत्र सौंदर्य की मुख्य विशेषता है कि उनमें स्निग्धता, विशालता, नीलिमा, श्वेत आदि सभी गुण हैं–

चमचमात चंचल नयन, बिच घूँघट पट झीन।
मानहु सुरसरिता विमल, जल उछरत जुग मीन।

इसमें घूँघट–पट के भीतर मछलियों की तरह चमकते हुए नेत्रों से नायिका का एक विशेष प्रकार का बिंब उभरा है, जो पाठक को रस मग्न करता है। नेत्र वर्णन में कवि ने कहीं इसे कामदेव के बाणों से तीक्ष्ण बताया है तो कहीं पर इसे विलक्षण और अचूकशिकारी बताया है। ये ऐसे शिकारी हैं जो कभी भी अपने शिकार को पकड़ने में नहीं चूकती बल्कि शिकार को सहज ही अपने वश में कर लेती हैं–

डारी सारी नील की, ओट अचूक, चुकैं न।
मो मन–मृगु करबर गहै, अहे! अहेरी नैन।।

इसी तरह कवि ने नासिका सौंदर्य के अंतर्गत उसके छिद्र, उसके ऊपर लगे हुए नुकीले तिलक, मोतियों से गुथी हुई नथिया, लवंग, फूल, सींक आदि का वर्णन किया है। कवि ने इन तत्वों के परिप्रेक्ष्य में नायिका के रूप एवं गुणों की व्यंजना की है–

जटित नीलमनि जगमगति सींक सुहाई नाँक।
मनौ अली चंपक–कली बगा रसु लेतु निसाँक।।

इस दोहे में नायिका की नासिका और सींक की अपूर्व शोभा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि उसकी नाक चित्त को आकर्षित करने वाली है। नाक में नीलम जड़ी हुई सींक, जो उसने पहनी है, वह तो ऐसी लग रही है कि भौरा चंपे की कली पर बैठकर बिना किसी शंका के रस पी रहा है। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि भौंरा चंपे पर नहीं बैठता किंतु नासिका रूपी चंपे की कली इतनी मनोहर है कि भौंरा उसपर मुग्ध होकर निशंक भाव से रस–पान में मग्न है। इसमें नायिका की नासिका का विलक्षण वर्णन है शृंगार के अंतर्गत अनुकूल प्रेम, व्यापार के विभिन्न बाह्य और आंतरिक क्रियाकलाप का वर्णन करते हुए बिहारी ने सुरत श्रम के अनुभवों की योजना भी की है–

सकुचि सरकी पिय निकट तैं मुलकि कछुक तन तोरि।
कर आँचर की ओट करि जमुहानी मुँह मोरि।।

प्रेम–प्रसंग में नायक–नायिका के बीच परस्पर छेड़छाड़ भी होती है। इसी के अंतर्गत जब नायिका सखियों के साथ दही बेचने जा रही है तो नायक उसे रास्ते में रोककर प्रेम निवेदन करने लगता है। इस पर नायिका नायक से कहती है कि तुमने व्यर्थ में ही मुझे घेर रखा है। मार्ग छोड़ो और मुझे जाने दो। मुझे पता है कि तुम दूध, दही आदि नहीं चाहते बल्कि तुम मुझसे बतरस चाहते हो–

लाज गहौ बेकाज कत, घेरि रहे घर जाँहि।
गोरस चाहत फिरति हौ, गोरस चाहत नाँहि।।

बिहारी ने प्रेम वर्णन के अंतर्गत चातुर्यपूर्ण क्रियाओं का वर्णन अत्यंत तत्परता से किया है। नायक–नायिका आपस में प्रेमनिवेदन के वक्त मर्यादा का ख्याल रखते हैं। उन्हें पता है कि गुरुजनों के बीच प्रेम निवेदन वाणी द्वारा नहीं हो सकता है तो इसके लिए संकेतों का सहारा लेते हैं–

लखि गुरजन–बिच कमल सौं सीसु छुवायौ स्याम।

हरि–सनमुख करि आरसी हियैं लगाई बाम।।

उपर्युक्त दोहे में नायिका को गुरुजनों के बीच देखकर वाणी से प्रेम निवेदन न कर नायक ने कमल को अपने सिर से लगाया अर्थात् संकेत द्वारा अपना अनुराग प्रकट किया। नायिका ने भी संकेत के द्वारा ही उत्तर देते हुए नायक के सामने अपनी आरसी करके अपने हृदय से लगा लिया अर्थात् यह जताया कि मेरे दर्पण जैसे स्वच्छ हृदय में केवल तुम ही बसे हुए हो।

इसी तरह प्रेम–पथ को कैसे जीता जाए? प्रेम में आगे बढ़ने के क्या–क्या उपाय हैं? को बताते हुए बिहारी कहते हैं कि जिस प्रकार सधे हुए पुष्ट घोड़े और खेल में मिलकर चलने वाले घोड़े की अनंत उठानें करके तथा गेंद को निर्दिष्ट स्थान पर ले जाने से चौगान का खेल जीता जाता है, उसी प्रकार रसीले तथा प्रेमयुक्त मन द्वारा एवं प्रेम का लज्जापूर्ण निर्वाह करने से अपने प्रियतम को अर्थात् प्रेम खेल जीता जाता है–

सरस सुमिल चित्त–तुरंग की, करि–करि अमित उठान।

गोइ निबाहैं जीतिए, खेलि प्रेम–चौगान।।

नायक एवं नायिकाओं की आंतरिक एवं बाह्य समस्त–चेष्टाओं को कवि ने बारीकी से उकेरा है। उनकी नायिकाएँ अपनी मादक, अल्हड़ मुद्राओं तथा चंचल चेष्टाओं को अभिभूत कर लेती हैं। अनुभाव विधान के अंतर्गत बिहारी ने मूल भाव को हृदयंगम कराने के लिए अनेक चेष्टाओं का उन्मुक्त वर्णन किया है। अनुभावों की रेखाएँ इतनी स्पष्ट हो जाती हैं कि भाव के सहज आस्वादन में सरलता आ जाती है। प्रेम–प्रसंग में नायक–नायिका का पारस्परिक व्यंग्य–विनोद भी संयोग–शृंगार की अनुभूति कराता है।

संयोग में प्रेमी एवं प्रेमिका साथ रहते हैं लेकिन जब वे दोनों एक–दूसरे से अलग–अलग होते हैं तो वहाँ विप्रलंभ शृंगार होता हैं वियोग में स्वार्थ का स्थान नहीं होता इसीलिए इसे प्रेम की कसौटी माना गया हैं संयोग शृंगार जहाँ प्रेम का स्थूल पक्ष है वहीं वियोग प्रेम का सूक्ष्म पक्ष है। वियोग में प्रेमी की याद में प्रेम निरंतर पुष्ट होता रहता है। बिहारी ने भी कमोबेश वियोग शृंगार का चित्रण किया है–

यह बिनसतु नगु राखि कै, जगत बड़ौ जसु लेहु।

जरी विषम जुर जाइएँ, आइ सुदरसनु देहु।।

उपर्युक्त दोहे में विरह की दशा बताते हुए नायिका की सखी नायक को पत्र लिखती है कि रत्न जैसी सुंदर और बहुमूल्य नायिका तुम्हारे विरह–ज्वर में जली जा रही है, अतः इसके उपचार के लिए तुम इसे चूर्ण रूपी सुंदर दर्शन दे दो। धीरे–धीरे नायिका का विरह इतना बढ़ जाता है कि वह अपने विरह को न तो ठीक से दिखा पाती है और न ही लज्जा के कारण संदेश ही भिजवा पाती है। उसे पूर्ण विश्वास होता है कि उसका प्रेम सच्चा है, अतः उसके विरह की सारी अनुभूतियाँ नायक के दिल में अक्षरशः अंकित हो रही होंगी–

कागद पर लिखत न बनत, कहत संदेसु लजात।

कहिहैं सबु तेरौ हियौ, मेरे हिय की बात।।

विरहिणी नायिका के विरह का एक से बढ़कर एक हृदयविदारक चित्र बिहारी ने खींचा है। उनकी एक विरहिणी नायिका का हृदय विरह ज्वाला में इतना अधिक तप्त है कि वह पिघलकर आँखों के रास्ते आँसू के रूप में निकल जाता है–

तच्यौ आंच अब विरह की, रह्यौ प्रेम–रस भीजि।

नैननु कै मग जलु बहै हियौ पसीजि–पसीजि।।

शृंगार के अतिरिक्त सतसई में नीति, भक्ति, प्रकृति एवं राज प्रशस्ति संबंधी दोहे भी मिलते हैं। नीति संबंधी दोहों में कवि की व्यवहार कुशलता व लोकशास्त्र का अथाह ज्ञान झलकता है तो बिहारी ने समाज में प्रचलित अनेक अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों को भी अपनी सजग आँखों से देखा है और आवश्यकतानुसार व्याख्यात्मक उपादान के रूप में प्रयुक्त किया है। उन्होंने 'लौनेमुँह दीठि ने लगे, यौं कहि दीनौं इठि' कहकर नज़र लगने की प्रथा का उल्लेख किया है। इसी तरह उन्होंने योग्य और अयोग्य व्यक्तियों के बारे में अन्योक्ति द्वारा बताते हुए लिखा है कि अयोग्य व्यक्ति को चाहे जितना

सम्मान दिया जाए पर वह नीचता की ओर ही जाता है जबकि योग्य व्यक्ति अनिच्छा से भी किसी पद पर आसीन हो तो वह उसे ऊँचाइयों की ओर ले जाता है–

मूड़ चढ़ाऐं हूँ रहै, पारयौ पीठी कच–भारु।
रहै गरै परि राखिबौ, तऊ हिएं पर हारू।।

बिहारी ने दुष्ट व्यक्तियों की संगति को हर हालत में कष्टदायी बताया है। वे अधीन होने पर काँटों की तरह पाँव में धंसते हैं और शक्तिशाली एवं समर्थ होने पर तो प्राण का ही हरण कर लेते हैं–

नए बिससियहि लखि नए, दुर्जन दुसहु सुभाई।
आंटें परि प्रानन हरत, कांटे लौं लगि पाइ।।

बिहारी के अर्थ संबंधी दोहे भी पाठक को काफी सीख देते हैं। उनका कहना है कि व्यक्ति को अधिक धन संचय नहीं करना चाहिए क्योंकि जैसे–जैसे धन बढ़ता जाता है, वैसे–वैसे उसका मन भी बढ़ता जाता है। लेकिन साथ ही साथ वे ऐसे धन संचय को उचित मानते हैं जो उचित तरीके से खाने–पीने के बाद एकत्रित हो–

मीतु न नीति गलीतु ह्वै, जो धरिए धनु जोरि।
खाँए खरचै जो जुरै, तो जोरिए करोरि।

किसी भी काव्य का सौंदर्य उसकी भाषा पर निर्भर होता है। भाव की गंभीरता, उदात्तता तथा गहनता आदि सभी भाषा की ही धरोहर हैं। 'बिहारी सतसई' की भाषा ब्रजभाषा है। सरलता व प्रवाहमयता बिहारी की भाषा के सबसे बड़े गुण हैं। कवि यह जानता है कि काव्य का उद्देश्य कला मात्र नहीं है, उसका लाभ तो भावाभिव्यक्ति है। यदि भाषा को जटिल बना दिया गया तो अभिव्यक्ति सहज नहीं रह पाएगी। काव्य भाषा 'ब्रजभाषा' होने के बावजूद इन्होंने आवश्यकतानुसार अरबी–फारसी के शब्दों जैसे– अदब, कबूल, खूनी, सोर, रकम, हदाल, दरबार आदि का प्रयोग किया है। इसी तरह भाषा की स्वाभाविकता एवं लोकचित्रण की सजीवता के लिए सैत्य, करबर, गुनही, रस भारती, पुहुप, सौहन जैसे ग्राम्य शब्दों का प्रयोग किया है–

नख–रेखा सोहै नइ, अलसौ हैं सब गात।
सौं हैं होते न नैन ऐ तुम सौंहे कत खात।।

इसमें 'सौंहे' शब्द का प्रयोग चमत्कारोत्पादक, अनूठा और ह्रदयहारी है। आचार्य शुक्ल ने बिहारी की भाषा के संदर्भ में लिखा है–

"बिहारी की भाषा चलती होने पर भी साहित्यिक है। वाक्य व्यवस्थित हैं और शब्दों के रूपों का व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर है। यह बात बहुत कम कवियों में पाई जाती है। ब्रजभाषा के कवियों ने शब्दों को तोड़–मरोड़ कर विकृत किया है। बिहारी की भाषा इस दोष से भी बहुत कुछ मुक्त है। समास पद्धति बिहारी की भाषा की प्रसिद्ध विशेषता है। इसके द्वारा छोटे से छोटे छंद दोहा में भावों का समाहार रूप और उनका संश्लिष्ट चित्रण किया है।" मुक्तक काव्य में रस की सफल अभिव्यक्ति में वही कवि सफल हो सकता है जिसमें भाषा की समाहार शक्ति अर्थात् नपे–तुले शब्दों में अधिक भावों की अभिव्यक्ति की क्षमता विद्यमान हो। बिहारी में यह क्षमता अन्य मुक्त रचनाकारों से अधिक मिलती है। अपने श्रृंगार रस वर्णन में उन्होंने जो सौंदर्य उत्पन्न किया है उसमें वाग्वैदग्ध और कलात्मकता का भी पूरा योगफल किया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत हैं नैननु हीं सब बात।।

काव्य के अभिव्यंजना कौशल के निर्माण में अलंकारों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कविवर बिहारी की सतसई भी अलंकारों की दृष्टि से एक उच्चकोटि की रचना है। कवि ने शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का ही सफल प्रयोग किया है। उनकी अलंकार योजना सुंदर है जिसके साथ–साथ कथन की नाटकीयता और सौंदर्य भी बड़े ही सजीव रूप में आ गए हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

चमचमात चंचल नयन, बिच घूँघट–पट झीन।
मानहुँ सुरसरिता बिमल जल उछरत जुग मीन।।

यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार द्वारा कवि ने बताया है कि किस तरह झीने वस्त्रों के बीच से झलकती नायिका के दोनों सुंदर नेत्र गंगा के विमल जल में उछलती हुए मछली की तरह प्रतीत होते हैं। अलंकार योजना के बिना बिहारी का काव्य कहीं दिखाई नहीं देता और ये अलंकार उनकी भाषा में स्वाभाविक रूप से आए हैं कहीं भी कृत्रिम रूप में नहीं।

बिहारी सतसई के संदर्भ में डॉ. विजयपाल सिंह का मत है कि "बिहारी का हिंदी साहित्य में अविस्मरणीय योगदान है। उसे किसी तरह भुलाया नहीं जा सकता। उसमें वस्तु एवं शिल्प का अद्भुत सामंजस्य है। काव्य भाषा के लिए जिन श्रेष्ठ गुणों की अपेक्षा होती है, वे भी बिहारी सतसई में पाए जाते हैं। अपनी लक्षणा एवं व्यंजना शक्ति की क्षमता के बल पर बिहारी की रचनाएँ सहृदय के मन को मोह लेती हैं। उनसे अर्थों के कई धरातल उन्मीलित होते हैं जिनका आस्वादन कर रसिकजन की हृदयतंत्री झंकृत हो उठती है। सामंती वातारवण एवं तत्कालीन परिवेश के दबाव में जिस तरह के काव्य की सर्जना संभव हो सकती है उसका एक आदर्श नमूना बिहारी ने हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से बिहारी सतसई का अद्वितीय स्थान है। भाषा की प्रांजलता, शब्दों का सुष्ठु चयन, पद–विन्यास की कुशलता और लाक्षणिकता, चित्रोपमता, नाद–योजना, ध्वन्यात्मकता, प्रतीक विधान और बिंब–विधान का जो सुंदर सामंजस्य बिहारी सतसई में दृष्टिगोचर होता है, वह किसी अन्य कवि द्वारा रचित मुक्तक काव्य में नहीं मिलता। 'बिहारी सतसई' की इन्हीं विशेषताओं पर मुग्ध होकर गियर्सन ने उसे यूरोप की किसी भी भाषा के काव्य से इसकी तुलना न कर पाने की बात कहकर इनकी प्रशंसा की है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने 'हृदय से हृदयहार' बने रहने की आशा प्रकट करने के रूप में इस ग्रंथ की महत्ता का प्रतिपादन किया है। बिहारी सतसई एक अन्य दृष्टि से दूसरे, सतसईयों से अलग है। दूसरे सतसईयों में जहाँ विषय की विविधता का अभाव है, वहीं बिहारी सतसई में शृंगार की प्रमुखता होते हुए भी भक्ति, नीति, वीरता, प्रकृति, सामाजिकता और हास्य आदि के वर्णन के रूप में विषय वैविध्य है। जहाँ तुलसी भक्ति के क्षेत्र में, रहीम और वृंद नीति के क्षेत्र में और मतिराम शृंगार के क्षेत्र में ही अधिकार रखते हैं। वहाँ बिहारी का अधिकार क्षेत्र अत्यंत विस्तृत और व्यापक है। इस तरह कहा जा सकता है कि बिहारी के समान इतनी कम रचना करके इतना अधिक सम्मान प्राप्त करने वाला हिंदी में कोई दूसरा कवि नहीं है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. रीतिकाव्य की भूमिका– डॉ. नगेंद्र
2. हिंदी साहित्य का इतिहास– आचार्य रामचंद्र शुक्ल
3. हिंदी साहित्य की भूमिका– डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
4. बिहारी रत्नाकर– जगन्नाथ दास 'रत्नाकर'
5. मध्यकालीन बोध का स्वरूप– डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
6. बिहारी की वाग्विभूति– विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

– हिंदी विभाग, रामानुजन कॉलेज, (दि.वि.वि) कालका जी, नई दिल्ली–19

❑❑❑

फणीश्वरनाथ 'रेणु' : लोक संस्कृति और आस्था के सजग और मर्मी शिल्पी

अंबिकेश कुमार मिश्र

फणीश्वरनाथ 'रेणु' हिंदी साहित्य के आंचलिक एवं गहरे लोक–संपृक्त उपन्यासकार तथा कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। लोक संस्कृति की जितनी गहरी पकड़ इनके कथा साहित्य में दिखती है अन्यत्र कहीं दुर्लभ है। ना सिर्फ इनके कथा साहित्य में लोक संस्कृति की झलक है बल्कि इनकी कथा की भित्ति या कहें तो संपूर्ण महल ही सुदृढ़, टिकाऊ और मन को छूने वाली लोकभाषा की नींव पर टिकी हुई है। इसमें कोई दो राय नहीं कि जो भाषा पढ़े–लिखे प्रोफेशनल और आधुनिक अंग्रेजी जगत में गँवारों और गलीज़ों की भाषा है, वही भाषा रेणु के कथा साहित्य की भी भाषा है। लेकिन जब इन्हीं वाक्यों को रेणु अपनी कथा में खपाते हैं तो इनकी कथा किसी क्लासिकल सिनेमा सी आँखों के सामने चलने लगती है। ऐसा लगता है जैसे 'पहलवान की ढोलक' का पहलवान कथा में नहीं माथे के भीतर नाच रहा है जिसे हम देख रहे हैं। ऐसा लगता हैं कि रसप्रिया का मोहना आँखों के सामने आम चूस रहा हैं और ठेस का सिरचन.....! अपने उतार–चढ़ाव भरे जीवन में भी रेणु ने सदा ही हिंदी साहित्य को पुष्पित–पल्लवित किया। कहा जाता है कि 1954 में आया इनका उपन्यास 'मैला आँचल' ने अपने आंचलिक तेवर से हिंदी साहित्य को नई दिशा दी और आंचलिक साहित्य पर विमर्श इसके पश्चात् ही शुरू हुआ। रेणु ने अपने उपन्यास में लोक या कहें तो अंचल को ही नायक बना डाला है वो भी कच्चे और अनगढ़ रूप में। जहाँ एक तरफ शस्य श्यामलता है तो एक तरफ धूल, एक तरफ फूल है तो एक तरफ शूल। इनके साहित्य की विशेषता है अंचल में सजीवता की प्रस्तुति, रेणु जी की प्रस्तुति का ढंग हमारे मन में ऐसा प्रभाव पैदा करता है कि उनके खेत, खलिहान, घास काटती स्त्री, मेड़, डोलता अरहर सब सजीव मालूम पड़ने लगते हैं मानो कोई रिकॉर्डिंग देख रहें हों, फिल्म की तरह एक पर एक शब्दचित्र दौड़ता है। जैसे कोई रेल आँखों के सामने से गुजर रही हो। इनका रचना संसार लोक संस्कृति का संसार है या यो कहें लोक त्योहारों का साहित्यिक म्युजियम है, जहाँ चलन से गायब हो रहे या हो गए उत्सवों का भी दर्शन किया जा सकता है। रेणु के साहित्य में शहर से भिन्न एक देहाती संस्कृति का एक गवारपन है तो चेतना भी है। श्रद्धा है तो संस्कार भी। जो परती से लेकर उर्वर तक फैली हुई है। ये 'मैला आँचल' से 'परती कथा' तक ऐसे फैला है जैसे धरती पर आकाश मैंने जब रेणु जी के आंचलिक उपन्यास (यहाँ ध्यातव्य हो कि रेणु जी अपने लिए आंचलिक उपन्यासकार का संबोधन पसंद नहीं करते थे।) 'मैला आँचल' के शीर्षक को सुना तो मुझे ये अच्छा नहीं लगा। मैंने सोचा, आँचल मैला क्यों हो भला? आँचल तो साफ होना चाहिए! फिर समझते देर ना लगी कि रेणु के शीर्षक का आँचल खेत में धान बोती किसी स्त्री का है या धूर पर धान काटती मोहना की माँ का। जिसने धूल को चूम अपनी धवलता बिसरा/भूला दी है। रेणु के इस शीर्षक को पढ़कर सुमित्रानंदन

भाषा ISSN 0523-1418

पंत जी की कविता संग्रह ग्राम्या में संकलित भारतमाता का अंश स्मरण हो आता है–

भारत माता ग्रामवासिनी
खेतों में फैला है श्यामल
धूल भरा मैला सा आँचल
मिट्टी की प्रतिमा उदासिनी।[1]

'मैला आँचल' का केंद्रीय कथ्य पूरे ग्रामांचल का समग्र यथार्थ है जिसमें अंधविश्वास भी है और चेतना भी, चोरी भी है और दान भी, दमन भी है और प्रतिकार भी। साथ ही साथ इसमें लुप्तप्राय आकर्षण को जीवित रखने की क्षमता भी है, इसमें लोकगीत है, लोकभाषा है, नदी–नाले, डबरे, पशु–पक्षी, हल–बैल, मंदिर–मस्जिद, गेहूँ–खेत सब कुछ है। इसमें रेणु ने ग्रामीण जीवन पद्धति का चित्रण भदेस ग्राम्य भाषा और समतुल्य वातावरण के साथ किया है। रेणु की कथाओं में ईश्वरवाद और उत्सव के अद्वितीय उदाहरण दृष्टिगत होते हैं जो अन्यत्र नहीं। आस्था का हाल ये है कि मैला आँचल में तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद काली थान के सामने आने पर सर पर टोपी रखकर काली माँ को प्रणाम करता है।[2] देवी के प्रति ऐसी श्रद्धा भावविह्वल कर देती है। ये रेणु के गाँव में ही संभव है। परती परिकथा में परानपुर गाँव के लोग परती भूमि पर निर्वासित परमा देवता की पूजा करते हैं। क्योंकि उनकी ऐसी मान्यता है कि परमा देव सभी की मान्यता पूरी कर सकते हैं।[3] बारह–बारह साल के काग बाँझों को बच्चा दिया है परमादेव ने। बैजू की बहू को याद है कि आँचल में केला और अमरूद गिरा दूसरे दिन सुबह से ही उसे मिचली आने लगी। गले हुए कोढ़ी करिया सामू को परमादेव के वाक् ने आराम दिया।[4]

देवता रेणु के ठेठ लोगों के हृदय में ऐसे बसे हैं कि वे कोई काम बिना देवता को पूजे प्रारंभ ही नहीं कर सकते। तभी तो 'मैला आँचल' में भंडारे से पहले काली थान की पूजा की गई।[5] लोक में देवता के प्रति ऐसी आस्था है, ऐसा विश्वास है कि कलिमुद्दीपुर के पास साकुड़ के पेड़ की डाली पर लटकती हुई बाबनदास की खद्दर की ओली के अवशेष लाल डोरी को कोई दुखिया वृद्ध चेथरिया पीर समझकर अपने आँचल का कोई खूँट फाड़कर बाँध देती है और मनोकामना पूर्ण होने की आशा करने लगती है।[6] ऐसी श्रद्धा और कहाँ दृष्टिगत हो सकती है। यहाँ पीपर, पाकर, आम, जामुन, बरगद, पीपल सभी में मान्यताओं के देवता बसते हैं। खेलावन सिंह की पत्नी अपने बच्चे की मति सुधारने के लिए पीर बाबा से प्रार्थना करती है। और मनौती पूरी होने पर मादक पदार्थ चढ़ाने की बात कहती है।[7] रेणु के लिए कही गई भारत यायावर की ये पंक्तियाँ बिल्कुल सही ही हैं कि वे साधारण जन की आत्मा के सजग और मर्मी शिल्पी हैं। अगर वे साधारण जन की आत्मा के शिल्पी ना होते तो 'बट बाबा' की कराह को जन–जन के हृदय में ना अनुभव करते? वैसे भी बट–बाबा का धराशायी होना कोई आम बात नहीं थी। कैसे होती ये आज से थोड़े ना थे, वर्षों से थे। कितने वर्षों से? ये किसी जीवित को नहीं पता! ये सबों के देवता थे यानी उतने ही हिंदू के जितने की मुस्लिम के। एकादशी, पूर्णिमा में इनकी फूल, सिंदूर, धूप, दीप से पूजा होती। बट सावित्री में सुहागिनों को आशीष देते उनकी जटाएँ इतनी फैल गई थी जिसे देख लोग हर्षित रहते थे। जब बट बाबा सूखने को हुए तो मनौती माँगने वालों की भीड़ लग गई। श्रद्धा भक्ति की धारा ऐसी तीव्र हो गई कि कभी पेड़–पत्थर की पूजा ना करने की कसम खाने वाली मंडर की पतोहू भी चार आने का बतासा लेकर बाबा से अपने पति की रिहाई का निवेदन करने चली गई। लछमिनिया, कलरू महतो, टहलू पासवान, भजू धानुक सब मनौती माँग रहे थे। जब पेड़ गिरा तो गाँव वालों का कलेजा फट गया मानो गाँव अनाथ हो गया हो।[8] एक पेड़ के प्रति ऐसी श्रद्धा ऐसा लगाव, सांस्कृतिक संपन्नता, रागात्मकता और कोमलता रेणु की कथाओं में ही संभव है। भारतीय संस्कृति की यहाँ जीवन को उज्ज्वल बनाने के लिए लौकिक और परलौकिक दोनों तरह की संभावना मौजूद है। त्योहारों के मूल में धार्मिक भावनाएँ कैद रहती हैं जहाँ लोग उत्तम भविष्य की कामना देवी–देवता से करते हैं तभी तो 'विघटन के क्षण' में रानीडीह की कुमारी कन्याओं ने रात में भाई के दीर्घायु होने के लिए लाल माटी वाले खेत पर सामा–चकेवा

का खेल खेला। सामा, चकवा, खंजन, बटेर, चाहा, पनकौआ, हाँस, बनहाँस, भेम्हा आदि की पूजा की गई। सैकड़ों चुगलों के पुतले फूँकें। पुतलों की शिखाएँ जली। अगहनी धान के खेतों में कुछ पाँच वर्षों बाद सामा चरा रही है रानीडीह की कुमारियाँ। हवाओं में चुगलों के व्यंगात्मक गीत उड़ रहें हैं–

घर–घर में तू झगड़ा लगाबे,बाप बेटा से रगडा कराबे
सब दिन पानी में आग लगाबे, बिन कारन सब दिन छुछुवावे।
तोर टिकी में आगि लगे रे चुगले.....छुछुन्दरमुँह. ....मूँहझौंसे चुगले।[9]

'तबो एकला चलो रे' में छठी मैया के प्रति विश्वास ऐसा है कि लोग छठी मैया से कहते हैं कि वे बथान में पाड़ा ना दें और घर में बेटा ही दें।[10]

रेणु के मैला आँचल में मेरीगंज के लोग सतुआनी पर्व मनाते है। साल के पहले दिन सिरवा पर्व होता है जिसमें चूल्हे नहीं जलते। लोग मानते हैं कि साल भर जलने वाले चूल्हे के लिए ये दिन विश्राम का होता है। होली तो जैसे रेणु के समाज के लिए आवश्यक पर्व में से एक है तभी तो रेणु कहते हैं कि जो जिए सो खेले फाग। दूसरे पर्व त्योहारों को टाल भेई दिया जा सकता है लेकिन मादक वासंती फाग को कैसे टाला जा सकता है। जब मंजराई आम के बाग़ से हवा आकर मतवाली बन जाती है। स्त्रियाँ होली का गीत गाती हैं।

"अरे बहियाँ पकदि झकझोरि श्याम दे
फूटल रेशम जोड़ी चूड़ी,
मसकी गई चोली, भीगावल साड़ी
आँचल उड़ी जाए हो
ऐसो होरी मचायो श्याम रे।

रेणु के जुलूस में ईद और दुर्गापूजा गाँव के हिंदू और मुसलमान दोनों सामान रूप से मनाते हैं। सौहार्द कायम है। ऐसा ही 'रोमांस शुन्य प्रेमकथा' में देखने को मिलता है।

लोक जीवन में आज भी त्योहार प्रचलित हैं लेकिन उनके पीछे की धार्मिक भावना का ह्रास हुआ है। नई पीढ़ी में पर्वों के प्रति उत्साह कम हुआ है। ये कोई तुरंत हुआ है ऐसा नहीं है बल्कि रेणु के समय में भी युवा पर्वों से विमुख थे। उनकी नजरों में पर्व रूढ़िगत समाज की बेवकूफी के उदाहरण हैं, जिसे बंद करना चाहिए। आज के परिवर्तनकारी समय में जब संस्कृति अपने अस्तित्व को अक्षुण्ण रखने के लिए डटी है, वहाँ रेणु का साहित्य संसार उनका संबल बनकर खड़ा है। तभी तो रेणु संस्कार और संस्कृति के साहित्यकार के रूप में शिखर पर हैं और रहेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सुमित्रानंदन पंत : ग्राम्या, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1977, पृष्ठ–45
2. फणीश्वरनाथ 'रेणु' : मैला आँचल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली–2008, पृष्ठ–10
3. फणीश्वरनाथ 'रेणु', परतीः परिकथा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली–2007, पृष्ठ–93
4. फणीश्वरनाथ 'रेणु', परतीः परिकथा, पृष्ठ–94
5. रेणुः मैला आँचल, पृष्ठ–41
6. रेणुः मैला आँचल, पृष्ठ–304
7. रेणुः मैला आँचल, पृष्ठ–254
8. फनीश्वरनाथ 'रेणु' : बट बाबा, मेरी कथा यात्रा, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली–2012, पृष्ठ–15,19
9. फनीश्वरनाथ 'रेणु' : विघटन के क्षण, चुनी हुई कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ–294
10. वही, तबे एकला चलो रे, पृष्ठ –165

– 3728, द्वितीय तल, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, दिल्ली–110002

❑❑❑

मैला आँचल : दास्तान–ए–चेथरिया पीर

डॉ. हरींद्र कुमार

"सुराज मिल गया?"

"अभी मिला नहीं है, पंद्रह तारीख को मिलेगा। ज्यादा दिनों की देर नहीं, अगले हफ्ता में ही मिल जाएगा। दिल्ली में बातचीत हो गई।... हिंदू लोग हिंदुस्तान में, मुसलमान लोग पाकिस्तान में चले जाएँगे।" बावनदास जी फिर एक खबर ले जाए हैं। ताजा खबर!"

(मैला आँचल : दूसरा खंड – एक)

मैला आँचल उपन्यास का विश्लेषण साहित्य जगत में 'आंचलिक' उपन्यास के रूप में अधिक किया है। उपन्यास का दूसरा खंड भाषा की दृष्टि से आंचलिक तो कहा जा सकता है परंतु इसमें आज़ादी से मोहभंग की व्यथा छिपी हुई है। बावनदास में गांधी के विचारों का प्रतिरूप दिखाई देता है। सुराज के मायने बावनदास जी समझाते हैं, "सुराज माने अपना राज, भारथवासी का राज। अब अंगरेज लोग यहाँ राज नहीं कर सकते।... 'ए अंगरेजों। भारथ छोड़ो' क्यों कहा था गांधी जी ने? इसीलिए।" (मैला आँचल, पुष्ठ 218) उपन्यास के दूसरे खंड का यही मूल आधार है। भारत की जनता को गांधी जी के नेतृत्व में औपनिवेशिक शासन से मुक्ति तो मिल गई लेकिन 'अधूरी'। आज तक हम इसे पूर्ण स्वराज के रूप में ढूँढ रहे हैं। जिस आज़ादी की शुरुआत "महात्मा गांधी की जै!"

जमाहिरलाल नेहरू की जै !

रजिन्नर बाबू की जै !

"जयपरगास जिंदाबाध !" (मैला आँचल, पृष्ठ 225) के नारों से हुई थी शीघ्र ही 'यह आज़ादी झूठी है!' 'देस की जनता भूखी है।' (पृष्ठ 225) में बदल गई। कांग्रेस और कामरेड में आपसी संघर्ष धीरे–धीरे बढ़ने लगा। गांधीवादी बालदेव और कौमरेड कालीचरण आज़ादी का उत्सव अपने–अपने नारों के अनुसार मनाने का प्रयास करते हैं। आज़ाद भारत में पार्टीबंदी का वर्चस्व बढ़ने लगा था। गांधीवादी बलदेव को अब 'सनकी' की संज्ञा से अभिहित किया जाने लगा। वैचारिक टकराहट 'सुराज' के आरंभ में ही इतनी बढ़ी कि 'कांग्रेसी' और 'सोसलिस्ट' एक दूसरे के शत्रु हो गए। "बात यह हुई कि बाबू कालीचरन के पेट में रहता है कुछ और, और कहता है कुछ और! हम इससे पहले ही पूछ लिए थे कि तुम्हारी पार्टी की ओर से क्या हुकुम हुआ है सुराज उत्सव के बारे में। तो बोला कि सुराज क्या सिरिफ कँगरेसी को मिला है। ...अभी देखिए, सुभलाभ करके जब हम लोग जुलूस निकाला है तो बाहरी आदमी को मँगा करके हम लोगों के उतसब को भंग कर रहा है। यह कैसी बात।" (मैला आँचल, पृष्ठ 226)

मैला आँचल में 'कांग्रेसी' और 'सोसलिस्ट' संघर्ष 'सुराज' के उत्सव में बार–बार नज़र आता है। सुराज उत्सव में बाई जी गा रही हैं :

कहीं पे छापो गंधी महतमा
चर्खा मस्त चलाते हैं

कहीं पे छापो वीर जमहिर
जेल के भीतर जाते हैं।
अँचरा में छापो झंडा तेरंगा
बाँका लहरदार रे रँगरेजबा!

(मैला आँचल, पृष्ठ 228)

तभी फटाक! पटाखा फूटा
अजी भगतसिंह है नामी इनमें सरदार
अजी करना है उसको गिरिफदार!

(पृष्ठ 228)

यहीं से देशभक्त और 'देश पुरोहित' समूह में भारतीयता बँट जाती है "मारो साले को। यह साला अब असल देश पुरोहित है, पहचान रखो।" यही पहचान संस्कृति आज़ादी के बाद गांधी जी के 'अहिंसा' के विपरीत खून खराबे और हिंसा में विश्वास करने लगी। सारा देश लहूलुहान हो गया। यह गांधी जी के सपनों का भारत नहीं था। फणीश्वर नाथ 'रेणु' ने मैला आँचल में राष्ट्रीय राजनीति की समस्याओं को केंद्र में रखकर इस उपन्यास की रचना की।

मैला आँचल का 'बावनदास' आज़ादी के इस स्वरूप पर विश्वास नहीं करता। अवसरवादी और आपसी संघर्ष की इस सुराजी राजनीति ने उसके विश्वास को तोड़ दिया है। गांधी जी पर ही बावनदास को भरोसा है। उसका स्वयं का चित्र चंचल होता है। मन में संदेह उत्पन्न होता है। राजनीतिक छल छद्म के कारण उसका धैर्य छूट रहा है ' "बावनदास को अब अपने पर भी परतीत नहीं होता है। ...बालदेव जी कहते है 'चित चंचल हो गया है बौनदास का और थोड़ा 'भरम' भी गया है। बस सिरिफ गांधी जी पर भरोसा है बावन को। ...बापू सब पार लगावेंगे। बहुत–बहुत कठिन परीच्छा में बापू अकेले सबको सँभाल लेंगे। जै! बाबा! बापू!" बावनदास जैसे गांधीवादी इसी भरोसे आज़ादी के भ्रष्ट और अवसरवादी समाज में धैर्य धारण करते हैं।

मैला आँचल में आज़ादी के साथ 'कांग्रेस' और 'सोशलिस्ट' के संघर्ष का वर्णन बखूबी किया गया है। कांग्रेस पार्टी और 'किरांती पार्टी' दोनों अपने मार्ग से भटके हुए दिखाई पड़ते हैं। जनता की चिंता किसी को नहीं। 'पार्टीबंदी' और लूट खसोट के साम्राज्य का विस्तार हुआ। यहाँ तक कि आहार भी पार्टी की पहचान बन जाता है– "...यह फलहार करने वाला आदमी, इस किरांती पार्टी में कैसे?..." (मैला आँचल, पृष्ठ 233) आज़ादी के मायने बदल गए। हम किसी की परवाह नहीं करते– चाहें जनता हो या शासन। यह प्रवृत्ति बढ़ने लगी थी। रेणु ने सोशलिस्टों की कथनी–करनी की असमानता को भी इस उपन्यास में 'वासुदेव' के माध्यम से उजागर किया है– "वासुदेव पैकेट से सिगरेट निकालकर दिया सलाई के डब्बे पर ठोंकता है– "दिन–भर हम लॅक्चर झाड़ते रहे हैं, सिगरेट मत पियो, अंडा मत खाओ। और भीतरे–भीतरे..." वासुदेव माचिस जलाकर सुलगाने लगता है। (मैला आँचल, पृष्ठ 234) 'लाल सलाम' सुमरितदास इस व्यवस्था पर हँसते हुए कहता है– "डूबकर पानी पियो, एकादसी का बाप भी न जाने।" भारत में इन क्रांतिवीरों ने खूब डूबकर पानी पिया और जनता के समक्ष मगरमच्छी आँसू लेकर ऐसे उपस्थित हुए जैसे इनके लिए एकादशी हो। रेणु ने इस लोक सांस्कृतिक कहावत का प्रयोग करके कामरेड संस्कृति की कथनी–करनी में भेद को नई अर्थवत्ता के साथ चित्रित किया है।

आज़ाद भारत गांधी जी और बावनदास के सपनों का भारत नहीं है। आज़ादी के बाद कांग्रेस और कांग्रेसी संस्कृति में भी बहुत बड़ा बदलाव आया। आज़ादी के आंदोलन के समय कांग्रेस के जो मूल्य थे, नीतियाँ थी उन सबमें तेज़ी से बदलाव हुआ। कांग्रेस दफ्तर का रूप बदल गया "बलदेव जी रामकिसनु, आसरम बहुत दिनों बाद आए है। ...एकदम बदल गया है आसरम! लोग भी बदल गए हैं। थोड़ा चालचलन भी बिगड़ गया है आसरम का। अब तो लोग मछली और अंडा भी चौका ही में बैठकर खाते हैं।" (मैला आँचल, पृष्ठ 263) झूठ और फरेब कथनी और करनी में अंतर कांग्रेस में भी बढ़ा। उसके आश्रम जब ऑफिस बन गए। छोटन बाबू जैसे 'लुच्चा लौंडा' फारबिसगंज को फरेबगंज बनाने पर उतारू हो गए। बालदेव जैसे स्वतंत्रता सेनानी कांग्रेसी संस्कृति में उपहासास्पद हो गए। सरमा जी छोटन बाबू को समझाते हुए अवसरवादी कांग्रेसियों के चरित्र को

उद्घाटित करते हैं। शराब और विदेशी वस्तु बेचने वालों के वंशज छोटन बाबू कांग्रेस ऑफिस के उत्तराधिकारी बन गए– "आप नहीं जानिएगा छोटन बाबू! आपका जन्म भी नहीं हुआ था। उस समय आपके बाबू जी दारू की दुकानों की ठेकेदारी करते थे। ...हम लोग उनकी गाली सुन चुके हैं।" (मैला आँचल, पृष्ठ 264) लेकिन छोटन बाबू पुराने कांग्रेसियों पर व्यंग्य करने में कोई कसर बाकी नहीं रखते। बल्कि छोटन ही अब कांग्रेस के नियामक बनने की तैयारी में थे। छोटन बाबू कहते हैं'– "अमीनबाबू से कहना होगा मेरी जंग में अब बालदेव से काम नहीं चलेगा। चरखा सेंटर को चौपट कर दिया। घर–घर में सोशलिस्ट घबराने लगे।" बावनदास को देखकर छोटन बाबू व्यंग्य करने से नहीं चूकते– "लीजिए! एक बरमगियानी गए तो दूसरे कठपिंगल जी आ रहे हैं। ...यह तो आजकल और भी काबिल हो गया है।" (मैला आँचल, पृष्ठ 265) बालदेव और बावनदास 'सुराज' के पश्चात् किस प्रकार अप्रासंगिक हो गए हैं, रेणु ने मैला आँचल में इनके माध्यम से आज़ाद भारत की कांग्रेस संस्कृति की पोल खोल दी है।

रेणु ने मैला आँचल में बावनदास के माध्यम से गांधी जी के विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। बावनदास जहाँ कहीं भी अत्याचार एवं भ्रष्टाचार देखता है उसे भारत माता की याद आ जाती है। भ्रष्ट व्यवस्था देखकर उसकी आत्मा कचोटती है। बावनदास इस भ्रष्ट–व्यवस्था की कहानी बालदेव को सुनाता है– "बिलैती कपड़ा के 'पिकेटिंन' के जमाने में चानमल–सागरमल के 'गोला' पर पिकेटिंन के दिन क्या हुआ था सो याद है तुझको बालदेव? चानमल गड़बड़ी के बेटा सागरमल ने अपने हाथों सभी 'भोलटियरों' को पीटा था। जेहल में भोलटियरों को रखने के लिए सरकार को खर्चा दिया था। वही सागरमल आज नरपतनगर थाना कांग्रेस का सभापति है। और सुनोगे? दुलारचंद कापरा को जानते हो न? वही जुआ कंपनी वाला। एक बार नेपाली लड़कियों को भगाकर लाते समय जो जोगबानी में पकड़ा गया था वह कटहा थाना का सिकरेटरी है। ...'भारथमाता' और भी जार–बेजार रो रही है।'(मैला आँचल, पृष्ठ 128)

उपन्यास में बावनदास अपनी निष्ठा पर अडिग है। किंतु उसका मोह भंग हो गया है। छोटन बाबू जैसे लोग "कोरी बेमान, विलेक मारकेटी के साथ कचेहरी में घूमते रहते हैं। ...सब चौपट हो गया.. देस को भसम कर देंगे ये लोग। भसमासुर।" (मैला आँचल, पृष्ठ 270) राजनीति में गांधी जी भी कांग्रेस से मोह भंग की बात कह रहे थे– कांग्रेस का काम बिगड़ गया है। इसका मतलब यह है कि लोग सच्चे नहीं हैं। जो स्वार्थी हैं, उनके हाथ में कांग्रेस की ताकत चली जाए तो काम अच्छी तरह से नहीं चल सकता। कांग्रेस में कई गिरोह हो गए हैं। उन सब गिरोहों का कांग्रेस पर कब्जा करने का ख्याल है। लेकिन इस तरह तो कांग्रेस एक के हाथ में भी नहीं रहेगी। और उनसे छूटकर दंगा–फसाद करने वालों के हाथ में चली जाएगी। उन्हें चाहे गुंडा कह सकते हैं। अगर इनके हाथ में कांग्रेस की बागडोर चली गई, तो काम कैसे चलेगा? अगर सब गिरोह में बँट जाए, कोई फारवर्ड ब्लॉक, कोई सोशलिस्ट तो इस तरह टुकड़े–टुकड़े होने से हम मर जाएँगे। हम सब कांग्रेस के हैं। कांग्रेस किसी एक की पार्टी नहीं, वह तो सारे हिंदुस्तान की सेवा के लिए है। (हरिजन सेवक 1–6–1947 डायरी से)

मैला आँचल में रेणु ने बावनदास और बालदेव के माध्यम से चित्रित किया है कि आज़ादी के बाद तथाकथित गांधीवादियों की चमक बढ़ती गई और गांधीवादी मूल्यों में विश्वास रखने वाले की चमक घट गई। गांधी जी की हत्या के पश्चात् बावनदास निराश और हताश हो जाता है। वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य उसकी आँखों के सामने घूमने लगता है। जातिवाद राजनीति में हावी हो गया। बावनदास की उम्मीद केवल जयप्रकाश बाबू पर टिकी हुई है। सत्ता का चरित्र उसे एक जैसा दिखाई देता है– "सब पार्टी समान' उस पार्टी में भी जितने बड़े लोग है, मंतरी बनने के लिए मार कर रहे है। सब मेले–मंतरी होना चाहते हैं बालदेव! देस का काम, गरीबों का काम, चाहे मजूरों का काम, जो भी करते हैं, एक ही लोभ से। उस पार्टी में बस एक जैपरगास बाबू हैं। हा–हा–हा! उनको भी कोई गोली मार देगा।" (मैला आँचल, पृष्ठ 290) बावनदास

का मन विरक्त हो जाता है। परम श्रद्धाभक्ति से सहेजी हुई गांधी जी की पवित्र चिट्ठियों को बावनदास एक टक देख रहा है।... उसे एक अक्षर का भी बोध नहीं लेकिन वह प्रत्येक चिट्ठी के एक–एक शब्द पर निगाह डालता है, लगता है, सचमुच पढ़ रहा हो। बालदेव जी को गांधी जी द्वारा लिखी चिट्ठियों को सौंपकर विरक्त मन चला जाता है– बलिदान की यात्रा के लिए। बालदेव जी चिट्ठी लछमी के हाथ में दे देते हैं। लछमी बावनदास के मन की व्यथा समझ जाती है:

धरती फाटे मेघ जल
कपड़ा फाटे डोर।
तन फाटे की औखदी।
मन फाटे नहीं ठौर! (मैला आँचल, पृष्ठ 292)

मन में असाधारण निश्चय और विश्वास लेकर वह भ्रष्टाचार और चोरबाजारी का भंडा फोड़ करने के लिए कंधे पर एक झोली लटकाकर चल देता है। भारत और पाकिस्तान के बीच तस्करी का व्यापार करने वालों को वह पकड़ेगा। गांधी जी की हत्या के पश्चात् भी बावनदास को गांधीवादी मूल्यों और गांधी जी के नाम का अगाध विश्वास है। ... "जै महातमा जी। जै बापू। माँ। माँ ... धन्न हो प्रभु! एक परीक्षा से तो पार करा दिया प्रभु। ... डाल दो डेरा रे मन!" (मैला आँचल, पृष्ठ 294)

बावनदास भारत–पाकिस्तान सीमा रेखा नागर नदी पर डेरा डाल देता है। आज यहीं से कांग्रेस सिकरेटरी दुलारचंद कापरा की गाड़ियाँ पाकिस्तान स्मगलिंग का सामान लेकर जाएँगी। गांधी जी का सराध भोज देश में किया जा रहा था। कापरा जैसे कांग्रेसी गांधीवादी मूल्यों का 'सराध' करने जा रहे थे। दोनों तरफ के व्यापारी काले धंधे में लिप्त थे। आज बावनदास उन्हें खुली चुनौती देने के लिए खड़ा था। मन में गांधी जी के प्रति अगाध श्रद्धा भाव– "भगवान! महातमा जी! बापू! माँ! मुझे बुला लो अपने पास! क्या करूँगा इस दुनिया में रहकर! ... धरम नहीं बचेगा" (मैला आँचल, पृष्ठ 295)

बावनदास गांधी जी के सराध के दिन अपना 'धर्म' निभाने के लिए खड़ा है। आज एक–एक को पर्दे से बाहर निकाल देगा। बावनदास सेन्ताराम– सेन्ताराम कहते हुए पाकिस्तान जाने वाली कपड़े–सीमेंट और चीनी से लदी पचास गाड़ियों के सामने खड़ा हो जाता है। 'कलीमुद्दीपुर नाका के सिपाही जी आगे बढ़ आते हैं, खखारकर पूछते हैं, कौन है?' 'हम हैं सेवक बावनदास' कह कर बावनदास सामने आ जाता है। सिपाही बावनदास को सन तीस से जानता है। 'चान टरे, सुरुज टरे ...' बावनदास कहता है "मुँह क्यों छिपाते हैं राम बुझावन जी! आज खुलकर खेला होना चाहिए!" ले आइए आज जो लोग पर्दे में हैं। जाइए। (मैला आँचल, पृष्ठ 295) सिपाही दुलारचन्द कापस सिपाही के साथ– "मैं पंजाबी हूँ जी! मगर आगे आप जानो। मैं अपना फरज अदा करने जाता हूँ।" कहकर गाड़ियों के पास पहुँचता है। दुलारचंद कापरा देखता है– "हाँ, बावन ही है। कौन? कापरा जी! गाड़ी के पीछे क्या झाँकते है? सामने आइए।" बावनदास हँसता है।

बावन!... रास्ता छोड़ दो। गाड़ी पास होने दो। "आइए सामने पास कराइए गाड़ी। आप भी कांग्रेस के मेंबर हैं और हम भी। खाता खुला हुआ है। अपना–अपना हिसाब–किताब लिखाइए।... आज के इस पवित्तर दिन को हम कलंक नहीं लगने देंगे।" (मैला आँचल, पृष्ठ 291)

बावनदास मानता नहीं है, रास्ता नहीं छोड़ता। अंततः गाड़ियाँ बावनदास के ऊपर से निकल जाती है। "गाड़ियाँ पास हो रही हैं! पचास गाडियाँ!" इस प्रकार "बावनदास ने दो आज़ाद देशों की, हिंदुस्तान और पाकिस्तान की ईमानदारी को, इनसानियत को, बस दो डेग में ही नाप लिया।" (मैला आँचल, पृष्ठ 298)

बावनदास अपने आदर्शों पर बलिदान हो जाता है। बालदेव जैसे नेता छद्मी हो गए। ईर्ष्या की आग में जलते हुए बालदेव गांगुली जी के पास बावनदास के पत्रों को नहीं पहुँचाते"... बालदेव अब जान रहते इन चिट्ठियों को नहीं दे सकता। इन चिट्ठियों को देखते ही जमाहिरलाल नेहरू जी बावनदास को मेनिस्टर बना देंगे, नहीं तो डिल्ली बुला लेंगे।" (मैला आँचल पृष्ठ 300) बालदेव चिट्ठियों को जला देता है लेकिन गांधी के बाद की राजनीति की कल्पना को व्यक्त करता है– "जाति बहुत बड़ी चीज है। ... जाति की बात ऐसी है कि सभी

बड़े–बड़े लीडर अपनी–अपनी जाति की पार्टी में हैं। यह तो राजनीति है" (मैला आँचल, पृष्ठ 303)

मैला आँचल में रेणु ने स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीति की नब्ज़ को पकड़ा है। इसीलिए मैला आँचल उपन्यास की संपूर्ण रचना में भारतीय समाज और राजनीति की छवि परिलक्षित होती है।

खंड दो शीर्षक 'बाईस' सबसे मर्मस्पर्शी है। उपन्यास का अंत गांधी जी की 'समाधि' और 'चेथरिया पीर' के प्रसंग के साथ होता है। "दिल्ली में, राजघाट पर बापू की समाधि पर रोज श्रद्धांजलियाँ अर्पित होती हैं। संसार के किसी भी कोने का, किसी भी देश का आदमी आता है, वहाँ पहुँचकर अपनी जिंदगी को सार्थक समझता है।" (मैला आँचल, पृष्ठ 304) दूसरा प्रसंग 'बावनदास' की झोली का फीता 'दास्तान–ए–चेथरिया पीर' बयां कर रहा है– " कलीमुद्दींपुर में, नागर नदी के किनारे, चोरघट्टा के पास सॉहुड के पेड़ की डाली से लटकती हुई सद्दर की झोली को शायद किसी ने टपा दिया है। ... कौन लेगा? दुलारचंद कापरा ने एक महीने के बाद जाकर देखा झोली तो लटक रही है ... डाली से। कांग्रेस का कोई भी वरकर देखते ही पहचान लेगा– बावनदास की झोली है। झोली कापरा ने टपा दी। मगर झोली का फीता अभी भी डाली से झूल रहा है।" (मैला आँचल, पृष्ठ 304) जो बावनदास कालाबाजारी के बादशाह, कांग्रेस के मेंबर की मनोकामना पूरी नहीं कर सका उसकी झोली का फीता 'दुखिया' की मनोकामना पूर्ण करने वाला मान लिया जाता है "किसी दुखिया ने इसे चेथरिया पीर समझकर मनौती की है, अपने आँचल का एक खूँट फाड़कर बाँध दिया है– 'मनोकामना पूरी हो तो नया चेथरा बधाऊँगी।' बहुत बड़ी आशा और विश्वास के साथ वह गिरह बाँध रही है। ... दो चीथेड़े।" (मैला आँचल, पृष्ठ 304)

मैला आँचल के ये दोनों प्रसंग स्वतंत्रता प्राप्ति के सत्तर वर्ष पश्चात् भी अपना गूढ़ अर्थ व्यंजित कर रहे हैं। गांधी जी की समाधि स्वतंत्र भारत का 'चेथरिया पीर' है। वहाँ जो 'टीम' पूजा, अर्चना और प्रार्थना करने जाती है उसकी मनोकामना अवश्य पूर्ण होती है। पूर्ण स्वराज आया या नहीं किंतु गांधी जी, उनकी खादी ने 'पूर्ण सत्ता' अवश्य प्रदान की। अंतर केवल इतना है आज के 'गांधी' सिद्धांत के प्रतिपादक जीवित हैं उनकी बावनदास की तरह हत्या तो नहीं हुई किंतु उनके सिद्धांत की हत्या कर दी गई है। मैला आँचल की पंक्ति गांधी का 'चेथरिया पीर' बन जाना और वर्तमान के गांधावादी मूल्यों और सिद्धांतों का स्मरण अवश्य दिलाती है– "डमरू बजा के रघुपति राघव गाते रहो।" लेखक ने अपनी सूक्ष्म व्यंग्यात्मक शैली में इस उपन्यास की संरचना की है जिसमें प्रवाह भी है और गति भी। समाज और राजनीति का आंचलिक उपन्यास ही नहीं अपितु राजनीतिक और कालजयी उपन्यास सिद्ध हुआ है।

– एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, हिंदू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

❑❑❑

भूमंडलीकृत भारतीय समाज में वृद्धों की स्थितियाँ (समकालीन कहानियों के आलोक में)

सविता धामा

भूमंडलीकरण ने भारतीय समाज को एक आर्थिक विस्तारवादी नीति के तहत भारत को मुक्त बाजार की नियति की तरह मोड़ा। इस आर्थिक विस्तार के अपने–अपने लाभ और नुकसान भारतीय समाज में दृष्टिगोचर होते हैं इसका प्रभाव भारतीय संस्कृति पर इस तरह से पड़ा है कि समाज के मूल्यों का क्षरण निरंतर जारी है। ... "बहुत प्रारंभिक समय से ही पूँजीवाद के तर्क में सकल विश्व बाज़ार की ओर प्रशासन निहित रहा है और ऐसा बाज़ार बनाने में उपनिवेशवाद ने मुख्य भूमिका निभाई है। बहरहाल, पंद्रहवीं शती से लेकर जब यह सब शुरू हुआ, अठारहवीं शती के अंत तक वास्तविक उपनिवेशवाद की प्रक्रिया मुख्यतः अमरीका महाद्वीपों में केंद्रित रही और उन्नीसवीं सदी में ही एशिया और अफ्रीका का बड़ी तीव्रता से औपनिवेशीकरण हुआ और दुनिया दो हिस्सों में बँट गई, जिसमें एक ओर विकसित पश्चिम के औद्योगिक क्षेत्र थे और दूसरी ओर गैर–औद्योगिक उपनिवेशों और आश्रित राज्यों के विशाल पिछड़े इलाके थे।"[1]

भूमंडलीकरण ने साहित्य की साहित्यिकता को एकांतिकता में बदल दिया है। आज पूरी सामूहिकता और वैश्विकता के बावजूद मनुष्य अकेला है। भूमंडलीकरण ने समाज और परिवार की सामूहिकता को एकाकीपन में बदल दिया है। भूमंडलीकरण की बाज़ारवादी प्रवृत्ति ने परिवार के सबसे अनुपयोगी सदस्य के रूप में वृद्धों को मान लिया है। हालाँकि अपवाद रूप में इसी बाज़ारवादी प्रवृत्ति में अमिताभ बच्चन जैसे वृद्ध को इसी भूमंडलीकृत समाज ने सर–आँखों पर बिठाया है। वृद्धावस्था इस बाज़ारवादी समाज में एक अनुपयोगी अवस्था भर रह गई है, जिसे भारतीय परिवार अनमने ढंग से ढो रहा है। महानगरों से लेकर ग्रामीण समाज के परिवारों में वृद्धों की अजीबो–गरीब स्थिति हैं। अपमान, एकाकीपन, संत्रास झेलने वाला वृद्ध इस समय की क्रूर सच्चाई है। मौजूदा सदी ने स्वतंत्र रूप से विभिन्न, साहित्यिक विमर्श के लिए स्थान मुहैया करवाया। ध्यातव्य है कि हमारे समय का प्रमुख विमर्श उत्तर आधुनिकता की धुरी पर खड़ा है। इसी से संरचनावाद, उत्तर–संरचनावाद, दलित स्त्री अस्मितापरक विमर्श भी जुड़े हैं, जो आज स्वतंत्र रूप से साहित्यिक विमर्श बन चुके हैं। लेकिन वृद्धावस्था–विमर्श पर संवेदनापूर्ण कार्य अभी भी नहीं हो रहा है।

बाज़ारवादी संस्कृति में वृद्धों के लिए कोई भूमिका तैयार नहीं हो पाई। अपने परिवार से ही उनको खाने–पीने के प्रति असुरक्षा मिलती है। इसी असुरक्षा ने वृद्धों कें स्वभाव में 'बूढ़ी काकी' (प्रेमचंद की कहानी) से नितांत अलग स्थितियों को जन्म दिया गया है। "घर छोड़ने या छुड़ाने के लिए रोटी या ऐसी किसी कीमती थाली के बहाने के अलावा भी कितनी ही 'बक–झक' और सारे

दिन झींकते रहने के बहुत सारे ऐसे कारण इकट्ठा हो जाते हैं जो अक्सर बुढ़ापे को भी जरूरत से ज्यादा ही जिद्दी और चिड़चिड़ा बना देते हैं। ऐसी स्थिति में कभी–कभी वृद्ध भी केवल अपनी अहमियत जताने के लिए उग्र हो जाते हैं और झगड़े पर उतारू होकर ताने कसने के अलावा सीधे मुँह बात करते ही नहीं। यहाँ तक कि हर बात का उल्टा ही अर्थ निकालने की उनकी आदत हो जाती है।"[2]

आज के भूमंडलीकृत समाज का चित्रण चित्रा मुद्गल की कहानी 'गेंद' में सटीक रूप से किया गया है। चित्रा मुद्गल ने अपनी कहानी 'गेंद' में वृद्धों के जीवन में आ रही उपेक्षा से उत्पन्न पीड़ा और विपदाओं के साथ–साथ बच्चों के प्रति माता–पिता की लापरवाही का भी चित्रण किया है। यह कहानी समकालीन दौर में वृद्ध–विमर्श की सशक्त बानगी है। 'गेंद' कहानी नौकरी से रिटायर्ड सचदेवा के जीवन की पीड़ा को प्रस्तुत करती है। सचदेवा नौकरी से रिटायर एक वृद्ध पिता है, जिनका पुत्र विनय नौकरी के लिए इंग्लैंड चला गया और वहीं शादी करके बस गया। पिता को विनय ने भारत में ही वृद्धाश्रम में भेज दिया। वृद्धाश्रम में बिस्तर से लगे बुजुर्गों की टट्टी पेशाब कराने वाले मनेसुर का यह कहना कि "एक तो कब्र में पाँव दिए इन बूढ़े–बूढ़ियों को माई–बाप कबूल कर तन–मन से इनकी सेवा टहल करें, ऊपर से इनका भस्मासुरी क्रोध झेलें। कोई पूछे इन्हें, तुम्हारे अपने जाए तो तुम्हारा हगना–मूतना उठाने को राजी नहीं हैं। जो उठा रहे उन्हीं को रेतने को तुम तरिया रहें?"[3] यह इस बाज़ारवादी समय का सच है।

'गेंद' कहानी का पात्र विनय विदेश में जाकर बस गया है। उसकी पत्नी डॉक्टर है, बावजूद इसके वह अपने ससुर सचदेवा की बीमारियों का इलाज तक नहीं करती। अपनी गंभीर बीमारी की अवस्था में सचदेवा जी को अपनी पत्नी की याद आती है, "राजूल जिंदा थी तो उन्हें कभी अपनी फ्रिक नहीं करनी पड़ी नित नए नुस्खे घुट–घुट कर पिलाती रही। करेले का रस, मेथी का पानी, जामुन की गुठली की फंकी और न जाने क्या–क्या"[4] सचदेवा की यह स्मृति और बेबसी उनके बेटों द्वारा उनकी उपेक्षा और संवेदनहीनता को दर्शाता है।

कहानी में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि इस भूमंडलीकृत समाज में पारिवारिक और सामाजिक मूल्य जा रहे हैं। परिवार में वृद्ध माता–पिता का अपने ही बच्चों द्वारा हो रही उपेक्षा चिंता का विषय है। परिवार और समाज में वृद्ध एवं बच्चों के प्रति मानवीय संवेदना खत्म होती जा रही है।

मनीषा कुलश्रेष्ठ की 'प्रेत कामना' कहानी में मुंबई के सी बीच पर बने तीन कमरों के बड़े फ्लैट में रिटायर्ड विधुर पिता टूटी दीवार से झरते सीमेंट सा भुर–भुरा जीवन व्यतीत कर रहे हैं और बेटा महीनों बाद कभी खबर लेने आ जाता है। कभी वे. जे.एन.यू. में एंथ्रोपोलॉजी के विभागाध्यक्ष थे। विदेश के चक्कर लगाते रहते थे और जामिया जैसी रिसर्च स्कॉलर विद्वता के कारण उन पर मरती थी। आज बेटा इसी शहर में अलग रहता है। बेटी कोलकाता में है। पत्नी की मृत्यु हो चुकी है। उनके इर्द–गिर्द न समाज है, न परिवार, न प्रतिष्ठा। ऐसे में अमरीका से प्रवासी सप्ताह के लिए पुरानी छात्रा अणिमा लौटती है और डॉ. पंत के प्रेत जीवन में कामनाएँ ऐसी लहराती हैं कि दोनों में शारीरिक संबंध कायम हो जाता है। 'प्रेत कामना' कहानी में वृद्ध के अकेलेपन का ही प्रकारांतर से प्रतिफलन है। पुत्र को जब अपने पिता की इस स्थिति का पता चलता है तो वह नैतिकता, लोक–लाज की दुहाई देकर पिता को कोसता है। यह भी बदली भूमंडलीकृत समाज का एक सच है, जहाँ वृद्ध सम्मान और स्नेह पाने के लिए लालायित है लेकिन उन्हें वह स्नेह और सम्मान घर के सदस्यों से नहीं मिलता।

'एक बूढ़े की मौत' कहानी में शशि भूषण द्विवेदी में नायक वृद्ध है, हालाँकि यह कहानी 'वृद्ध विमर्श' के किसी कोण को छूती नज़र नहीं आती फिर मौजूदा दौर में वृद्ध को कहानी का नायक बनाकर उसके इर्द–गिर्द कथानक को बुनना, आज के समय में वृद्धों की बदलती स्थिति को रेखांकित करता है। चूँकि कहानीकार शशि भूषण

द्विवेदी की कहानियों में उत्तर–आधुनिक चेतना प्रकारांतर से विद्यमान रहती है, ऐसे में उनकी कहानी 'एक बूढ़े की मौत' पर वृद्ध–विर्मश के प्रसंग में चर्चा अप्रासंगिक नहीं है। प्रस्तुत कहानी में शशि भूषण द्विवेदी ने वृद्ध व्यक्ति की अकुलाहट को अभिव्यक्ति प्रदान करने का प्रयास किया है। इस कहानी का मुख्य पात्र जानकी बाबू अपने आपको जब भी अकेला महसूस करते हैं तब वे अपने इस सूनेपन को मिटाने के लिए बाहर घूमने चले जाया करते। कहानी के आरंभ में ही कहानीकार जानकी बाबू के माध्यम से कहलाता है, "....उस फूल को देखो और मेरी बातों को ध्यान से सुनो... ।"[5] दरअसल यह वुद्ध व्यक्ति की अकेलेपन की अकुलाहट है जो फूल को मृत्यु के पयार्य के रूप में चिह्नित करता है।

'बुढ़वा मंगल' कहानी में रवींद्र कालिया ने भूमंडलीकरण समाज में आए वृद्ध के एकाकीपन और अलगाव को बहुत संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत किया है। इस कहानी में अपने बेटे के बुलाने पर जब वृद्ध को अपने जीवन साथी की याद आती है– "उसे अब लगा कि अब वह कोल्हू के बैल की तरह जीवन बिता रहा है। इस आरामदेह गाड़ी में उसे अपनी बुढ़िया की बड़ी तेज याद आई। वह साथ में होती तो कितना खुश होती।"[6] वृद्ध मन की यह अकुलाहट अकेलेपन में अपनी जीवन संगिनी के साथ अपनी मनोदशा को अभिव्यक्त करने के लिए ढूँढता है ताकि अपने मन की बात बता सके। लेकिन अपने सुख–दुख आदि की भरपाई अपनी संगिनी के साथ न कर पाने के कारण यह एकांत मन व्याकुल है।

जया जादवानी की कहानी 'कोई नहीं दूसरा' कहानी में वृद्ध अपने आस–पास के लोगों से घिरा होकर पूरी भीड़ में अकेला रहता है। हालाँकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है लेकिन मौजूदा दौर की सामाजिकी ने ही वृद्ध को अकेला कर दिया है। 'कोई नहीं दूसरा' की वृद्धा अकेलेपन में योग करती है। विपस्सना करती है। इस विपस्सना के रूपक के जरिए वृद्ध के अकेलेपन की नियति को दर्शाया गया है। "क्या विपस्सना से कुछ हासिल हो सकता है? यह प्रश्न उसके मन में उठता है जो पहले से विपस्सना करती आ रही होती है पर एकदम अकेलापन उसे दूसरे छोर पर ले जाता है। अगर कुछ मिल जाता है तो वह औरत बीस बार क्यों आई? यह कारण लगता है जैसे यह उसकी मंजिल नहीं है। उसे अजीब लगता है कि वह क्योंकर केंद्र आई। उसे समय काटना मुश्किल हो जाता है। देखिए– 'उसने घड़ी देखी... सात बजकर पाँच मिनट... नज़रे फिर स्क्रीन पर... युग बाद उसने फिर देखा, सात दस... फिर स्क्रीन पर गुरु जी... दो युग बाद फिर घड़ी देखा सात पंद्रह... हे भगवान समय को इतना धीमे गुजरते वह पहली बार देखती है?"[7] वैश्वीकरण ने सामाजिकी के केंद्र को भी एक प्रोडक्ट और बाज़ार में बदल दिया लेकिन वृद्ध का अकेलापन इस 'कमोडिटी सामाजिकी' में 'कोई नहीं दूसरा' सरीखा ही है।

मौजूदा दौर में संपत्ति का बँटवारा भी एक प्रकार की त्रासदी को जन्म दे रहा है। उमाशंकर चौधरी की कहानी 'अयोध्या बाबू सनक गए' में एक सूक्ति 'अब न देने पर रोती है।'[8] इस कहानी पर टिप्पणी करते हुए काशीनाथ सिंह लिखते हैं– "अयोध्या बाबू सनक गए है (उमा शंकर चौधरी), में पिता से माँ की मौत माँगता बेटा है और पिता मूक है। माँ बेटे के लिए कुरबान होती है। यह सच्चाई है कि बेटा चाहे कैसा भी क्यों न हो वे उसका भला ही चाहते हैं, लेकिन बेटे का क्या कर्तव्य है? इस पर वे नहीं सोच रहे हैं? न सोचने की जहमत उठा रहे हैं। कहानी में बेटे की माँग सुनकर माँ–पिता चुप हो जाते हैं। माँ मरकर बेटे की बेरोजगारी दूर करती है तो पिता बर्दाश्त नहीं कर पाने से पागल हो जाते हैं। कहानी की खूबी है कि माँ हमेशा के लिए मरती है पर उसके बाद पिता के हालात और उसकी दशा बताती है कि वह फिर कभी बोल नहीं पाता है। बाप पागल कहलाकर जीता है। अर्थात् माँ शरीर से मरती है तो पिता केवल शरीर से जिंदा है विचारों से वे भी मर चुके हैं। पिता खाद बन जाते हैं। बेटा केवल फसल

काटता है और खेत को बंजर करता जाता है। जैसे बेटे की बात सुनकर बाप सनक जाते हैं। फिर अयोध्या बाबू वहीं नहीं रह जाते हैं।"[9]

भूमंडलीकरण की आर्थिक आँधी ने गाँवों के साथ–साथ शहरों में भी वृद्धों को आर्थिक और सामाजिक रूप से असुरक्षा की भावना को भर दिया है। मृदुला गर्ग ने अपनी कहानी 'छत पर दस्तक' में वृद्धों के शहरी वातावरण से उत्पन्न पराएपन और असुरक्षा की भावना को प्रस्तुत किया है–

उसने दफ्तर जाते सुधीर का रास्ता रोक लिया था

–सुन एक बात बतला, मान लो घर में आग लग जाए... ।

–स्मोक अलार्म है, 'उसने उकता कर कहा था।

–बात सुन पूरी। अगर कोई घर में घुस आए... ।

–और जो कोई जबदस्ती भीतर घुसकर मुझे मार दे तो?

"अब उसमें कोई क्या कर सकता है, उसने कहा और बाहर चला गया। यानी नहीं सुनेगा। कोई कुछ नहीं सुनेगा। उन्हें दिखलाई देता है पर वे देखते नहीं। वे सुन सकते हैं पर सुनते नहीं।"[10] नलिनी (वृद्ध) की इस दशा का मुख्य कारण शहरी सभ्यता में निहित असुरक्षा की भावना है।

भूमंडलीकृत समाज में समय की दुहाई देकर वृद्ध को परिवार में ही अजनबी बना दिया गया है। वृद्ध उत्तर–आधुनिकता की इस चकाचौंध में अपने को ठगा हुआ महसूस करते हैं, क्योंकि जिस बात को वे कहते हैं उसे यह कहकर नकार दिया जाता है कि यह तो पुराने जमाने की बात है। आज का नया जमाना इन सब बातों को नहीं मानता है। युवा पीढ़ी आज के समय में वृद्धों को अपने से कमतर आँकता है और समय–समय इसका अहसास भी कराता रहता है। आज की पीढ़ी संबंधों से अधिक धन को महत्व देती है। "वृद्धावस्था में घोर कठिनाइयों और बेबसी भुगतने का भय सदा से रहा है। यह और बात है कि अतीत में हमारे देश के संयुक्त परिवार के लोगों ने घरों के खुले विशाल आँगनों में बैठकर इन समस्याओं को समझा था। इस पर गहराई से सोच–विचार भी किया था और इसका समाधान करने के लिए तरह–तरह के उपाय भी दिए थे। उनके बनाए हुए नियम ही थे कि उन दिनों समाज और बिरादरी के चलते अपने घर के वृद्धों का अपमान या अवहेलना करने का साहस नई पीढ़ी या परिवार की बहुएँ नहीं कर पाती थीं। बिरादरी और समाज की लाज–शर्म ने इन कठिनाइयों को बड़ी सीमा तक कम किया था। तब किसी भी वृद्ध को आज के असहाय वृद्धों की तरह घर की दहलीज से बाहर सड़क पर खड़े होने की जरूरत नहीं पड़ती थी।"[11]

भूमंडलीकृत समाज में वृद्धों की स्थिति, उनकी मानसिकता और बदलते दौर में वृद्धों की भूमिका को समकालीन कथाकारों ने बड़ी संवेदनशीलता से सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। 1990 ई. के बाद भारत के ग्रामीण और शहरी समाज की पारिवारिक संरचना में वैचारिक और भौतिक बदलाव बड़ी तेजी से दृष्टिगोचर हुए। इस बदलाव की संरचना को समकालीन कथाकारों ने बहुत सतर्कता और सहज लेखनी से प्रभावी रूप में प्रस्तुत किया है।[12]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आलोचना, अंक–6, जुलाई–सितंबर, 2001 (एजाज अहमद)

2. काश वे दिन लौट पाते, विमला लाल, वृद्धावस्था का सच, पृष्ठ 64, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019

3. कहानी संकलन, सं. डॉ. बालाजी मुरे, डॉ. व्यंकट पाटील, पृष्ठ 69, दिव्य डिस्ट्रिब्यूटर्स, कानपुर

4. कहानी संकलन, सं. डॉ. बालाजी मुरे, डॉ. व्यंकट पाटील, पृष्ठ 66, दिव्य डिस्ट्रिब्यूटर्स, कानपुर

5. एक बूढ़े की गीत, hindisamay.com. ISSN-2394-6697

6. बड़े बुजुर्ग, सं. प्रियदर्शन, पृष्ठ 34

7. वागार्थ, दिसंबर 2013, पृष्ठ 44
8. अयोध्या बाबू सनक गए, उमा शंकर चौधरी
9. घर का जोगी जोगड़ा, पृष्ठ 97–98, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
10. बड़े बुर्जुग, सं. प्रियदर्शन, पृष्ठ 34
11. संगति, विसंगति (कहानी–संग्रह) भाग–2, मृदुला गर्ग, पृष्ठ 597, नैशनल पेपर बुक्स, 2004
12. कहानी वृद्धावस्था की, विमला लाल, वृद्धावस्था का सच, पृष्ठ 12, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली

– म. सं. 55, द्वितीय तल, गली नं. 19, ए–2 ब्लॉक, पश्चिम संत नगर, बुराड़ी, दिल्ली–110084

❑❑❑

प्रकृति प्रेमियों का स्वर्ग–कूर्ग

अनीता शर्मा 'स्नेही'

प्रकृति ने अपनी विपुल प्राकृतिक संपदा का एक बहुत बड़ा भाग भारत को मुक्त हस्त होकर प्रदान किया है। भारत के विभिन्न राज्यों में अनेक नयनाभिराम प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर स्थल विद्यमान हैं। इन्हीं में से एक है– दक्षिणी पश्चिमी कर्नाटक की पहाड़ियों में स्थित 'कोडागू' जो 'कूर्ग' के नाम से अधिक प्रचलित है। 1956 में कर्नाटक में विलय से पूर्व कोडागू अपने आप में राज्य था। कोडागू मूल रूप से कोडाईमालेनाडू कहलाता था। जिसका अर्थ है 'दुर्गम पहाड़ियों पर घना जंगल'। आजकल कूर्ग कहलाने वाले कोडागू को 'भारत का स्कॉटलैंड' भी कहा जाता है। मडिकेरी इसका मुख्यालय है।

कर्नाटक की राजधानी बैंगलुरू से 260 किलोमीटर, मैसूर से 120 किलोमीटर की दूरी पर स्थित मडिकेरी भारत के सुंदरतम पर्वतीय पर्यटन स्थलों में से एक है। यूँ तो यह सभी प्रकृति प्रेमियों के लिए एक आदर्श सैरगाह है लेकिन अपने वैवाहिक जीवन के प्रारंभिक दिन प्रकृति की गोद में शांति और सुकून से बिताने की चाहना रखने वाले नवयुगलों के लिए मानो यह स्वर्ग ही है। कर्नाटक की खूबसूरत प्राकृतिक स्थलियों कूर्ग, ऊटी, कुन्नूर आदि के बारे में पुस्तकों व समाचार पत्रों में खूब पढ़ा था। इनके अवलोकन की इच्छा लहरें, मन सागर में अक्सर ठाठें मारा करती थीं। कुछ वर्ष पूर्व छोटे पुत्र प्रत्यूष की नियुक्ति बैंगलुरू में हुई तो वहाँ जाने के अवसर मिलने लगे। उपरोक्त सभी दर्शनीय स्थल बैंगलुरू से अधिक दूर नहीं है। वहाँ प्रवास के दौरान एक–एक कर प्रकृति के इन बेशकीमती मोतियों को चुनने का फैसला अंततः हम दोनों पति–पत्नी ने अपने पुत्र के साथ कर ही लिया था।

उत्तरी भारत में जून के महीने में अन्य जनों के साथ–साथ हम भी लू के थपेड़े खाकर बेहाल थे। सो पहुँच गए बैंगलुरू। जहाँ का सुहावना मौसम सभी को आकर्षित करता है। ज़रा सी गर्मी हुई नहीं कि बादल अपना डेरा जमा अपनी फुहारों से मौसम को खुशगवार बना देने में कोई कोर कसर नहीं उठा रखते। दो–तीन दिन बैंगलुरू में बिताने के बाद हमने सबसे पहले कूर्ग की सौंदर्य सरिता में स्नान करने का फैसला कर लिया। सोने पर सुहागा यह रहा कि हमारे पुत्र को भी उन दिनों का अवकाश मिल गया और वह भी हमारे साथ चलने के लिए तैयार हो गया।

प्रातः 7:00 बजे हमने कर्नाटक परिवहन की एक आरामदायक बस से अपनी यात्रा का श्रीगणेश किया। टिकटों का आरक्षण हमने पहले ही करा लिया था। हमने यह भी तय कर लिया था कि हम किसी बड़े होटल में न रह कर कॉफी बागान में स्थित आवास में 'होम स्टे' करेंगे ताकि हम प्रकृति को नज़दीक से महसूस कर सकें। साफ–सुथरी सड़क पर बस एक जगह पर रुकी। जोरों की भूख लग आई थी। सड़क के किनारे बने अल्पाहारगृह में दक्षिणी भारतीय व्यंजनों की सुगंध ने भूख को और बढ़ा दिया था। हमने वहाँ भरपेट इडली और वड़े खाए। सांभर का स्वाद कुछ

अलग था लेकिन ज़ायकेदार था। वहाँ महिलाएँ खाना परोस रही थीं।

पाँच घंटे की यात्रा के बाद मैदानी इलाका लगभग समाप्त हो चला था। पहाड़ी क्षेत्र शुरू हो गया था वहाँ के पहाड़ उत्तर भारतीय पहाड़ों की तरह आकाश को नहीं छूते बल्कि वे काफी जेंटल स्लोप लिए होते हैं। ठंडी हवा के झोंके मानो हमारा स्वागत कर रहे थे। आकाश में बादल छाए हुए थे। मडिकेरी पहुँचते–पहुँचते आकाश मेघाछन्न हो चला था। मडिकेरी का जादू सर पर चढ़ने लगा था। बस स्टैंड पर उतरते ही टैक्सी वालों ने हमें घेर लिया। सभी अपनी–अपनी खासियतों का बखान कर रहे थे। अंततः हमने एक बुजुर्ग टैक्सी चालक बाशा को तय कर लिया। उसने हमें अगले दो दिनों में मडिकेरी व आसपास के दर्शनीय स्थलों का भ्रमण कराने का वायदा किया।

हम बाशा की टैक्सी में बैठ अपने पूर्व निर्धारित रहने के स्थान 'कैपिटल विलेज रिजॉर्ट' की ओर चल पड़े। शहर पीछे छूटता जा रहा था। हरीतिमा की चादर ओढ़े पहाड़ियों के घुमावदार रास्तों पर हम बढ़ते जा रहे थे। दूर तक घने जंगल को देखकर एक बारगी तो यह लगा कि चालक कहीं रास्ता तो नहीं भूल गया। आखिर 20–25 मिनट के बाद हम कॉफी के बागानों से घिरे 'कैपिटल विलेज रिजॉर्ट' पहुँच गए। एक ओर सुंदर झील तो दूसरी ओर घाटी, उसमें छोटे–छोटे खेत और बीच में 'कैपिटल विलेज रिज़ॉर्ट'। बड़ा ही सुंदर दृश्य था। जैसे ही हम टैक्सी से उतरे, मधुर मुस्कान ओढ़े एक दंपति ने हमारा स्वागत किया। उन्हींके द्वारा परिचालित यह रिज़ॉर्ट होम स्टे का ही दूसरा प्रतिरूप था। रिसेप्शन अत्यंत सुरुचिपूर्ण ढंग से लकड़ी की प्रकृति प्रदत कलाकृतियों से सजाया गया था। रिज़ॉर्ट में आठ कमरे थे। एक बड़े से कमरे में हमारा सामान रख दिया गया था। कमरे की छत लकड़ी की शहतीरों से बनी थी। ऊँची छत ब्रिटिश काल की याद दिला रही थी। कमरे के दूसरी ओर एक बालकनी थी जहाँ एक मेज और चार पाँच कुर्सियाँ रखी थीं। हम थक गए थे। बाशा को अगले दिन आने को कह हमने रिज़ॉर्ट के स्टाफ से चाय भिजवाने का आग्रह किया। तरोताजा होकर हम कुर्सियों पर बैठ गए। चाय आ गई। फुहारों का संगीत तनिक शांत हो चला था। साथ लाई नमकीन भुजिया के साथ गरमा–गरम चाय सुड़कते हुए सामने वाली पहाड़ियों पर हरियाली को निहारना और प्रकृति को नज़दीक से महसूस करने का अहसास अलग तरह का आत्मिक संतोष प्रदान कर रहा था। आज हम कहीं और नहीं जाना चाहते थे। प्राकृतिक सान्निध्य का वहीं रहकर भरपूर आनंद उठाना चाहते थे।

चाय–पान कर हम लोगों ने शेष समय रिज़ॉर्ट के आसपास घूमने में बिताया। निकटवर्ती झील के किनारे–किनारे खिले पुष्प वैविध्य को देखकर हम मंत्रमुग्ध थे। कई फलदार वृक्ष और उन पर मंडराते पक्षी भी अनुपम सौंदर्य की सृष्टि कर रहे थे। पहाड़ी ढलानों पर बागानों की हरीतिमा प्राकृतिक सौंदर्य को अपना अलग ही वैशिष्ट्य प्रदान कर रही थी। बारिश की मोतिल बूंदों से नहाई हरियाली मानो और गहरा गई थी। प्रकृति की इस जादुई लीला को हम देर तक दम साधे निहारते रहे।

सांझ घिरने लगी थी। हम भी लौट चले। रात का खाना हमने कमरे में ही लाने को कह दिया था। चावल की रोटियाँ जिन्हें अक्की रोटी भी कहते हैं परोसी गई थी। हमने पहली बार खाई पर अच्छी लगी। खाना खाने के बाद कुछ देर के लिए हम बाहर टहलने लगे। झींगुरों और कीट पतंगों की आवाजें पहले धीरे–धीरे आने लगी फिर असामान्य रूप से बढ़ गईं। रात्रि की नीरवता को भंग करती ये आवाजें एक रहस्यमयी रोमांच की सृष्टि कर रही थीं। थकावट हावी होने लगी थी। जल्दी ही नींद ने हमें आ घेरा।

अगले दिन हमें मडिकेरी और आसपास के दर्शनीय स्थलों की यात्रा करनी थी। हम जल्दी ही उठ गए और तैयार होकर नाश्ते के लिए डायनिंग हॉल में आ बैठे। हल्की बूंदा–बांदी हो रही थी। हवा भी सामान्य से तेज़ गति से चल रही थी। डाइनिंग हॉल की पारदर्शी शीशे की खिड़कियों से दिखते हवा में लहराते पेड़ अलग ही समा बाँध रहे थे। नाश्ते में हमें उपमा और केसरी भात (एक प्रकार का मीठा केसरी हलवा) परोसा गया। नाश्ता कर ही रहे थे कि बाशा का स्वर सुनाई दिया।

हमारी जान में जान आई। नाश्ता कर हम चलने को तैयार थे। हम आकाश की ओर देख ही रहे थे कि हमारे मेज़बान ने हमारी परेशानी भाँपकर एक हरे और सफेद रंग का बड़ा सा छाता हमारे हाथ में थमा दिया। हमने आँखों ही आँखों में उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की। बाशा की टैक्सी में बैठकर कॉफी एस्टेट से होते हुए हम मडिकेरी दर्शन के लिए चल पड़े। मन खुशी से सराबोर था। इससे पहले कि हम आज के अपने पहले गंतव्य राजा की सीट पर पहुँच पाते, मडिकेरी के बारे में जानने की उत्सुकता बलवती हो उठी। पश्चिमी घाट की खूबसूरत पहाड़ियों व उसकी ढलानों पर बसा प्रसिद्ध मेडिकेरी शहर कूर्ग (कोडागू जिले) के तीन तालुकों (मडिकेरी, सोमवारपेट, विराजपेट) में से एक है और जिला मुख्यालय भी। नयनाभिराम कूर्ग घाटी के इस महत्वपूर्ण छोटे पर्वतीय शहर में ताजी स्वच्छ हवा को सैलानी अपनी साँसों में महसूस कर सकते हैं। कॉफी, चाय के बागानों, इलायची व शहद के लिए प्रसिद्ध मडिकेरी ने एक शताब्दी पूर्व अंग्रेजों को भी अपनी ओर आकृष्ट किया था और उन्होंने ही इसे 'भारत के स्कॉटलैंड' की संज्ञा दी थी। मडिकेरी का मूल नाम मेरकारा था जिसकी स्थापना हालेरी वंश के राजकुमार मुड्डूराजा ने सन् 1681 में की थी और उनके नाम पर इसका नामकरण मुड्डूराजानाकेरी किया गया। कालांतर में स्थानीय इसे मडिकेरी कहने लगे। अंग्रेज़ इसे मेरकारा भी कहते थे। हम इतिहास में खोए हुए थे कि 'राजा की सीट' आ गई।

राजा सीट

टिकट लेकर हमने राजा परिसर में प्रवेश किया। वस्तुतः यह एक खूबसूरत उद्यान है। वन्य पशुओं की कलाकृतियों से सुसज्जित यह उद्यान अनूठा है। एक पेड़ से लिपटे अजगर की कलाकृति तो एकदम सजीव जान पड़ रही थी। कहा जाता है कोडागू के राजा यहाँ फुर्सत के क्षणों में बैठकर कूर्ग घाटी के सौंदर्य को घंटों निहारा करते थे। अगर मौसम साफ हो तो हरी–भरी कूर्ग घाटी और पहाड़ियों का अप्रतिम सौंदर्य देखते ही बनता है। हल्की बूंदा–बांदी अभी जारी थी। हमने भी अपना किंग साइज रंग बिरंगा छाता खोलकर इस ऐतिहासिक उद्यान का एक चक्कर लगाया और फिर पहुँच गए घाटी का सौंदर्य निहारने। सचमुच बड़े ही आनंद के क्षण थे। बारिश के बावजूद देर तक हम घाटी के सौंदर्य को अपलक निहारते रहे। आर्कनुमा व्यू प्वाइंट से बादलों को पहाड़ियों से अठखेलियाँ करते देखना सुखद लग रहा था। यहाँ की खूबसूरती का कोई जवाब नहीं। भले ही घाटी की ओर तेज़ हवाएँ हमारी छतरी को उड़ा ले जाने को उतारू थी पर गालों को सहलाता उनका जादुई स्नेहिल स्पर्श एक अव्यक्त संतोष प्रदान कर रहा था। कहते हैं यहाँ सूर्यास्त की छटा निराली होती है। समयाभाव के कारण हम सूर्यास्त तो नहीं देख पाए और चल पड़े अगले पड़ाव की ओर।

राजा का मकबरा

राजा सीट उद्यान से दस–पंद्रह मिनट की यात्रा के बाद हम राजा का मकबरा परिसर में जा पहुँचे। कोडावा, कोडागू क्षेत्र के मूल निवासी थे। कोडागू के राजाओं और उनके संबंधियों के मकबरे इसी परिसर में स्थित हैं। मकबरों के चारों तरफ सुंदर उद्यान विकसित किए गए हैं। राजा लिंगाराज और उनकी पत्नी देवाम्माजी के मकबरे का निर्माण 1808 व राजा विराराजेंद्र और उनकी पत्नी महादेवाम्मा जी के मकबरों का निर्माण 1821 में किया गया था। भारतीय इस्लामिक पद्धति से बनाए वर्गाकार मकबरे शिल्प कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। दोनों किनारों पर बनी छतरियाँ और उन पर बनी गायों की मूर्तियाँ भी दर्शनीय हैं। पर्यटकों की नगण्यप्रायः संख्या देखकर मन को थोड़ा दुख अवश्य हुआ। कोडावा राजाओं की कब्रों को नमन कर हम उद्यान में घूम ही रहे थे कि हमारी नज़र एक विलक्षण जोड़ी पर पड़ी। एक कुत्ता और बिल्ली जिन्हें एक दूसरे का दुश्मन माना जाता है,परस्पर अठखेलियाँ कर रहे थे। हमने मकबरों के साथ–साथ इस दुर्लभ दृश्य को भी अपने कैमरे में कैद कर लिया। पशुओं के इस अनूठे प्रेमबंधन को देख हम सोच रहे थे कि काश आज का मनुष्य भी पशुओं से कुछ सीख ले पाता। कोडागू के राजाओं और रानियों के मकबरे के दर्शन के बाद हमारा अगला गंतव्य था– एबे फॉल (जलप्रपात)।

एबे फाल (जलप्रपात)

गाड़ी मडिकेरी को पीछे छोड़ती एबे जलप्रपात की ओर बढ़ रही थी। अभी शहर में ही थे कि बाशा ने सड़क मार्ग पर स्थित एक सैन्य विभूति की मूर्ति की ओर इशारा किया। अरे! यह क्या– यह तो जनरल करियप्पा की प्रतिमा थी। हमने तुरंत गाड़ी रुकवाई। कुर्गी मिट्टी में जन्मे भारत के महान सेनानायक और प्रथम भारतीय थलसेना अध्यक्ष फील्ड मार्शल जनरल करियप्पा की मूर्ति को नमन किया और एक तस्वीर भी उतारी। कूर्ग ने देश के दूसरे फील्ड मार्शल जनरल करियप्पा के अतिरिक्त अनेक सैनिक अफसर व जवान देश को दिए हैं। इस महान सेनानायक को स्मरण करते हुए वापस गाड़ी में आ बैठे और चल पड़े एबे जलप्रपात की ओर। मार्ग में कॉफी के बागानों की छटा भावविभोर किए दे रही थी। एबे जलप्रपात मडिकेरी से 8 किलोमीटर की दूरी पर कॉफी बागानों और इलायची के पेड़ों के बीचों–बीच स्थित है।

लगभग आधे घंटे बाद हम जलप्रपात पहुँच गए थे। गाड़ी लगभग 1 किलोमीटर पहले ही खड़ी करनी पड़ती है। गाड़ी से उतरते ही हमने नारियल पानी पिया और नारियल के सुस्वादु नरम–नरम गूदे का आनंद भी लिया। पार्किंग स्थल से जलप्रपात तक का लगभग 1 किलोमीटर का रास्ता कॉफी बागानों व लंबे–ऊँचे पेड़ों के बीच से होकर जाता है। जाती बार उतराई होने के कारण आसानी से जाया जाता है। थोड़ी–थोड़ी दूर पर विश्राम के लिए सीटें व कूड़ा निस्तारण के लिए डस्टबिन भी रखे हुए हैं। पर्यटकों का आवागमन निरंतर जारी था। एबे जलप्रपात पर पहुँचते ही सुंदर नज़ारा देखने को मिला। जलप्रपात का 50 फीट से भी अधिक ऊँचाई से गिरता पानी यद्यपि बरसात के दिनों की भाँति गर्जना नहीं कर रहा था फिर भी चट्टानों को काटकर गिरती विस्तृत जलधाराएँ अनुपम सौंदर्य की सृष्टि कर रही थीं। सभी पर्यटक फोटो खींचने खिंचवाने और यहाँ की स्मृति को स्थायी रूप देने में लगे हुए थे। कई तो सेल्फी लेने में होड़ लगा रहे थे। हम तीनों भी वहाँ चित्र खिंचवाने का लोभ संवरण नहीं कर पाए। पहले झरने के सामने लोहे का एक पुल बना था जिस पर खड़े होकर जलप्रपात से गिरते पानी की बूंदों को अनुभव किया जा सकता था। मगर ठीक स्थिति में न होने के कारण बंद है। एबे जलप्रपात की सौंदर्य सरिता में स्नान कर हमने अपने अगले पड़ाव कावेरी निसर्गधाम फॉरेस्ट पार्क की ओर प्रस्थान किया।

कावेरी निसर्गधाम फॉरेस्ट पार्क

कावेरी निसर्गधाम फॉरेस्ट पार्क मडिकेरी से लगभग 30 किलोमीटर दूर एक सुंदर भ्रमण स्थली है। बाशा को हमने गाड़ी धीरे चलाने का अनुरोध किया ताकि रास्ते के प्राकृतिक सौंदर्य का भरपूर आनंद ले सकें। कावेरी निसर्गधाम वास्तव में कावेरी नदी द्वारा बनाया गया एक प्राकृतिक डेल्टा है जिसे स्थानीय जन आईलैंड कहते हैं। यह एक लोकप्रिय पिकनिक स्थल है। सन् 1989 में विकसित यह स्थल 14 एकड़ भूमि में फैला हुआ है। निसर्गधाम पहुँचकर हमने कावेरी के ऊपर बने एक लकड़ी के पुल को पार किया। चलते हुए थोड़ा हिलने के कारण यह पुल हरिद्वार के लक्ष्मण झूले की याद दिलाता है। हरियाली लिए शांत जल में बोटिंग का आनंद उठाते कई परिवार व नव–युगल अत्यंत प्रफुल्लित लग रहे थे। लकड़ी के पुल को पार कर हम निसर्गधाम के खूबसूरत द्वार पर पहुँच गए जिसकी नक्काशी देखते ही बनती थी। अंदर प्रवेश करते ही एक विशाल हरे–भरे पार्क के दर्शन हुए जिसमें बाँस के पेड़ों व विशाल वृक्षों के झुंड उसकी सुंदरता को बढ़ा रहे थे। पेड़ों पर कई जगह पार्क के सौंदर्य को ऊँचाई से दृष्टिपात करने के लिए लकड़ी के मचान बने हुए थे। वहाँ कई जोड़े दुनिया से बेखबर अपनी ही दुनिया में खोए प्रेम की पींगे बढ़ाते नज़र आए। पार्क के अंतिम छोर पर एक जैव वैविध्य से भरपूर डियर पार्क विशेष रूप से आकर्षित करता है। अनेक मृग व मृग शावक प्राकृतिक वातावरण में उछल–कूद मचा रहे थे। वास्तव में यह पार्क सैलानियों को प्रकृति से साक्षात्कार का एक सुनहरा अवसर प्रदान करता है। प्रकृति की गोद में रात बिताने के

इच्छुक पर्यटकों के लिए वन विभाग ने पार्क में कावेरी के किनारे बाँसों के कुछ कॉटेज बनवाए हैं जिनकी बुकिंग वन–विभाग कार्यालय से कराई जा सकती है। पार्क में, जहाँ–तहाँ दक्षिण भारतीय संस्कृति को प्रदर्शित करती कई सुंदर झाँकियाँ भी विद्यमान थीं।

निसर्गधाम फॉरेस्ट पार्क में हमने काफी समय बिताया। प्रकृति के शाश्वत सौंदर्य को आत्मसात् कर हम धीरे–धीरे पार्क के निकास द्वारा की ओर बढ़ चले। भूख ने भी अपना रंग दिखाना आरंभ कर दिया था। बाशा हमें एक दक्षिण भारतीय रेस्तरां में ले गया। दक्षिण भारतीय थाली का हमनें खूब आनंद उठाया। अब हमें आज के हमारे अंतिम पढ़ाव दुबारे एलिफेंट कैंप जाना था।

दुबारे एलिफेंट कैंप

निसर्गधाम फोरेस्ट पार्क से विदा होकर हम चले दोबारे एलिफेंट कैंप की ओर। वन्य पशु प्रेमियों और विशेषकर हाथी प्रेमियों का स्वर्ग है यह कैंप। मडिकेरी से लगभग 40 किलोमीटर और निसर्गधाम से लगभग 10 किलोमीटर की दूरी पर कावेरी के तट पर स्थित यह कैंप वास्तव में दुबारे वन्य क्षेत्र में स्थित है। यहाँ स्थित सरकारी प्रशिक्षण केंद्र में हाथियों को प्रशिक्षित भी किया जाता है। हाथियों के झुंड के दर्शन, उनके साथ अठखेलियाँ करने, उन्हें नहलाने व ट्रैकिंग की सुविधा के साथ–साथ यहाँ रात्रि को रुकने की भी व्यवस्था है। यह सुविधा कर्नाटक पर्यटन विभाग की 'जंगल लॉज एवं रिजॉर्ट लिमिटेड' नामक इकाई प्रदान करती है। यहाँ का नमी वाला जंगल क्षेत्र एशियाई हाथियों के साथ–साथ सांभरों, चितली वाले हिरणों, चीतों, तेंदुओं व जंगली कुत्तों सहित अन्य वन्य पशुओं की भी आश्रय स्थली है। पर्यटक अधिकांशतः यहाँ हाथी दर्शन के लिए ही आते हैं। कावेरी में मगरमच्छों के भी दर्शन हो जाते हैं।

दिन में हाथियों से कई काम लिए जाते हैं। शाम को कावेरी में उन्हें नहलाया जाता है। पर्यटक उनकी सवारी करने के साथ–साथ उन्हें नहलाने का भी सुख प्राप्त कर सकते हैं। हमें वहाँ पहुँचते–पहुँचते शाम हो चली थी। हाथी नहाकर लौट चुके थे इसलिए हम उन्हें नहलाने के सुख से वंचित ही रहे। हाथियों के झुंड के दर्शन अवश्य हमें सुलभ हुए। इसी से संतोष कर हमने दुबारे एलिफेंट कैंप से विदा ली।

कुशालनगर बौद्ध मोनेस्ट्री

यद्यपि हम सभी थक चुके थे। फिर भी लगे हाथों निकट ही कुशालनगर स्थित प्रसिद्ध बोद्ध मोनेस्ट्री को देखने का मोह हम नहीं छोड़ पा रहे थे। हमने आज के पुनः निर्धारित अंतिम गंतव्य की ओर प्रस्थान किया। अगर मैसूर की तरफ से आया जाए तो मडिकरी से पहले कुशालनगर आता है। यहाँ का तापमान मडिकरी से थोड़ा अधिक रहता है। कुशालनगर आते ही बाजार में घूमते अपनी मैरून और केसरिया रंगों की मिश्रित विशिष्ट पोशाक पहने तिब्बती लामा नजर आने लगे थे। मुख्य मार्ग से थोड़ा हटकर लगभग 6 किलोमीटर वायलाकुप्पे में स्थित है यह प्रसिद्ध मोनेस्ट्री। वायलाकुप्पे स्थित तिब्बती शरणार्थी आश्रय स्थली में लगभग 16000 शरणार्थी और लगभग 6000 लामा निवास करते हैं। तिब्बत के बाहर धर्मशाला मेकलोडगंज के बाद यह दूसरी सबसे बड़ी तिब्बती शरणार्थी आश्रय स्थली है। सन् 1972 में इसे स्थापित किया गया था।

जैसे ही हमने भव्य मोनेस्ट्री में प्रवेश किया हमें लगा कि हम जैसे किसी अलग ही दुनिया में आ गए हैं। एक अलग तरह की शांति का अनुभव हमने किया। आस्था और विश्वास से प्रदीप्त लामाओं के चेहरे देखकर हम लोग अभिभूत थे। हर उम्र के संन्यासी लामा नज़र आ रहे थे। मोनेस्ट्री के गुंबद पर बेहद खूबसूरत नक्काशी की गई है। मोनेस्ट्री के अंदर सुनहरे रंग की तीन अत्यंत भव्य बुद्ध प्रतिमाएँ बरबस ध्यान आकृष्ट कर लेती हैं। हम इन प्रतिमाओं को एकटक देखते रहे और श्रद्धावनत् हुए बिना न रह सके। सभी दीवारों पर खूबसूरत चित्र उकेरे गए हैं। प्रार्थना स्थल का दृश्य बाँध लेने वाला था। इतने सारे बौद्ध भिक्षु व विद्यार्थियों को एक साथ देखना एक अनुठा अनुभव था। शांत भाव से हम भी कुछ देर वहाँ ध्यान मग्न बैठे रहे और स्मरण करते रहे वैश्विक विभूति भगवान बुद्ध को।

अंधेरा घिर आया था। बत्तियाँ जलने लगी थीं। हम जल्दी ही मडिकेरी लौटना चाहते थे। गाड़ी की रफ्तार बाशा ने थोड़ा बढ़ा दी थी और साथ ही अपनी कमेंट्री भी चालू कर दी थी। ठंडी हवा के झोंके और बाशा की कमेंट्री ने लोरी का काम किया। हम तीनों की आँख लग गई। कॉफी बागान स्थित आवास पर पहुँचने पर ही हमारी नींद खुली। रात का खाना खाकर हमें थकान के कारण जल्दी ही नींद आ गई।

हमें मडिकेरी आए हुए तीन दिन हो चुके थे। आज हमारा वापस लौटने का दिन था। वापसी से पूर्व हम एक–दो स्थान और देख लेना चाहते थे। प्रातः नाश्ते के बाद सबसे पहले हमें मडिकेरी फोर्ट देखना था। नाश्ता करते ही हम चल पड़े फोर्ट दर्शन के लिए।

मडिकरी फोर्ट

मडिकेरी शहर के बीचों–बीच ऊँचाई पर स्थित मडिकेरी फोर्ट पहले–पहल 17वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मुड्डूराजा द्वारा बनवाया गया था। मुड्डूराजा ने ही अंदर एक महल भी बनवाया। बाद में टीपू सुल्तान ने अपने शासनकाल में इसमें कुछ संवर्धन करते हुए इसकी भव्यता में वृद्धि की। 1812 में तत्कालीन राजा लिंगा राजेंद्र ने फोर्ट का पुनरुद्धार कराया। किले में एक पुरानी जेल, महल और एक मंदिर के अतिरिक्त उत्तरी पूर्वी प्रवेश द्वार पर दो विशाल हाथी प्रतिमाएँ व दक्षिणी छोर पर एक चर्च 1859 में ईस्ट इंडिया कंपनी के सैनिकों द्वारा बनवाया गया था। आजकल महल को उपायुक्त कार्यालय और चर्च को राजकीय संग्रहालय में परिवर्तित कर दिया गया है। यह पुरातत्व विभाग के संरक्षण में है। हमारी रुचि संग्रहालय देखने में अधिक थी। जल्दी ही सारा परिसर घूमकर हम लोग संग्रहालय आ पहुँचे। संग्रहालय में प्रवेश करते ही फील्ड मार्शल करियप्पा का भव्य चित्र बरबस ध्यान आकृष्ट करता है। संग्रहालय में प्राच्य मूर्तियों के अतिरिक्त ब्रिटिशकालीन हथियारों का भी अच्छा खासा संग्रह है। संग्रहालय देखकर मन अतीत के चल पलनों में झूलने लगा। अंततः बाशा की पुकार पर ही हमारी तंद्रा भंग हुई और हम आज के अंतिम पड़ाव श्री ओंकारेश्वर मंदिर दर्शन के लिए चल पड़े।

श्री ओंकारेश्वर मंदिर

मडिकेरी के बीचों–बीच स्थित श्री ओंकारेश्वर मंदिर श्रद्धा का मुख्य केंद्र है। वस्तुतः यह लिंगायत समुदाय का शिव मंदिर है जिसे लिंगाराजा द्वितीय ने सन् 1820 में बनवाया था। मंदिर के शिल्प पर इस्लामिक स्थापत्य कला का प्रभाव स्पष्ट झलकता है। बहुत संभव है मैसूर के शासक टीपू सुल्तान की मृत्यु के 21 वर्षों बाद निर्मित इस मंदिर पर टीपू सुल्तान के समय निर्मित अन्य भवनों की भाँति इस्लामिक स्थापत्य का प्रभाव हो। मडिकेरी स्थित कई अन्य भवनों (राजा का मकबरा) पर भी यह प्रभाव परिलक्षित होता है। मंदिर के गुंबद के चारों ओर चार मीनारें हैं। पूजा अर्चना कर हमने प्रसाद लिया तथा भगवान शिव को हमारी यात्रा सफल करने के लिए कृतज्ञता ज्ञापित की और तृप्त भाव से बाहर आ गए।

यूँ तो कूर्ग के स्वप्निल संसार के अनमोल खज़ाने से अनेक रत्न बटोरने अभी शेष रह गए थे जिनमें चोमाकुंड हिल्स, चेल्वारा फॉल्स, तलकावेरी, मंडल पट्टी, नागरहोल वाइल्ड लाइफ सेंचुरी, काबिनी सफारी का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। पर समय सीमा भी तो थी न। शेष हमने अगली बार के लिए छोड़ दिया।

कुर्गी खादय वैशिष्ट्य की चर्चा के बिना कूर्ग यात्रा अधूरी ही मानी जाएगी। चावल की बनी अक्की रोटी, उपमा, पकौड़ियाँ, लज़ीज़ कॉफी, वड़े आदि का स्वाद तो हमने ले लिया था पर ठेठ कुर्गी ज़ायके का रसास्वादन करने से महरूम रहे क्योंकि हम शाकाहारी थे और अधिकांश व्यंजन सामिष थे। शाकाहारी व्यंजनों की संख्या वहाँ कम है। यहाँ के परंपरागत भोजन में बाँस के डंठल का प्रयोग अवश्य किया जाता है। प्राकृतिक रूप से खट्टा करने के लिए बाँस के डंठल को उसके ही पानी में छोड़ दिया जाता है। यहाँ कई तरह के चावल मिलते हैं। चावल का इस्तेमाल यहाँ कई व्यंजनों में किया जाता है। भाप में पकाएँ गए स्टीम्ड पुट्टू बहुत लोकप्रिय हैं। पुट्टू को पंपकिन

करी, बैंबूशूट करी या मशरूम करी के साथ खाना पसंद किया जाता है। पुट्टू के अतिरिक्त अन्य व्यंजन सामिष हैं। चिकन, मटन व पोर्क का खूब प्रयोग होता है। पांधी करी के तो सभी कुर्गी दीवाने हैं। कोडागू मसालों से सजी बैंबूशूट करी भी चाव से खाई जाती है।

लौटने से पहले हम कूर्ग के कुछ विशिष्ट पदार्थ खरीदना चाहते थे। मडिकेरी बाज़ार स्थित एक डिपार्टमेंटल स्टोर 'कूर्ग ग्रीन्स' से हमने शहद, कॉफी, इलायची, काली मिर्च व लौंग खरीदी क्योंकि कूर्ग की कुछ खुशबू हम भी साथ ले जाना चाहते थे।

अब हमारी वापसी का समय हो चला था। बाशा से हमने बस स्टैंड छोड़ने का आग्रह किया। तीन–चार दिनों में बाशा से विशेष लगाव सा हो गया था। उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए और फिर मिलने का वायदा करते हुए हम बैंगलुरू जाने वाली बस में सवार हो गए। थोड़ी देर बाद बस चल पड़ी थीं बस में बैठे हुए रह–रह कर मन कूर्ग की हसीन वादियों में लौट रहा था। यह बात मन में आ रही थी कि अगर किसी को प्रकृति का चरम सुख पाना हो और घटा के संग–संग चलना हो, रेशमी फुहारों में नहाना हो, प्यार का रोमानी सफर तय करना हो, रिमझिम बारिश का संगीत सुनना हो, शरीर और मन को शीतलता प्रदान करनी हो और स्मोकी फ्लेवर वाले कुर्गी व्यंजनों का जायका लेना हो तो निस्संकोच प्रकृति के स्वर्ग कूर्ग (कोडागू) चले आना चाहिए। यह सोचते–सोचते हम पति पत्नी ने एक दूसरे को देखा और मन ही मन एक बार फिर कूर्ग आने का अपने आप से वायदा किया।

– प्राचार्या, देव समाज कॉलेज फॉर गर्ल्ज़, अंबाला शहर, हरियाणा–134003

❑❑❑

उत्साह

आचार्य रामचंद्र शुक्ल

दुख के वर्ग में जो स्थान भय का है, वही स्थान आनंद–वर्ग में उत्साह का है। भय में हम प्रस्तुत कठिन स्थिति के नियम से विशेष रूप में दुखी और कभी–कभी उस स्थिति से अपने को दूर रखने के लिए प्रयत्नवान भी होते हैं। उत्साह में हम आनेवाली कठिन स्थिति के भीतर साहस के अवसर के निश्चय द्वारा प्रस्तुत कर्म–सुख की उमंग से अवश्य प्रयत्नवान होते हैं। उत्साह में कष्ट या हानि सहने की दृढ़ता के साथ–साथ कर्म प्रवृत्त होने के आनंद का योग रहता है। साहसपूर्ण आनंद की उमंग का नाम उत्साह है। कर्म–सौंदर्य के उपासक ही सच्चे उत्साही कहलाते हैं।

कर्मों में किसी प्रकार का कष्ट या हानि सहने का साहस अपेक्षित होता है उन सबके प्रति उत्कंठापूर्ण आनंद उत्साह के अंतर्गत लिया जाता है। कष्ट या हानि के भेद के अनुसार उत्साह के भेद हो जाते हैं। साहित्य–मीमांसकों ने इसी दृष्टि से युद्ध–वीर, दान–वीर, दया–वीर इत्यादि भेद किए हैं। इनमें सबसे प्राचीन और प्रधान युद्धवीरता है जिसमें आघात, पीड़ा क्या, मृत्यु तक की परवाह नहीं रहती। इस प्रकार की वीरता का प्रयोजन अत्यंत प्राचीन काल से चलता चला आ रहा है, जिसमें साहस और प्रयत्न दोनों चरम उत्कर्ष पर पहुँचते हैं। केवल कष्ट या पीड़ा सहन करने के साहस में ही उत्साह का स्वरूप स्फुरित नहीं होता। उसके साथ आनंदपूर्ण प्रयत्न या उसकी उत्कंठा का योग चाहिए। बिना बेहोश हुए भारी फोड़ा चिराने को तैयार होना साहस कहा जाएगा, पर उत्साह नहीं। इस प्रकार चुपचाप बिना हाथ–पैर हिलाए घोर प्रहार सहने के लिए तैयार रहना साहस और कठिन से कठिन प्रहार सहकर भी जगह से न हटना धीरता कही जाएगी। ऐसे साहस और धीरता को उत्साह के अंतर्गत तभी ले सकते हैं जब कि साहसी या धीर उस काम को आनंद के साथ करता चला जाएगा जिसके कारण उसे इतने प्रहार सहने पड़ते हैं। सारांश यह कि आनंदपूर्ण प्रयत्न या उसकी उत्कंठा में ही उत्साह का दर्शन होता है, केवल कष्ट सहने के निश्चेष्ट साहस में नहीं। धृति और साहस दोनों का उत्साह के बीच संचरण होता है।

दान–वीर में अर्थ–त्याग का साहस अर्थात् उसके कारण होने वाले कष्ट या कठिनता को सहने की क्षमता अंतर्हित रहती है। दानवीरता तभी कही जाएगी जब दान के कारण दानी को अपने जीवन–निर्वाह में किसी प्रकार का कष्ट या कठिनता दिखाई देगी। इस कष्ट या कठिनता की मात्रा या संभावना जितनी ही अधिक होगी, दानवीरता उतनी ही ऊँची समझी जाएगी। परंतु इस अर्थ–त्याग के साहस के साथ ही जब तक पूर्ण तत्परता और आनंद के चिह्न न दिखाई पड़ेंगे तब तक उत्साह का स्वरूप न खड़ा होगा।

युद्ध के अतिरिक्त संसार में और भी ऐसे विकट काम होते हैं जिनमें घोर शारीरिक कष्ट

भाषा ISSN 0523-1418

सहना पड़ता है और प्राण–हानि तक की संभावना रहती है। अनुसंधान के लिए तुषार–मंडित अभ्रभेदी अगम्य पर्वतों की चढ़ाई, ध्रुवदेश या सहारा के रेगिस्तान का सफर, क्रूर, बर्बर जातियों के बीच अज्ञात घोर जंगलों में प्रवेश इत्यादि भी पूरी–वीरता और पराक्रम के कर्म हैं। इनमें जिस आनंदपूर्ण तत्परता के साथ लोग प्रवृत्त हुए हैं, वह भी उत्साह ही है।

मनुष्य शारीरिक कष्ट से ही पीछे हटने वाला प्राणी नहीं है। मानसिक क्लेश की संभावना से भी बहुत से कर्मों की ओर प्रवृत्त होने का साहस उसे नहीं होता। जिन बातों से समाज के बीच उपहास, निंदा, अपमान इत्यादि का भय रहता है उन्हें अच्छी और कल्याणकारिणी समझते हुए भी बहुत से लोग उनसे दूर रहते हैं। प्रत्यक्ष हानि देखते हुए भी कुछ प्रथाओं का अनुसरण बड़े–बड़े समझदार तक इसलिए करते चलते हैं कि उनके त्याग से वे बुरे कहे जाएँगे, लोगों में उनका वैसा आदर–सम्मान न रह जाएगा। उनके लिए मान–ग्लानि का कष्ट सब शारीरिक क्लेशों से बढ़कर होता है। जो लोग मान–अपमान का कुछ भी ध्यान न करके, निंदा–स्तुति की कुछ भी परवाह न करके किसी प्रचलित प्रथा के विरुद्ध पूर्ण तत्परता और प्रसन्नता के साथ कार्य करते जाते हैं वे एक ओर तो उत्साही और वीर कहलाते हैं; दूसरी ओर भारी बेहया।

किसी शुभ परिणाम पर दृष्टि रखकर निंदा–स्तुति, मान–अपमान आदि की कुछ परवाह न करके प्रचलित प्रथाओं का उल्लंघन करने वाले वीर या उत्साही कहलाते हैं। यह देखकर बहुत से लोग केवल इस विरुद्ध के लोभ में ही अपनी उछल–कूद दिखाया करते हैं। वे केवल उत्साही या साहसी कहे जाने के लिए ही चली आती हुई प्रथाओं को तोड़ने की धूम मचाया करते हैं। शुभ या अशुभ परिणाम से उन्हे कोई मतलब नहीं; उनकी ओर उनका ध्यान लेश–मात्र नहीं रहता। जिस पक्ष के बीच की सुख्याति का वे अधिक महत्व समझते हैं उसकी वाहवाही से उत्पन्न आनंद की चाह में वे दूसरे पक्ष के बीच की निंदा या अपमान की कुछ परवाह नहीं करते। ऐसे अच्छे लोगों के साहस या उत्साह की अपेक्षा उन लोगों का उत्साह या साहस–भाव की दृष्टि से वही अधिक मूल्यवान है जो किसी प्राचीन प्रथा की–चाहे वह वास्तव में हानिकारिणी ही हो–उपयोगिता का सच्चा विश्वास रखते हुए प्रथा तोड़नेवालों की निंदा, उपहास, अपमान आदि सहा करते हैं।

उत्साह की गिनती अच्छे गुणों में होती है। किसी भाव के अच्छे या बुरे होने का निश्चय अधिकतर उसकी प्रवृत्ति के शुभ या अशुभ परिणाम के विचार से होता है। वही उत्साह जो कर्तव्य कर्मों के प्रति इतना सुंदर दिखाई पड़ता है अकर्तव्य कर्मों की ओर होने पर वैसा श्लाध्य नहीं प्रतीत होता। आत्मरक्षा, पररक्षा, देशरक्षा आदि के निमित्त साहस की जो उमंग देखी जाती है उसके सौंदर्य को परपीड़न, डकैती आदि कर्मों का साहस कभी नहीं पहुँच सकता। यह बात होते हुए भी विशुद्ध उत्साह या साहस की प्रशंसा थोड़ी–बहुत होती ही है। अत्याचारियों या डाकुओं के शौर्य और साहस की कथाएँ भी लोग तारीफ करते हुए सुनते हैं।

अब तक उत्साह का प्रधान रूप ही हमारे सामने रहा, जिसमें साहस का पूरा योग रहता है। पर कर्ममात्र के संपादन में जो तत्परतापूर्ण आनंद देखा जाता है वह भी उत्साह ही कहा जाता है। सब कामों में साहस अपेक्षित नहीं होता, पर थोड़ा–बहुत आराम विश्राम सुभीते इत्यादि का त्याग सबमें करना पड़ता है, और कुछ नहीं तो उठकर बैठना, खड़ा होना या दस–पाँच कदम लेना ही पड़ता है। जब तक आनंद का लगाव किसी क्रिया, व्यापार या उसकी भावना के साथ नहीं दिखाई पड़ता तब तक उसे उत्साह की संज्ञा प्राप्त नहीं होती। यदि किसी प्रिय मित्र के आने का समाचार पाकर हम चुपचाप ज्यों के त्यों आनंदित होकर बैठे रह जाएँ या थोड़ा हँस भी दें तो यह हमारा उत्साह नहीं कहा जाएगा। हमारा उत्साह तभी कहा जाएगा जब हम अपने मित्र का आगमन सुनते ही उठ खड़े होंगे, उससे मिलने के लिए चल पड़ेंगे और उसके ठहरने आदि के प्रबंध में प्रसन्नमुख इधर–उधर आते–जाते दिखाई देंगे।

प्रयत्न और कर्म संकल्प उत्साह नामक आनंद के नित्य लक्षण हैं।

प्रत्येक कर्म में थोड़ा या बहुत बुद्धि का योग भी रहता है। कुछ कर्मों में तो बुद्धि की तत्परता और शरीर की तत्परता दोनों बराबर साथ–साथ चलती हैं। उत्साह ही उमंग से जिस प्रकार हाथ–पैर चलवाती है उसी प्रकार बुद्धि से भी काम करवाती है। ऐसे उत्साह वाले वीर को कर्मवीर कहना चाहिए या बुद्धिवीर–यह प्रश्न मुद्राराक्षस नाटक बहुत अच्छी तरह हमारे सामने लाता है। चाणक्य और राक्षस के बीच जो चोटें चली हैं वे नीति की हैं– शास्त्र की नहीं। अतः विचार करने की बात यह है कि उत्साह की अभिव्यक्ति बुद्धि–व्यापार के अवसर पर होती है अथवा बुद्धि द्वारा निश्चित उद्योग में तत्पर होने की दशा में हमारे देखने में तो उद्योग की तत्परता में ही उत्साह की अभिव्यक्ति होती है; अतः कर्मवीर ही कहना ठीक है।

बुद्धिवीर के दृष्टांत कभी–कभी हमारे पुराने ढंग के शास्त्रार्थों में देखने को मिल जाते हैं। जिस समय किसी भारी शास्त्रार्था में पंडित से भिड़ने के लिए कोई विद्यार्थी आनंद के साथ सभा में आगे आता है उस समय उसके बुद्धि–साहस की प्रशंसा अवश्य होती है वह जीते या हारे, बुद्धि–वीर समझा ही जाता है। इस जमाने में वीरता का प्रसंग उठाकर वाग्वीर का उल्लेख यदि न होगा तो बात अधूरी ही समझी जाएगी। ये वाग्वीर आज–कल, बड़ी–बड़ी सभाओं के मंचों पर से लेकर स्त्रियों के उठाए हुए, पारिवारिक प्रपंचों तक में पाए जाते हैं और काफी तादाद में।

थोड़ा यह देखना चाहिए कि उत्साह में ध्यान किस पर रहता है कर्म पर, उसके फल पर अथवा व्यक्ति या वस्तु पर। हमारे विचार में उत्साही वीर का ध्यान आदि से अंत तक पूरी कर्म–शृंखला पर से होता हुआ उसकी सफलता–रूपी समाप्ति तक फैला रहता है। इसी ध्यान से जो आनंद की तरंगे उठती हैं वे ही सारे प्रयत्न को आनंदमय कर देती हैं। युद्ध–वीर में विजेतव्य को आलंबन कहा गया है उसका अभिप्राय यही है कि विजेतव्य कर्म–प्रेरक के रूप में वर के ध्यान में स्थिर रहता है, वह कर्म के स्वरूप का भी निर्धारण करता है पर आनंद और साहस के मिश्रित भाव का सीधा लगाव उसके साथ नहीं रहता। सच पूछिए तो वीर के उत्साह का विषय–विधेयक कर्म या युद्ध ही रहता है दानवीर और धर्मवीर पर विचार करने से पहले यह बात स्पष्ट हो जाती है। दान दयावश, श्रद्धावश या कीर्तिलोभवश दिया जाता है। यदि श्रद्धावश दान दिया जा रहा है तो दानपात्र वास्तव में श्रद्धा का और यदि कार्यवश दिया जा रहा है तो पीड़ित यथार्थ में दया का विषय या आलंबन ठहरता है। अतः उस श्रद्धा या दया की प्रेरणा से जिस कठिन या दुस्साध्य कर्म की प्रवृत्ति होती है उसी की ओर उत्साही का साहसपूर्ण आनंद उन्मुख कहा जा सकता है। अतः और रसों में आलंबन का स्वरूप जैसा निर्दिष्ट रहता है वैसा वीर रस में नहीं। बात यह है कि उत्साह एक यौगिक भाव है जिसमें साहस और आनंद का मेल रहता है।

जिस व्यक्ति या वस्तु पर, प्रभाव डालने के लिए वीरता दिखाई जाती है उसकी ओर उन्मुख कर्म होता है और कर्म की ओर उन्मुख उत्साह नामक भाव होता है। सारांश यह कि किसी व्यक्ति या वस्तु के साथ उत्साह का सीधा लगाव नहीं होता। समुद्र लाँघने के लिए जिस उत्साह के साथ हनुमान उठे हैं उसका कारण समुद्र नहीं–समुद्र लाँघने का विकट कर्म है। कर्म–भावना ही उत्साह उत्पन्न करती है, वस्तु या व्यक्ति की भावना नहीं।

किसी कर्म के संबंध में जहाँ आनंदपूर्ण तत्परता दिखाई पड़ी कि हम उसे उत्साह कह देते हैं। कर्म के अनुष्ठान में जो आनंद होता है उसका विधान तीन रूपों में दिखाई पड़ता है–

1. कर्म–भावना से उत्पन्न,
2. फल–भावना से उत्पन्न, और
3. आगंतुक अर्थात् विषयांतर से प्राप्त।

इनमें कर्म–भावना–प्रसूत आनंद को ही सच्चे वीरों का आनंद समझना चाहिए जिसमें साहस का योग प्रायः बहुत अधिक रहा करता है। सच्चा वीर जिस समय मैदान में उतरता है उसी समय उसमें उतना आनंद भरा रहता है जितना औरों को

विजय या सफलता प्राप्त करने पर होता है। उसके कर्म और फल के बीच या तो कोई अंतर होता ही नहीं या बहुत सिमटा हुआ होता है। इसी से कर्म की ओर वह उसी झोंक से लपकता है जिस झोंक से साधारण लोग फल को लपका करते हैं। इसी कर्म–प्रवर्तक आनंद की मात्रा के हिसाब से शौर्य और साहस का स्फुरण होता है।

फल की भावना से उत्पन्न आनंद भी साधक को कर्मों की ओर हर्ष और तत्परता के साथ प्रवृत्त करता है। पर फल का लोभ जहाँ प्रधान रहता है वहाँ कर्म–विषयक आनंद उसी फल की भावना की तीव्रता और मंदता पर अवलंबित रहता है। उद्योग के प्रवाह के बीच जब–जब फल की भावना मंद पड़ती है– उसकी आशा कुछ धुँधली पड़ जाती है, तब–तब आनंद की उमंग गिर जाती है और उसी के साथ उद्योग में भी शिथिलता आ जाती है। पर कर्म–भावना–प्रधान उत्साह बराबर एक रस रहता है। फलासक्त उत्साही असफल होने पर खिन्न और दुखी होता है, पर कर्मासक्त उत्साही केवल कर्मानुष्ठान के पूर्व की अवस्था में हो जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि कर्म–भावना–प्रधान उत्साह ही सच्चा उत्साह है। (फल–भावना–प्रधान उत्साह तो लोभ ही का एक प्रच्छन्न रूप है।)

उत्साह वास्तव में कर्म और फल की मिली–जुली अनुभूति है जिसकी प्रेरणा से तत्परता आती है। यदि फल दूर ही पर दिखाई पड़े, उसकी भावना के साथ ही उसका लेशमात्र भी कर्म या प्रयत्न के साथ लगाव न मालूम हो, तो हमारे हाथ–पाँव कभी न उठें और उस फल के साथ हमारा संयोग ही न हो। इससे कर्म–शृंखला की पहली कड़ी पकड़ते ही फल के आनंद की भी कुछ अनुभूति होने लगती है। यदि हमें यह निश्चय हो जाए कि अमुक स्थान पर जाने से हमें किसी प्रिय व्यक्ति का दर्शन होगा तो उस निश्चय के प्रभाव से हमारी यात्रा भी अत्यंत प्रिय हो जाएगी। हम चल पड़ेंगे और अंगों की प्रत्येक गति में प्रफुल्लता दिखाई देगी। यही प्रफुल्लता कठिन से कठिन कर्मों के साधन में भी देखी जाती है। वे कर्म भी प्रिय हो जाते हैं और अच्छे लगने लगते हैं। जब तक फल तक पहुँचानेवाला कर्म–पथ अच्छा न लगेगा तब तक केवल फल का अच्छा लगना कुछ नहीं। फल की इच्छा मात्र हृदय में रखकर जो प्रयत्न किया जाएगा वह अभावमय और आनंद–शून्य होने के कारण निर्जीव सा होगा।

कर्म–रुचि–शून्य प्रयत्न में कभी–कभी इतनी उतावली और आकुलता होती है कि मनुष्य साधना के उत्तरोत्तर क्रम का निर्वाह न कर सकने के कारण बीच ही में चूक जाता है। मान लीजिए कि एक ऊँचे पर्वत के शिखर पर विचरते हुए किसी व्यक्ति को नीचे बहुत दूर तक गई हुई सीढ़ियाँ दिखाई दीं और यह मालूम हुआ कि नीचे उतरने पर सोने का ढेर मिलेगा। यदि उसमें इतनी सजीवता है, कि उक्त सूचना के साथ ही वह उस स्वर्ण–राशि के साथ एक प्रकार के मानसिक संयोग का अनुभव करने लगा तथा उसका चित्त प्रफुल्ल और अंग सचेष्ट हो गए, तो उसे एक–एक सीढ़ी स्वर्णमयी दिखाई देगी, एक–एक सीढ़ी उतरने में उसे आनंद मिलता जाएगा, एक–एक क्षण उसे सुख से बीतता हुआ जान पड़ेगा और वह प्रसन्नता के साथ उस स्वर्ण–राशि तक पहुँचेगा। इस प्रकार उसके प्रयत्न–काल को फल–प्राप्ति काल के अंतर्गत ही समझना चाहिए। इसके विरुद्ध यदि उसका हृदय दुर्बल होगा और उसमें इच्छामात्र ही उत्पन्न होकर रह जाएगी; तो अभाव के बाद के कारण उसके चित्त में यही होगा कि कैसे झट से नीचे पहुँच जाएँ। उसे एक–एक सीढ़ी उतरना बुरा मालूम होगा और आश्चर्य नहीं कि वह या तो हारकर बैठ जाए या लड़खड़ाकर मुँह के बल गिर पड़े।

फल की विशेष आसक्ति से कर्म के लाघव की वासना उत्पन्न होती है। चित्त में यही आता है कि कर्म बहुत कम या बहुत सरल करना पड़े और फल बहुत सा मिल जाए। श्रीकृष्ण ने कर्म–मार्ग से फलाशक्ति की प्रबलता हटाने का बहुत ही स्पष्ट उपदेश दिया; पर उनके समझाने पर भी भारतवासी इस वासना से ग्रस्त होकर कर्म से तो उदासीन हो बैठे और फल के इतने पीछे पड़े कि गरमी में ब्राह्मण को एक पेठा देकर पुत्र की आशा

करने लगे; चारआने रोज का अनुष्ठान कराके व्यापार में लाभ, शुत्र पर विजय, रोग से मुक्ति; धन–धान्य की वृद्धि तथा और भी जाने क्या–क्या चाहने लगे। आसक्ति प्रस्तुत या उपस्थित वस्तु में ही ठीक कही जा सकती है। कर्म सामने उपस्थित रहता है; इससे आसक्ति उसी में चाहिए; फल दूर रहता है, इससे उसकी ओर कर्म का लक्ष्य काफी है। जिस आनंद से कर्म की उत्तेजना होती है और जो आनंद कर्म करते समय तक बराबर चला चलता है उसी का नाम उत्साह है।

कर्म के मार्ग पर आनंदपूर्वक चलता हुआ उत्साही मनुष्य यदि अंतिम फल तक न भी पहुँचे तो भी उसकी दशा, कर्म न करनेवाले की अपेक्षा अधिकांश अवस्थाओं में अच्छी रहेगी; क्योंकि एक तो कर्मकाल में उसका जो जीवन बीता, वह संतोष या आनंद में बीता, उसके उपरांत फल की अप्राप्ति पर भी उसे यह पछतावा न रहा कि मैंने प्रयत्न नहीं किया। फल पहले से कोई बना–बनाया पदार्थ नहीं होता, अनुकूल प्रयत्न–कर्म के अनुसार, उसके एक–एक अंग की योजना होती है। बुद्धि द्वारा पूर्ण रूप से निश्चित की हुई व्यापार–परंपरा का नाम ही प्रयत्न है। किसी मनुष्य के घर का कोई प्राणी बीमार है। वह वैद्यों के यहाँ से जब तक औषधि ला–लाकर रोगी को देता जाता है और इधर–उधर दौड़–धूप करता जाता है तब तक उसके चित्त में जो संतोष रहता है– प्रत्येक नए उपचार के साथ जो आनंद का उन्मेष होता रहता है– यह उसे कदापि न प्राप्त होता, यदि वह रोता हुआ बैठा रहता। प्रयत्न की अवस्था में उसके जीवन का जितना अंश संतोष, आशा और उत्साह में बीता, अप्रयत्न की दशा में उतना ही अंश केवल शोक और दुख में कटता। इसके अतिरिक्त रोगी के न अच्छे होने की दशा में भी वह आत्मग्लानि के उस कठोर दुख से बचा रहेगा जो उसे जीवन भर यह सोच–सोचकर होता कि मैंने पूरा प्रयत्न नहीं किया।

कर्म में आनंद अनुभव करनेवालों ही का नाम कर्मण्य है। धर्म और उदारता के उच्च कर्मों के विधान में ही एक ऐसा दिव्य आनंद भरा रहता है कि कर्त्ता को वे कर्म ही फल–स्वरूप लगते हैं। अत्याचार का दमन और क्लेश का शमन करते हुए चित्त में जो उल्लास और तुष्टि होती है वही लोकोपकारी कर्म–वीर का सच्चा सुख है। उसके लिए सुख तब तक के लिए रुका नहीं रहता जब तक कि फल प्राप्त न हो जाए; बल्कि उसी समय से थोड़ा–थोड़ा करके मिलने लगता है जब से वह कर्म की और हाथ बढ़ाता है।

कभी–कभी आनंद का मूल विषय तो कुछ और रहता है, पर उस आनंद के कारण एक ऐसी स्फूर्ति उत्पन्न होती है जो बहुत से कर्मों की ओर हर्ष के साथ अग्रसर करती है। इसी प्रसन्नता और तत्परता को देख लोग कहते हैं कि वे काम बड़े उत्साह से किए जा रहे हैं। यदि किसी मनुष्य के बहुत से लाभ उसके सामने आते हैं उन सबको वह बड़े हर्ष और तत्परता के साथ करता है। उसके इस हर्ष और तत्परता को भी लोग उत्साह ही कहते हैं। इसी प्रकार किसी उत्तम फल या सुखप्राप्ति की आशा या निश्चय से उत्पन्न आनंद, फलोन्मुख प्रयत्नों के अतिरिक्त और दूसरे व्यापारों के साथ संलग्न होकर, उत्साह के रूप में दिखाई पड़ता है। यदि हम किसी ऐसे उद्योग में लगे हैं जिससे आगे चलकर हमें बहुत लाभ या सुख की आशा है तो उस उद्योग को तो उत्साह के साथ करते हैं, अन्य कार्यों में भी प्रायः अपना उत्साह दिखा देते हैं।

वह बात उत्साह में ही नहीं, अन्य मनोविकारों में भी बराबर पाई जाती है। यदि हम किसी बात पर क्रुद्ध बैठे हैं और इसी बीच में कोई दूसरा आकर हमसे कोई बात सीधी तरह भी पूछता है तो भी हम उस पर झुँझला उठते हैं। इस झुँझलाहट का न तो कोई निर्दिष्ट कारण होता है, न उद्देश्य। यह केवल क्रोध की स्थिति के व्याघात को रोकने की क्रिया है, क्रोध की रक्षा का प्रयत्न है। इस झुँझलाहट द्वारा हम यह प्रकट करते हैं कि हम क्रोध में हैं और क्रोध ही में रहना चाहते हैं। क्रोध को बनाए रखने के लिए हम उन बातों से भी क्रोध ही संचित करते हैं जिनसे दूसरी अवस्था में हम विपरीत भाव प्राप्त करते। इसी प्रकार यदि हमारा

चित्त किसी विषय में उत्साहित रहता है तो हम अन्य विषयों में भी अपना उत्साह दिखा देते हैं। यदि हमारा मन बड़ा हुआ रहता है तो हम बहुत से काम प्रसन्नतापूर्वक करने के लिए तैयार हो जाते हैं। इसी बात का विचार करके सलाम–साधक लोग हाकिमों से मुलाकात करने के पहले अर्दलियों से उनका मिजाज पूछ लिया करते हैं।

❑❑❑

एक और वाल्मीकि

देवेंद्र कुमार मिश्रा

अपने चेहरे को आइने में देखकर वह खुद सम्मोहित सा हो गया। इस बार उसने राम का रूप बनाया था। वह लुटेरा था। रात में चेहरे पर मुखौटा लगाकर या चेहरे को परिवर्तित करता ताकि चेहरे से लोग डर सके। उसके चेहरे को देखकर लोगों की घिग्घी बंध जाती। लोग अपने ही घरों से भाग जाते या छिप जाते। चेहरे के साथ–साथ वह इस बात का भी ध्यान रखता कि बाकी शरीर पर जो पहनावा हो वह चेहरे से मिलता–जुलता हो। मसलन वह भूत का मुखौटा लगाता तो काली चादर शरीर पर डालता। उस चादर पर मनुष्य कंकाल के चेहरे बने होते या खून पीती कोई भयानक चुड़ैल का चित्र। हाथ–पैरों के नाखूनों में वह नकली नाखून लगा लेता। अजीब–अजीब आवाजें निकालता। मार डालूँगा। कच्चा खा जाऊँगा। जब डाकू बनकर गाँव में प्रवेश करता तो कंधे पर दुनाली बंदूक, बड़ी–बड़ी, मूँछे, दाढ़ी, कमर पर कारतूसों से भरा पट्टा। चमड़े के गंदे जूते और बड़े–बड़े बिखरे बाल।

लोग डाकू–डाकू कहकर जान बचाकर घर से भाग निकलते। वह आराम से किसी एक को निशाना बनाए घर में घुसता। कीमती सामान अपनी पोटली में भरता और चुपके से निकल जाता। गाँव इकट्ठा हो जाता। कई दफा पुलिस भी ठीक टाइम पर आ जाती। लेकिन डाकू हो तो मिले। पुलिस वाले इनाम, प्रमोशन के लोभ में हथियारों सहित चलाने के लिए तैयार रहते और वह अपना मुखौटा नकली भेष वही उसी घर में उतारकर साधारण ग्रामीण के रूप में गाँव वालों में शामिल हो जाता। फिर धीरे से निकल जाता। आस–पास के गाँवों में इस बात की दहशत फैल गई कि इस क्षेत्र में कोई बड़ा डाकू, लुटेरा और भूत–प्रेत है। इस तरह वह मुखौटे बदलकर नए–नए भेष बनाकर लोगों को लूटकर शान से अपना जीवन–यापन करता।

लेकिन जबसे गाँवों में विद्यालय खुला है। संचार क्रांति के तहत टेलीविजन पहुँचा है। तब से उसके मुखौटे की भयानकता से लोगों ने भय खाना छोड़ दिया था। डकैत का भेष बनाकर किसी घर में प्रवेश करना भी घातक हो चुका था। एक बार जिस घर में वह डाकू बनकर घुसा था। घर के लोगों ने बाहर निकलकर चीखना शुरू कर दिया 'डाकू–डाकू–डाकू' तो पूरे गाँव वाले लाठियों, तलवारों और जिनके पास बंदूकें थी वे पूरे घर को घेर चुके थे। पुलिस ने भी आकर फायरिंग शुरू कर दी। चूँकि उसके पास बंदूक नकली थी उसके चेहरे की तरह। बड़ी मुश्किल से जान बची थी उसकी। अन्यथा न जाने कितनी गोलियाँ उसके शरीर में प्रवेश कर जाती। उसने आज तक किसी की हत्या नहीं की थी। चोरी, लूट करना उसका पेशा था। लेकिन वह हत्यारा नहीं था। पुलिस ने उस घर को घेरकर जब चारों तरफ से फायरिंग की तो वह भयभीत होकर सोचने लगा कि जान अब गई कि तब। साक्षात कालदेव

भाषा ISSN 0523-1418

सामने खड़े हुए हो। उस दिन उसने उस घर के भूसे के ढेर में छिपकर अपने प्राण बचाए जब पुलिस और गाँव वालों को भरोसा हो गया कि डाकू भाग गया है तो वे वापिस हो गए। वह भूसे के ढेर में छिपा रहा और जब घर के लोग द्वार बंद करके सो गए तब वह सधे कदमों से धीरे–धीरे राम–राम सुमरकर अंदर से कुंडी खोलकर बाहर निकल पाया। उसनें कसम खाई कि अब वह डाकू का भेष नहीं धरेगा। डाकू का हल्ला फैलने से गाँव में पुलिस चौकी बन चुकी थी।

दिन में वह गाँव में आम ग्रामीण बनकर विचरण करता। लोगों से घुलता–मिलता और रात किस घर में घुसना है। कितना माल मिल सकता है। इसकी टोह लेता। गाँव की पंचायत चल रही थी। जिसमें गाँव के पंच लोगों के साथ–साथ मास्टरजी भी थे। जो लोगों को समझा रहे थे कि वह कोई डाकू नहीं है। डाकू अकेला नहीं होता। डाकुओं का पूरा गिरोह होता है। वे दो–चार के प्राण लिए बिना नहीं जाते। यह कोई मामूली लुटेरा है जो भेष बदलकर आता है। और न ही भूत–प्रेत जैसा कुछ होता है। यह सब कोरी बकवास है। भूत–प्रेत क्या रुपया जेवर चुराता है। विज्ञान कहता है भूत–प्रेत नहीं होते। आप लोग डरना छोड़िए और जो भी हो उसे धरदबोचिए वह भूत का रूप धरे कोई आदमी है जो आप लोगों को डराकर लूट कर रहा है।

सबने मास्टरजी की बात से सहमति जताई। उसके बाद गाँव के लोगों का डर निकालने के लिए गाँव वालों को वीडियों पर एक डरावनी पिक्चर दिखाई गई। जिसमें अंत में स्पष्ट किया गया था कि भूत–प्रेत बनकर कोई व्यक्ति हत्याएँ, लूटपाट करता है लेकिन अंत में वह आदमी ही निकलता है। पुलिस उसे पकड़ ले जाती है। गाँव वालों के ज्ञानचुक्ष खुल गए और भीड़ में बैठे लुटेरे ने माथा–पीट लिया। उसके धंधे पर चोट पड़ने वाली बात थी। उसी दिन एक घर ताड़कर वह उस घर में भूत बनकर घुसा जिसमें मात्र एक 10 वर्षीय बच्चा था। उसे उस घर से कुछ विशेष मिलने की उम्मीद तो नहीं थी लेकिन कई दिन से वह खाली था। उसकी हालत खराब थी। फिर ये घर सुरक्षित था। 10 वर्षीय बच्चे के माता–पिता गाँव की ही एक शादी में गए हुए थे। बच्चे को डराना सरल काम था। वह उस घर में धीरे से घुसा। लेकिन अचानक बच्चे की नींद खुल गई। वह घर की छानबीन कर रहा था। उसे कुछ नहीं मिल रहा था। न नगदी, न सोना। तभी बच्चा उसके सामने आ गया। बच्चे ने डरने की बजाय उत्सुकता से पूछा– "तुम भूत हो" लुटेरा ये सोचकर घबरा गया कि बच्चा रोने, डरने, भागने की बजाय उससे पूछ रहा है कि तुम भूत हो। उसने चिढ़कर कहा– "दिखता नहीं। भूत से पूछते हो कि भूत हो" बच्चे ने अगला प्रश्न किया "तुम क्या खाते हो? रात में क्यों घूमते हो। तुम्हें डर नहीं लगता। तुम कहाँ रहते हो?" बच्चे के एक साथ इतने सारे प्रश्नों को सुनकर वह न केवल चौंका बल्कि घबराया भी। उसनें अपनी आवाज को भारी बनाकर कहा– "मैं बच्चों को खाता हूँ। श्मशान में रहता हूँ।"

"क्या तुम मुझे खा सकते हो"

"ज्यादा प्रश्न पूछे तो खा जाऊँगा" इसके साथ ही उसनें हँसने की भूतिया आवाज निकाली। ही....ही....हूँ...हूँ....हा....हा....हा.....

बच्चे ने मासूमियत से कहा– "आप लोग इतना गंदा क्यों हँसते हो"

वह चुप हो गया। जब उसे लगा कि इस घर में कुछ भी नहीं है। यहाँ से निकलना ही उचित होगा। वह जाने लगा तो बच्चा भी उसके पीछे चलने लगा।

उसने कहा– "तुम मेरे पीछे क्यों आ रहे हो"

"मैं तुम्हारा घर देखना चाहता हूँ।"

"क्यों?"

"मैं तुमसे दोस्ती करना चाहता हूँ"

"क्यों"?

"तुम भूत हो न। कुछ भी कर सकते हो। मेरे पिता शराब पीकर मेरी माँ को और मुझे मारते हैं। तुम मेरे पिता को खा सकते हो। जब मेरे पिता ऐसा करेंगे तो मैं तुम्हें बुलाने आऊँगा।"

वह घबरा गया। ये कैसी मुसीबत गले पड़ गई। वह बच्चे से बचने की कोशिश में उसे समझाने लगा कि हम भूतों के कोई घर नहीं होते और मैं शाकाहारी भूत हूँ। किसी को खा नहीं सकता। तुम पुलिस में रिपोर्ट करना। गाँव के मास्टर को बता देना। वह तुम्हारे पिता को ठीक कर देगें। फिर तुम्हें और तुम्हारी माँ को तुम्हारे पिता नहीं मारेगें लेकिन बच्चा पीछा छोड़ने को तैयार नहीं था। उसने मासूमियत से कहा– "नहीं तुम भूत हो। तुम सब कुछ कर सकते हो। तुम्हें मेरा काम करना ही पड़ेगा। तुम्हारे इतने–बड़े–बड़े नाखून हैं।" बच्चा जिद करने लगा तो वह तेज कदमों से बाहर निकलने लगा। जब बच्चे ने दौड़ लगानी शुरू कर दी उसके पीछे तो वह भी सरपट भागा। पूरी रफ्तार से। तब तक भागता रहा जब तक उसे बच्चा दिखाई देना बंद नहीं हो गया। जब वह अपने घर पहुँचकर विश्राम करने लगा। तो सोचने लगा कि हद हो गई। अब तो बच्चे भी भूत से डरने की बजाय उससे मदद की उम्मीद कर रहे हैं। डाकू के साथ–साथ भूत से डराना भी कोई काम का नहीं। जब एक अकेला बच्चा नहीं डरा तो बड़े क्या डरेंगे। वो भी तब जब लोगों में जागरूकता आ रही है। उस दिन गाँव की चौपाल पर दिखाई गई भूतिया फिल्म को याद करके उसे डर लगने लगा। उफ कितना भयानक था वह भूत। अब उसने तय किया कि कुछ नया किया जाए। छोटे–मोटे हाथ मारने से कुछ नहीं होगा अकेले उसके बस की बात भी नहीं कोई बड़ा काम करना। फिर क्या करे वह। पुलिस और गाँव वालों को उसकी तलाश है ही उस डाकू भेषधारी उस भूत का मुखौटा लगाए लुटेरे की। इससे पहले कि वह पकड़ा जाए अच्छा है कि कोई बड़ा हाथ मारकर निकल लिया जाए। इस गाँव में कोई नया रूप धरना होगा। क्या करे। वह भगवान को सुमरने लगा। उसने उठकर पूजा स्थान में स्थापित श्री राम की फोटो के समक्ष दिया जलाकर प्रार्थना की। हे भगवान, हे श्रीराम मदद करो। हे राम, हे राम कहते हुए उसके दिमाग में एक नया विचार आने लगा। उसका चेहरा चमक उठा। उसने स्वयं को शाबासी दी। हाँ ये रूप ठीक रहेगा।

गाँव में कुछ आपराधिक प्रवृत्ति के नशेड़ी लोग भी थे। वे आपस में चर्चा कर रहे थे। उनके पास नशा करने के लिए पैसा नहीं था। अपनी जमीन–जायजाद वे नशे और बाजारु औरतों पर लुटा–चुके थे। घर से उन्हें धिक्कार कर भगा दिया गया था। वे आपस में योजना बनाने लगे। एक ने कहा– "ये आखिरी बोतल है शराब की। इसके बाद क्या होगा?"

दूसरे ने कहा– "अब तो जमा पूँजी भी नहीं है।"

तीसरे ने कहा– "हमें कोई उधार भी नहीं देगा।"

चौथे ने कहा– "नशे के बिना हम रह नहीं सकते"

पाँचवे ने कहा– "मैं कोठे की जीनत बाई के घुंघरुओं की झंकार सुने बिना जीवन व्यर्थ समझता हूँ।"

छठे ने कहा– "शराब–शबाब के लिए पैसा चाहिए। पैसा हमारे पास है नहीं।"

सातवे ने कहा– "एक युक्ति है मेरे पास। जिससे दौलत का ढेर लग जाएगा।"

"क्या" बाकी छह लोगों ने उसकी तरफ जिज्ञासा से पूछा।

गाँव में भूत और डाकू का हल्ला है ही। हम उसका भेष धरकर गाँव के ठाकुर के घर डकैती डालेगें। ठाकुर के घर लाखों का सोना तो होगा ही साथ नगद भी लाखों में ही मिलेगा।

"ये क्या बक रहे हो नशे में। ठाकुर कोई मामूली आदमी है" पहले ने कहा।

"उसके घर बंदूके हैं। नौकर–चाकर हैं। खूँखार कुत्ता है" दूसरे ने कहा।

"उस भेष बदलने वाले भूत, डाकू की हिम्मत नहीं हुई आजतक। फिर हम क्या चीज हैं?" तीसरे ने कहा।

"वह लुटेरा था। हम उसके नाम पर डकैती डालेंगे। हम सात है। पूरा गिरोह बनाकर हथियारों सहित जाएँगें। खून करेगें। गोली चलाएगें। लाखों की दौलत चाहिए। तो ये सब तो करना पड़ेगा।

जोखिम तो उठाना पड़ेगा। नहीं तो नशे की तलब में मर जाएँगे तड़फ–तड़फकर। कोई पानी के लिए भी नहीं पूछेगा।"

"तो आप हमारे सरदार हुए आज से " चौथे ने कहा।

"लेकिन हथियार कहाँ से लाएँगे" पाँचवे ने पूछा।

"इतना तो हम सबको करना होगा। भूत बनकर, डाकू बनकर चाहे चोरी करके बंदूकें इकट्ठी तो करनी होगी।" छठे ने कहा।

सातवाँ उनका लीडर बन चुका था उन्होंने तलवार, बंदूकें चुराई। कुछ उनके अपने घर में थी। उनके पिताओं के पास। कुछ उनके पास थी। इस तरह वे सातों अपराधिक प्रवृत्ति के नशा और यौवन के लिए इस भयानक कृत्य को करने के लिए तैयार हो गए। चार ने भूतों का रूप धरा। तीन ने डकैतों का। चार के पास बंदूक थी। तीन के पास तलवार। उद्देश्य एक ही था। जो भी सामने आए। मारते–काटते जाओ और हर हाल में तिजोरी और सोना लूटकर ऐश करो। जो भी आरोप लगेगें उस भूत बने व्यक्ति पर, उस भेष बदलते डाकू पर। हम पर कोई शक भी नहीं करेगा। सबूत और गवाह छोड़ना नहीं है। फिर उन्होंने उस भेष बदलने वाले लुटेरे का आभार व्यक्त किया। आखिर उनका प्रेरणा स्रोत तो वही था।

इस बार उसने राम का रूप रखा। वनवासी राम का। सिर पर जटा–जूट। काँधे पर धनुष बाण धारण करके। पैरों में खड़ाऊ। गले में रुद्राक्ष की माला और चेहरे को सौम्य अति सौम्य शांत बनाकर वह रात्रि के अंधेरे में ठाकुर के द्वार पर पहुँचा। दरबान ने उसे प्रणाम किया। उसने कहा– मुझे ठाकुर साहब से मिलना है। उसे अंदर जाने दिया गया। स्वर्ण आभूषणों से लदी ठकुराइन को देखा। ठकुराईन ने उसके चरण स्पर्श कर ठाकुर साहब के कमरे का रास्ता बता दिया। स्त्रियों को देखता लेकिन ये क्या? उसके मन में लूट की, छीनने की भावना क्यों खत्म होती जा रही है। वह ठाकुर के कमरे के पास पहुँचा। ठाकुर गहरी नींद में था। उसे तिजोरी दिखाई दी। ठाकुर के बिस्तर के सिरहाने चाबी रखी थी। उसने चाबी उठाई। चाबी उठाते समय उसके हाथ काँपने लगे। उसके मन में अजीब किस्म के विचार आने लगे। ये गलत है गुनाह है। अपराध है। दूसरे की संपत्ति पर उसका कोई अधिकार नहीं। फिर वह अपने विचारों को झटका देता। लूटना, चोरी करना उसका पेशा है। उसे रुपयों की जरूरत है। उसने चाबी उठाकर तिजोरी में लगा दी। तिजोरी खुली लेकिन उसके हाथ जैसे किसी ने पकड़ लिए हों। ये पाप है ये गुनाह है। दूसरों का धन लूटना राक्षसी कर्म है। वह क्यों पाप करके अपना लोक–परलोक बिगाड़ रहा है। मरने के बाद वह ईश्वर को क्या मुँह दिखाएगा। कैसे अपने आप से आँख मिलाएगा। क्या हो गया है मुझे। ये चित्त की मनोदशा क्यों बदलने लगी है। फिर उसने शराफत को कुचलकर पैरों तले रौंदा और जल्दी–जल्दी स्वर्ण, आभूषण, रुपयों से भरी तिजोरी को खाली करके अपनी पोटली में भरा। तभी गोली चलने की आवाज से ठाकुर साहब की नींद भी खुल गई। फिर एक और गोली चली। इस बार गोली के साथ एक स्त्री की चीख भी सुनाई दी। ठाकुर साहब इससे पहले अपनी दुनाली उठाते। दो बंदूकधारी उनके कमरे में घुस आए।

"कौन हो तुम लोग? क्या चाहते हो"।

"हम वही बहरुपिया हैं। लेकिन अब एक नहीं सात हैं। तुम्हारी औरत जेवर देने में आनाकानी कर रही थी। गोली मार दी उसे। अपनी और परिवार की जान बचाना चाहते हो तो तिजोरी की चाबी हमारे हवाले कर दो।"

ठाकुर ने उन्हें तिजोरी की चाबी दे दी। लेकिन तिजोरी खाली थी वे दोनो भड़क गए। गोली की आवाज सुनकर इसने तिजोरी से माल निकालकर कहीं और छिपा दिया है। बता माल कहाँ है? नहीं तो भेजा उड़ा दूँगा।"

"मुझे नहीं मालूम। सब कुछ इसी में था।" ठाकुर को भी आश्चर्य हुआ।"

"तुम झूठ बोल रहे हो" उन दोनों ने एक साथ कहा।

तभी उसके बाकी साथी भी आ गए।

"पैसा मिला" उन्होंने पूछा।

"तिजोरी खाली है।" दोनों ने कहा।

"ले चलो साले को बाहर और गोली से उड़ा दो" उनके सरदार ने कहा।

वे ठाकुर को घसीटते हुए बाहर ले गए। ठाकुर का दरबान गेट पर मृत पड़ा था। ठाकुर की पत्नी भी मर चुकी थी। बचे थे ठाकुर साहब उनका एक पुत्र और पुत्री। उन्हें घर के आँगन में खड़ा करके दरिंदों के सरदार ने कहा– "बताते हो या गोली से उड़ा दूँ तुम तीनों को"

तभी न जाने ईश्वरीय कृपा से गाँव के लोग और पुलिस ने मोर्चा संभालकर सातों दरिंदों को घेर लिया। चारों तरफ से पुलिस और गाँव वालों को हथियारों से घिरा देखकर वे घबरा गए।

"हथियार फेंककर अपने आपको पुलिस के हवाले कर दो। नहीं तो जान से मारे जाओगे" पुलिस अधिकारी ने कहा।

वे आपराधिक प्रवृत्ति के जरूर थे। लेकिन इसके पहले कोई बड़ा अपराध उन्होंने नहीं किया था। वे पक्के अपराधी होते तो ठाकुर और उनके बच्चों को ढाल बना सकते थे। लेकिन पुलिस की तनी हुई राइफलों से वे घबरा गए। पहले ने ये सोचकर खुद को गोली मार ली कि पकड़े जाने पर हत्या, डकैती की सजा से बेहतर मर जाना है।

एक और गोली चली। दूसरे ने स्वयं को ये सोचकर खत्म कर लिया कि जेल में न नशा मिलेगा। न स्त्री। वह तड़फ–तड़फ कर मरे इससे अच्छा खुद को मार ले।

शेष बचे पाँच पर पुलिस को शक हुआ कि कहीं ये भी कुछ ऐसा ही न कर बैठे या पुलिस पर फायरिंग न कर बैठे घबराहट में, सो पुलिस तेजी से उनपर झपट पड़ी। पाँचों गिरफ्तार हो गए।

इस बीच मौके का लाभ उठाकर बहरुपिया पोटली लेकर खिड़की खोलकर पाइप के सहारे उतरकर भाग गया।

अच्छे–बुरे का प्रश्न उसके दिमाग में उथल–पुथल मचा रहा था। लेकिन जैसे ही उसने राम का भेष उतारा। राम का मुखौटा एकतरफ रखा। वह आराम से लूट का माल गिनने लगा। ठाकुर साहब के घर पड़ी डकैती से घबरा भी गया था। गोलियों की आवाज अभी भी उसके कानों में गूँज रही थी। जेवरों से लदी ठकुराइन ने उसे कैसे प्रणाम किया था। थोड़ी देर बाद हत्यारों ने उन्हें लाश में बदल दिया था।

दूसरे दिन उसने गाँव में भ्रमण किया। लोगों के साथ बातचीत में उसे सारी घटना की जानकारी मिली। राम का रूप धरकर कोई आया था। ये बताने के लिए न दरबान जिंदा बचा न ही ठकुराइन। डकैतों में दो आत्महत्या कर चुके थे। पाँच पुलिस की गिरफ्त में थे ठाकुर साहब जान बची लाखों पाए के तहत तिजोरी का गायब रुपया भूल चुके थे। पत्नी के क्रियाकर्म के कामों में लगे हुए थे।

बहुरुपिया बिस्तर पर लेटा तो वह सोचने लगा आखिर उस रात उसे क्या हो गया था। क्यों उसके हाथ काँप रहे थे। कौन उसे रोक रहा था। ये गलत और सही के विचार उसके मस्तिष्क में क्यों आ रहे थे। कौन उसे समझा रहा था। थोड़ी सी देर हो जाती तो जान भी जाती और माल भी।

भूत का भेष धरकर, डाकू का भेष धरकर और भी तरह–तरह के मुखौटे पहनकर उसके मन में कभी ऐसे कमजोर विचार नहीं आए। तो फिर क्या उस समय पहने राम के भेष की वजह से ये सब विचार आ रहे थे लेकिन ऐसा कैसे संभव है। राजा के कपड़े पहनने से कोई राजा नहीं हो जाता। साधु का चोला पहनने से कोई साधु नहीं हो जाता। चलो ये शक दूर करने के लिए एक बार फिर राम का रूप धरकर देखा जाए। उसने सिर से लेकर पैर तक स्वयं को राम बनाया। पैरों में खड़ाऊ, जटा–जूट मस्तक पर चंदन, कंधे पर धनुष, बाण टाँगे पीतांबर पहना और अपने आपको आईने के सामने खड़ा किया। फिर चेहरे पर वैसी ही गंभीर मुस्कान लाने का प्रयास करने लगा। देखा कुछ नहीं हुआ। मात्र वहम था उसका वह थका–हारा वैसे ही बिस्तर पर लेट गया। थोड़ी देर बाद उसे उन हत्यारों में से एक का स्वर सुनाई दिया– "हम वही बहरुपिया है।" उसकी नींद उचाट हो गई। तो क्या मेरी नकल करके वे हत्यारे बने। उसने फिर आँखे मूँद ली। तुम हत्यारे

हो। तुमने एक नहीं कई हत्याएँ की हैं। हत्यारे तुम्हें आदर्श बनाकर हत्याएँ करते रहे। तुम्हारी वजह से दरबान की जान गई। तुम्हारी वजह से ठकुराईन की जान गई। तुम्हारी वजह से उन हत्यारों में से दो ने स्वयं को गोली मार ली। तुम्हारी वजह से पाँच लोग जेल में है। तुम एक नहीं हो। फिर उसने अपनी आँखे खोल ली। मैंने तो किसी की जान नहीं ली। मैं क्यों तनाव में रहूँ। जिनको मरना था मर गए उनके कर्म उनका भाग्य उसने फिर आँखें मूँद ली। तुम्हारी ही प्रेरणा से हत्याएँ हुईं। प्रत्यक्ष न सही। अप्रत्यक्ष रूप से तुम हत्याओं के दोषी हो। कितने परिवार नष्ट कर डाले तुमने। तुम चोर हो। लुटेरे हो। धिक्कार है तुम पर। वह समझ गया कि इस राम के भेष की वजह से ही सारी गड़बड़ हो रही है। उसने तुरंत राम का रूप त्याग दिया पर उसके बच्चों के विलाप ने उसका पीछा न छोड़ा। वह सोचने लगा। डकैतों और भूत प्रेतों का रूप धरने से लोग इतने प्रेरित हुए कि डकैती, हत्याएँ कर बैठे। स्वयं उस रूप में उसके अंदर भी कभी कोई विचार न उठा। राम का रूप धरने मात्र से उसे पाप–पुण्य का बोध होने लगा। यदि वह सच में राम के चरित्र और आदर्श को अपना ले तो न जाने उसके जैसा चोर, लुटेरा क्या बन जाए। फिर बेईमानी से धन ही तो बढ़ना है। शेष सब तो पीछे छूट जाता है। धन के साथ ढेरों दुर्गुण और भय आते हैं सो अलग। उसकी आत्मा उसे कचोटने लगी। उसका मन उसे दुत्कारने लगा। उसका दिमाग उससे कहने लगा। तुम नीच हो। पापी हो। नराधम हो। तुम दुनिया से तो छिप जाओगे। लेकिन स्वयं को क्या उत्तर दोगे? वह आईने के सामने आया तो उसे अपनी छवि की जगह एक काला नाग दिखाई दिया। जो धन के ढेर पर कुंडली मारकर बैठा हुआ है। लोग उसे पत्थर मार रहे हैं। लेकिन वह नाग जख्मी होकर भी स्वर्ण के ढेर से नहीं हट रहा है। इस नाग को धन से इतना मोह क्यों? इस स्वर्ण का, धन का इसके लिए क्या उपयोग और लूट, चोरी से जोड़े गए इस धन का उसके लिए क्या मोल? सिवाय भय पैदा करने के। क्या वह धन की ढेरी पर बैठा हुआ काला नाग है।

उसे पाप का बोध होने लगा। उसके अंदर पुण्य का प्रकाश फैलने लगा। उसने सारे रूप, सारे मुखौटे इकट्ठा करके जला दिए। ठाकुर साहब का सारा स्वर्ण–आभूषण, रुपया उनके घर पर पहुँच गया और बहुरुपिया एक श्रेष्ठ आदमी बनकर एक मजदूर बनकर खेतों में काम करने लग गया। उसके बाद फिर वह कभी बहुरुपिया न बना। उसके अंदर की दृष्टि बदल चुकी थी। इसके बाद न लोगों को गाँव में भूत दिखा न प्रेत न कोई अन्य रूप में लुटेरा न डाकू। बहुरुपिया लुटेरा मर चुका था और वह एक मेहनती आदमी बनकर खेतों में मजदूरी करने लगा था।

– पाटनी कालोनी, भरत नगर, चंदनगाँव, छिंदवाड़ा, मध्य प्रदेश–480001

❑❑❑

यह समय भी निकल गया

रमेश मनोहरा

'तू फिर पीकर आ गया।" आकर रामकली से रहा न गया, डाँटती हुई फिर बोली– कितनी बार कहा, पीनी छोड़ दे। मगर मेरी बात तेरे भेजे में नहीं बैठती है। एक कान से सुनता है, दूसरे कान से निकाल देता है।

"तू कौन होती है मुझे दारू पीने से मना करने वाली।" लड़खड़ाते हुए कदमों से रामलाल बोला।

"मैं तेरी जोरू होती हूँ, समझे?"

"जोरू है तो जोरू की तरह रह, जब मैं दारू पीकर आता हूँ तब रोज–रोज नेता की तरह भाषण सुनाती है मुझे, बाँझ कहीं की एक बच्चा भी पैदा नहीं कर सकी।" रामलाल ने जब यह बात कही, तब रामकली कुछ न बोली, जब भी वह दारू पीकर आता है, यह बात कहकर उसका मुँह बंद कर देता है, आगे रामलाल बोला– ओ बाँझ, अब कभी मत कहना कि मैं दारू पीकर आया हूँ। मुझे सब कहते हैं रामलाल कब बाप बनोगे, मैं उनको क्या जवाब दूँ? सब तुझे बाँझ समझते हैं मैं भी लोगों के ताने सुनते–सुनते परेशान हो गया हूँ। इस गम में दारू पीता हूँ। तब तू मुझे भाषण सुनाती है बाँझ कहीं की। अब तो मैं तुझे छोड़ दूँगा, किसी दूसरे के साथ शादी कर लूँगा, हाँ–हाँ तुझे छोड़ दूँगा। कोई वंश चलाने वाला भी तो चाहिए। कहकर रामलाल बिस्तर पर सो जाता है, पलभर में उसे नींद आ जाती है। वह उसे रजाई ओढ़ा देती है। फिर अपने नसीब को कोस कर कुछ देर तक भीतर ही भीतर रो लेती है। प्रतिदिन रामकली की यही कहानी है।

वैसे भी वह रामलाल से शादी करना नहीं चाहती थी, मगर उसके काका ने उसके साथ शादी करने के लिए मजबूर कर दिया। बचपन में ही उसके माता–पिता गुजर गए थे, अतः उसके काका ने उसे पाला था, वह भी अपने काका से मुक्ति चाहती थी, अतः रामलाल से शादी मजबूरीवश कर ली थी। उसकी शादी के बाद काका ने कभी भी उसकी तरफ नहीं देखा, उसने भी फिर काका के यहाँ जाना पसंद नहीं किया रामलाल भी अकेला था। उसके माँ–बाप भी बचपन में गुजर गए थे। उसे भी उसके बड़े भाई ने पाला था। रामलाल आवारा, निठल्ला था, मगर बड़े भाई ने शादी करके यह सोचा था, अब शादी हो गई है, तो कोई काम धंधा करेगा। मगर उसका निठल्लापन शादी के बाद भी जारी रहा। तब उन दोनों को घर से निकाल दिया। वह तो अच्छा हुआ, शादी के पहले ही उसके काका ने नगरपालिका में चपरासन पद पर उसे लगा दिया था, अतः उन्हें निकालने पर उसे कोई तकलीफ नहीं हुई। बड़े भाई ने भी उसके हिस्से का मकान उन्हें देकर स्वतंत्र कर दिया था। कुछ दिनों के लिए रामलाल काम की तलाश में भटकता रहा, अंततः एक दुकान वाले ने अपने यहाँ नौकर रख लिया। तब उसके जीवन की गाड़ी पटरी पर दौड़ने लगी।

भाषा ISSN 0523-1418

आज उसकी शादी को 6 साल से अधिक हो गए है। मगर उसकी कोई संतान नहीं हुई। तब वह उसे बाँझ कहकर बुलाने लगा। वही क्या, बस्ती की औरतें भी उसे बाँझ समझ रही थीं। बस्ती की रामप्यारीबाई जो मौसी के नाम से जानी जाती है, वह बस्ती की मंथरा बनी हुई थी। इधर–उधर लड़ाने का काम प्रायः करती थी। सबसे अधिक आनंद रामप्यारीबाई मौसी को ही आता था, ऐसे में एक दिन रामलाल से कहती है– तेरी जोरू तो बाँझ है रामलाल, शादी के 6 साल बीत गए उसके बाद भी संतान अभी तक नहीं हुई है। अब होना भी नहीं है इसलिए कहती हूँ कि उसे छोड़ दे। नहीं मौसी। रामलाल ने इनकार करते हुए कहा– मैं नहीं छोड़ सकता हूँ उसे "देख रामलाल, तेरे आगे, न पीछे कोई नहीं है, अरे वंश चलाने के लिए कोई तो चाहिए।" रामप्यारी एक बार फिर समझाती हुई बोली– "फिर बुढ़ापे में कोई तो सहारा चाहिए तुझे कौन देगा सहारा।" शायद रामलाल को यह बात गले में उतर गई अतः हाँ मे हाँ मिलाते हुए बोला– तुम ठीक कहती हो मौसी, यह बात मेरी समझ में नहीं आई। "इसलिए कहती हूँ, छोड़ दे अपनी जोरू को वह बाँझ है, बाँझ ही रहेगी और बाँझ को घर में नहीं रखना चाहिए।" रामप्यारी मौसी की इस बात का असर रामलाल पर चढ़ चुका था, वह इस पर विचार करने लगा। जब उसने कोई जवाब नहीं दिया तब रामप्यारी मौसी फिर बोली– क्या सोच रहा है रामलाल?

"ठीक कहती हो मौसी।"

"बस छोड़ दे फिर हरी कोख वाली जोरू लेकर आना, जिससे कोख हरी हो जाएगी।"

"मगर रामकली को छोड़ने के बाद मुझसे कौन करेगा शादी?"

"अरे मेरी बहन की लड़की है ना, तू कहे तो उससे बात चलाती हूँ।" राम प्यारी मौसी ने उसके भीतर पूरी तरह इस बात को भर दिया था, फिर आगे बोली– क्या सोच रहा है रामलाल?

"इसके लिए जोरू से पहले बात कर लेता हूँ।"

"अरे जोरू से क्या बात करना, कह दे तू बाँझ है, इसलिए छोड़ रहा हूँ।" समझाती हुई मौसी बोली। तब यह बात पूरी तरह से रामलाल के दिमाग में बैठ चुकी थी, अतः बोला– ठीक कहती हो, मौसी उसे मैं छोड़ दूँगा।

कहकर रामलाल मौसी को आश्वस्त करके चला गया। मौसी खुश हो गई, उसका तीर सही निशाने पर बैठा। मगर रामलाल कैसे रामकली को छोड़े, इसी पर विचार करता रहा। उसकी रामकली से कहने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी। अतः एक दिन रामलाल बोला– देख रामकली, यह तो साबित हो गया है, तू बाँझ है?

"तू कैसे कह सकता है कि मैं बाँझ हूँ।"

"अरे शादी के 6 साल हो गए। अभी तक तेरी कोख हरी नहीं हुई। जबकि औरत के शादी के सालभर बाद ही बच्चा हो जाता है।"

"तू कहना क्या चाहता है।"

"तुझे छोड़कर दूसरी शादी करना चाहता हूँ।"

"क्या कहा?" गुस्से से उफन पड़ी रामकली– तू मुझे इसलिए छोड़ना चाहता है कि मैं तेरे बच्चों की माँ न बन सकी।

"हाँ हाँ तू बाँझ है, इसलिए मेरे बच्चे की माँ न बन सकी। इसलिए तुझे छोड़ना चाहता हूँ।"

"अरे मुझे बाँझ कहने से पहले खुद अपने बारे में सोच, क्या तू बाँझ नहीं हो सकता है?

"क्या कहा, मैं बाँझ हूँ।"

"हाँ हाँ तू बाँझ" चिल्लाकर रामकली बोली– सारा दोष तुम और तुम्हारे बस्ती वाले मुझे दे रहे हैं।

"हाँ हाँ तुझे ही दे रहे हैं, क्योंकि तू बाँझ है।"

"मगर तू मुझे डॉक्टर के पास ले गया था?"

"हाँ हाँ ले गया था, लेकिन डॉक्टर ने तुझे बाँझ नहीं बताया।" रामलाल गुस्से से बोला– यही कहना चाहती है ना तू।

"हाँ हाँ, यही कहना चाहती हूँ। क्या आदमी बाँझ नहीं हो सकता है।" रामकली उसी तरह चिल्लाकर बोली।

"अरे मर्द कभी बाँझ नहीं होता, बाँझ होती है औरत।"

"तुम जैसे मर्द बाँझ का सारा आरोप औरत पर लगाकर बचना चाहते हो।" रामकली जरा नरम

पड़ती हुई बोली– इसी कारण तू मुझे छोड़ रहा है। छोड़ दे, मगर यह बता किससे शादी करेगा, कोई लड़की देखी है?

"हाँ चल रही है बात?"

"किससे चल रही है बात?"

"वही रामप्यारी मौसी चला रही है, उसकी बहन की लड़की से। "अच्छा तू नहीं, मौसी बोल रही है, उसने तेरे कान भरे है। अरे वो मौसी जो बस्ती की मंथरा बनी हुई है, उसकी तू हाँ में हाँ मिलाकर मुझे बाँझ समझकर छोड़ना चाहता है ताकि मौसी अपना उल्लू सीधा कर सके।"

"क्या करूँ तेरी कोई संतान नहीं हो रही है? इसलिए वंश चलाने के लिए दूसरी शादी करना जरूरी है।"

"हाँ हाँ कर, यदि उससे भी संतान नहीं हुई, तो उसे भी छोड़कर तीसरी से शादी कर लेना।" रामकली मुस्काती हुई बोली– एक बात कान खोलकर सुनले रामलाल यदि तू मुझे छोड़ेगा तब मैं अदालत तक तुझे ले जाऊँगी।

यह कहकर उस दिन रामलाल के भीतर इतना डर भर दिया था, कि वह कुछ न बोल सका। मगर बस्ती की रामप्यारी मौसी उसके कान भरती रही। आगे रहकर रामप्यारी मौसी खुद ही अफवाह उड़ाती रही कि रामलाल रामकली को छोड़कर दूसरी शादी कर रहा है। अरे रामकली बाँझ औरत हैं उसकी कभी संतान नहीं होगी। फिर रामप्यारी मौसी भी यही चाहती थी, कि रामलाल उसे छोड़े और अपनी बहन की बेटी से उसकी शादी कराकर अपना एफ दायित्व पूरा करे। इसलिए रामलाल को उसके खिलाफ बाँझ कहकर भड़काती रही। रामलाल भी मौसी के बहकावे में आ गया। रामकली को वो बार–बार बाँझ कहकर अपमानित करता रहा। इसी बहाने रोज रोज दारू पीने लगा। मगर उसके जीते जी वह कभी सौतन नहीं लाने देगी। उससे ब्याह किया है, ऐसे कैसे छोड़ देगी, और भी औरतें हैं इस दुनिया में जिसकी कोई संतान उम्र भर नहीं है। क्या उन्होंने छोड़ दिया? ये सारी शरारत उस रामप्यारी मौसी की है। उसे ऐसा सबक सिखाएगी कि फिर वह कभी भी रामलाल को बहकाएगी नहीं।

ऐसे ही उस दिन रामप्यारी मौसी से उसकी मुठभेड़ हो गई। वह बोली– क्यों मौसी, मेरा ही घर तुझे मिला?

"क्या कहना चाहती है तू।" रामप्यारी मौसी उसी तरह चिल्लाकर बोली।

"मेरे मर्द से अपनी बहन की बेटी की शादी करवाना चाहती है तू।

"तेरा मर्द तुझे बाँझ मानता है, इसलिए उसने आगे रहकर मेरी बहन की लड़की से ब्याह करने की इच्छा जताई। उसमें मेरा क्या दोष?" रामप्यारी मौसी ने अपनी सफाई दी।

"अच्छा, तेरा कोई दोष नहीं है।"

"हाँ हाँ सच कहती हूँ, मेरा कोई दोष नहीं है।" एक बार फिर रामप्यारी मौसी अपने को निर्दोष मानती हुई बोली– जब तेरा मर्द तेरे कब्जे में नहीं है, तब मैं क्या करूँ?

"झूठ मत बोलो मौसी ये सारी आग तेरी लगाई हुई है।" रामकली क्रोध से बोली– "तू लड़ाना चाहती है। वैसे भी तू बस्ती की मंथरा बनी हुई है। खबरदार यदि अपनी बहन की लड़की से मेरे मर्द की शादी कराई तो...!"

"रहने दे रहने दे ऐसे कई देखे हैं मैंने जब मियाँ बीबी राजी, तो क्या करे काजी। अपने मरद को संभाल। उसको कोई संतान दे ताकि एक ही खूँटे से बँधा रहे वो। खुद तो बाँझ है, और अपने मर्द को बाँझ बताती है।"

"ए मौसी जबान मत लड़ा।"

"क्या कर लेगी तू, बोल क्या कर लेगी।" इस समय मौसी का गुस्सा भी सातवें आसमान पर चढ़ चुका था। अतः वो भी उस समय खूंखार शेरनी बन गई थी। आगे बोली– जो औरत अपने मर्द को नहीं संभाल सकी, वो औरत नहीं औरत के नाम पर कलंक है।

जब रामप्यारी मौसी ने यह शब्द कहे, तब रामकली गुस्से से लाल–पीली हो गई। फिर क्या दोनों एक दूसरे को गालियाँ दे रही थीं, बस्ती के लोग इकट्ठे होकर गालियों का आनंद ले रहे थे, इस समय दोनों कम नहीं पड़ रही थीं। बात उन तक सीमित नहीं थी, अब बात खानदान तक पहुँच चुकी थी, दोनों एक दूसरे को जलील करने

पर तुली हुई थीं। बस्ती के लोग हँस रहे थे, बल्कि कुछ लोग ऐसे भी थे जो उनकी लड़ाई में घी का काम कर रहे थे। जब नौबत हाथापाई तक पहुँच गई तब बस्ती के कुछ समझदार लोगों ने उन्हें समझा–बुझाकर छुड़ाया मगर फिर भी उनका गुस्सा शांत नहीं था, क्योंकि क्रोध के आवेग में आदमी सब कुछ भूल जाता है, इस समय दोनों का क्रोध चरम सीमा पर था। जब लड़ाई के सारे शब्द, और गालियाँ खत्म हो गईं तब वे दोनों क्रोध से गुर्राती हुई अपने दड़बे में घुस गईं। मगर बस्ती वालों के लिए कई सवालात छोड़ गईं। वैसे मौसी की आदतों को सब जानते थे, बस्ती में लड़ना उनका काम था। किसी को भी वो सुख से नहीं देख सकती थी। रामलाल और रामकली के सुख को वह न देख सकी। रामकली को बाँझ साबित करके रामलाल को अपनी ओर मिला लिया। यह सब बस्ती वाले भी जानते थे। अतः समझते हुए भी चुप रहते थे।

शाम को जब रामलाल झोपड़ी में आया, आँखों में क्रोध था, अतः रामकली से क्रोध में आकर बोला– रामकली, मैं यह क्या सुन रहा हूँ?

"क्या सुना तुने?" रामकली ने प्रश्न पूछते हुए कहा।

"तुने रामप्यारी मौसी से झगड़ा किया।"

"मैंने नहीं उसने किया।"

"झूठ क्यों बोलती है? आगे रहकर तूने ही तो उससे बात की है।"

"हाँ की है, तू मौसी का पक्ष क्यों ले रहा है? बोल, चुप क्यों हो गया, तू इसलिए चुप है, कि उसके कहे अनुसार मौसी की बहन की लड़की से शादी कर रहा है।"

"हाँ कर रहा हूँ तुझ जैसी बाँझ को कब तक सहन करूँ। मुझे वंश चलाने के लिए संतान चाहिए। अब तुझ बाँझ के संतान होने से रही।"

"कैसे कह सकता है कि मैं बाँझ हूँ" कुछ क्षण रुककर फिर रामकली बोली– हो सकता है, हमारे संतान हो भी जाए। "अरे तेरे संतान अब नहीं होगी?" इनकार करते हुए रामलाल बोला– इसलिए तुझे छोड़ रहा हूँ, और मौसी की बहन की लड़की से शादी कर रहा हूँ। समझी "हाँ–हाँ जाकर कर, मै भी देखती हूँ, मेरे रहते इस घर में कैसे मेरी सौतन आ जाए।"

"तेरी सौतन तो आकर रहेगी, मुझे भी तो बाप का अधिकार चाहिए।" कहकर रामलाल ने अपनी बात कह डाली। आगे फिर बोला– सुन ले कान खोलकर, अब यदि कभी मौसी से लड़ी तब तेरी हड्डी पसली तोड़ दूँगा, इस बात को अच्छी तरह समझ ले।

वह कुछ कहे, उसके पहले ही उसके दोस्त माँगीलाल ने उसे बुला लिया, वह तत्काल बाहर निकल गया। अब दोनों कलाली में बैठकर दारू पीएँगे, कई बार झोपड़ी में आकर दारू पी। फिर भी वह उससे कुछ नहीं कहती। रामप्यारी मौसी के पास उसका जाना अब भी जारी था। उसे उसकी बहन की बेटी से शादी करनी थी, अतः उसी मोह में बँधा हुआ था, इसी बात को लेकर उनके बीच आए दिन झगड़े होते थे, वह उसे कहता है, कि घर छोड़कर अपने काका के यहाँ चली जा। मगर वह नहीं जाती। वह जानती है, औरत जिसके साथ एक बार बँध जाती है, फिर उम्र भर वह उसी के साथ बँधी रहती है। इसी पर वह अब तक कायम थी अतः मार खाकर भी वह नहीं निकलती थी। जबकि रामप्यारी मौसी ने यह कह रखा है, जब तक उस बाँझ रामकली को घर से नहीं निकालेगा, तब तक वह उसकी बहन की लड़की से शादी की बात नहीं करेगी। बस घर आकर रामलाल उसे मारता है, पीटता है ताकि वह डर के मारे घर छोड़कर चली जाए, मगर वह घर को छोड़कर जाने को तैयार नहीं थी।

तभी पड़ोसन लक्ष्मी आकर बोली– अरे रामकली क्या सोच रही है, तब वह अतीत से वर्तमान में लौटी। फिर बोली– अरे लक्ष्मी बहिन, नसीब को कोस रही हूँ।

"सचमुच, तेरे साथ रामलाल अन्याय कर रहा है। कहाँ गया वो?"

"वह दारू पीकर कुंभकरण की नींद सो रहा है, राक्षस कहीं का।" भद्दी सी गाली देती हुई, रामकली बोली– सारी मर्दानगी मुझ पर ही दिखाता

है, मुझे तो पैरों की जूती समझता है, हरामी। मुझे बाँझ कहकर रोज–रोज अपमान करता है, और कहता है, चली जा, खुद को बाँझ क्यों नहीं समझता है। जबकि डॉक्टर ने हम दोनों में कोई खोट नहीं बताई। अब संतान क्यों नहीं हो रही है, यह ऊपर वाला जाने।

"यह समय भी निकल जाएगा, रामकली, थोड़ा धीरज रखो। यह रामलाल, रामप्यारी मौसी के बहकावे में जरूर आ रहा है। मगर एक दिन रामप्यारी मौसी से भी उसका मोह भंग हो जाएगा।

"अरे वो मौसी मर जाए तो पाप कटे।" एक गाली देती हुई रामकली बोली– उस नासपिटी ने घर में आग लगा रखी है।

"ऐसा मत बोल रामकली।" समझाती हुई लक्ष्मी बोली।

"क्यों न बोलूँ वही तो रामलाल को सीखा रही है।"

"इसमें मौसी का नहीं, रामलाल का दोष है। मौसी लाख उसे लालच दे, मगर रामलाल क्यों आया उसके बहकावे में।"

अरे अपना ही सिक्का खोटा है, तब परखने वाले का क्या दोष है बहिन। अभी रामकली यह बात कह रही थी, कि उसे खट्टी सी डकार आ गई, तब वह तत्काल झोपड़ी से बाहर निकली, पीछे से लक्ष्मी भी गई, मगर रामकली उल्टी कर रही थी, उसे उल्टी करते देखकर लक्ष्मी ने पहले तो सोचा, शायद रामकली की तबीयत खराब है, मगर ऐसी उल्टी देखकर वह समझ गई और प्रसन्नता से बोली– अरे रामकली तुझे बधाई, तू माँ बनने वाली है।

"क्या कहाँ, मैं माँ बनने वाली हूँ" खुशी से . चहकती हुई रामकली बोली।

हाँ रामकली, तू माँ बनने वाली है। ऐसी उल्टी यही संकेत देती है। लक्ष्मी की यह बात सुनकर रामकली की खुशियों का पारावार न था।

रामकली को जब डॉक्टर द्वारा चैक कराया गया, तब उसने भी यह पुष्टि कर दी कि वह माँ बनने वाली है। फिर क्या यह बात पूरी बस्ती में फैल गई। जब रामप्यारी मौसी को मालूम हुआ, तब उसे सबसे अधिक दुख हुआ। उसकी योजना फलीभूत न होते देखकर उसने फिर रामलाल के कान भरने शुरू कर दिए। रामलाल खुश तो है, कि वह बाप बनने वाला है। मगर रामप्यारी मौसी ने जो कुछ कहा, उस पर उसे यकीन हो गया है। उसने रामलाल के कान भरते हुए कहा– यह संतान तेरी नहीं किसी और की है। अतः नाराजगी से रामकली से बोला– तेरे पेट में किसका बच्चा पल रहा है। मेरे रामलाल का। खुश होकर रामकली बोली

झूठ बोलते हुए शर्म नहीं आती, अरे जिसकी कोख 6 साल तक न भर सकी, बोल किसका बच्चा है तेरे पेट में, गिरा दे उसे।

यह तू नहीं, रामप्यारी मौसी बोल रही है। आवेश में आकर रामकली बोली– उसने तेरे कान भर दिए हैं, तभी तो तू उसकी भाषा बोल रहा है।

मैं किसी और की औलाद नहीं चाहता हूँ। इसलिए कहता हूँ कि गिरा दे।

मगर मुझे मालूम है, यह संतान मेरे रामलाल की है। मैं इसे जन्म दूँगी, कर ले उस नासपिटी की बहिन की लड़की से शादी, मैं तो अपनी औलाद के सहारे जी लूँगी, जा चला जा। तुझे आजाद करती हूँ।

मगर इसी बीच लक्ष्मी आ जाती है, उनका झगड़ा देखकर कहती है– किसे भगा रही है रामकली।

"इस रामलाल को।"

"क्यों भला, इसने क्या किया?"

"कहता है मेरे पेट में जो औलाद पल रही है, वो इसकी नहीं किसी और की है। और मुझे मालूम है, यह उस नासपिटी रामप्यारी मौसी के बहकावे में आ गया है। कर ले उसकी बहन से शादी।"

अरे ऐसे कैसे कर ले शादी, शादी करना कोई गुड़ियों का खेल है क्या, देख रामलाल कान खोलकर अच्छी तरह सुन ले, सती सावित्री रामकली पर शक पैदा मत कर। ऐसी पत्नी तुझे ढूँढने पर भी नहीं मिलेगी। फिर तुझे तो घमंड होना चाहिए, कि तुझे कमाऊ पत्नी मिली है।"

कमाऊ हुई तो क्या हुआ, उसके पेट में ना जाने किसका पाप पल रहा है।

खबरदार जो ऐसी बात मुँह से निकाली, ये तेरी औलाद है, तेरी।

मेरी है, तो शादी के तत्काल बाद क्यों नहीं हुई, सब लोग इसे बाँझ कहते है, और बाँझ की औलाद कैसे हो गई।

तू सोच बाँझ के क्यों हुई, यदि यह बाँझ होती तो तब क्यों बच्चे की माँ बनती। यदि तू इसे दूसरे का बच्चा साबित करने पर तुला है, इसका मतलब लोग यह समझेंगे तू बाँझ है। आगे रहकर अपनी खुद ही बेईज्जती करा रहा है। ऐसे कई पति–पत्नी हैं जिनकी 10 साल बाद संतान होते हुए देखी है मैंने। फिर रामकली की कोख में जो बच्चा पल रहा है वह तेरा है। इस बात को लेकर छोड़ देगा, तब बदनामी तेरी होगी। इस पर सोचा है कभी तूने।

सच लक्ष्मी, यह बात तो मैंने सोची ही नहीं थी।

तू कैसे सोचता, तेरी अक्ल पर रामप्यारी मौसी ने पत्थर डाल दिए थे। आदमी को अपनी जोरू पर इतना विश्वास तो करना ही चाहिए मगर तू है अविश्वासी। समझाती हुई लक्ष्मी बोली, फिर एक बात कान खोलकर सुन ले, रामलाल तुझे जोरू कमाई वाली मिली है, तुझे भी खिला सकती है। यदि फिर भी तू चाहता है कि रामकली की कोख में किसी दूसरे का बच्चा पल रहा है, तो इसे छोड़कर कर ले रामप्यारी मौसी की बहन की लड़की से शादी।

नहीं लक्ष्मी, तुमने मेरी आँखें खोल दी, मैं रामकली पर कभी शंका नहीं करूँगा, रामकली की कोख से जो भी बच्चा होगा, अपना बच्चा मानकर अपनाऊँगा। रामकली मुझे माफ कर दे, अब कभी ऐसी बात नहीं करूँगा।

"अरे तुम जैसे मर्द का क्या भरोसा, मरना तो हर बार औरत को पड़ता है। रामकली नाराजगी से बोली फिर भीतर ही भीतर वह खुश भी थी। अब आया ऊँट पहाड़ के नीचे।

अब मैं कभी तुझे बाँझ नहीं कहूँगा। एक बार फिर क्षमा माँगते हुए रामलाल बोला– तुझे विश्वास दिलाता हूँ, कि अब मैं कभी भी रामप्यारी मौसी से नहीं मिलूँगा।

"मिलेगा, जरूर मिलेगा।" रामकली कृत्रिम हास्य मुस्कान बिखेरती हुई बोली, मगर रामलाल ने उसकी छिपी हँसी को पहचान लिया, अतः मुस्काते हुए रामलाल बोला– ठीक है रामकली, तू जो कुछ समझ ले, मगर मेरी रामकली, छिपी हँसी देखकर लगता है कि तूने मुझे माफ कर दिया।

तब तीनों के अधरों पर हास्य मुस्कान फैल गई।

– शीतला माता गली, जावरा, जिला रतलाम, मध्य प्रदेश–457226

❑❑❑

नदिया की तरह जिया

राधेश्याम बंधु

पाषाणों में भी
हमने, नदिया की तरह जिया
जो भी मिला नीर ममता का, जग को बाँट दिया।

पाना ही पाना जीवन का
अंतिम लक्ष्य नहीं,
सब कुछ संचित कर लेना
भी अंतिम सत्य नहीं।

प्यार बाटँते
चलो हवा से हमने सीख लिया।

मेघ, झील सागर से जो
उपहार प्यार पाता
धरती के तपते उर पर
बन मेह बरस जाता।

वह मोती
बन गया, अश्रु को जिसने प्यार किया।

देना ही देना जिसको माँ
प्रकृति कहाती है
डाल काटने वाले को भी
छाया देती है।

नीलकण्ठ
बन गया, दर्द का जिसने गरल पिया,
पाषाणों में भी हमने, नदिया की तरह जिया।

– बी3–163, यमुना विहार, दिल्ली–110053

❑❑❑

भाषा ISSN 0523-1418

लघु कविताएँ

केशव शरण

जुते हुए खेत में

मैं पेड़ के
नीचे बैठा था
और मेरे सामने खेत थे
जुते हुए

इनके मालिक
इनमें क्या बोयेंगे
मुझे कुछ भी अनुमान नहीं था।
मकई, चना, रहर, गेहूँ, धान
सब गड्ड–मड्ड हो रहे थे।
कई कोशिशों के बाद भी
जब नहीं सुलझी यह पहेली
तो मैंने समाधान का शब्द खोजा–सपने।

वे सपने बोएँगे
अपने।

असमंजस

किसको फोन मिलाऊँ ?
किससे मिलने जाऊँ

आत्मीयता
अपने गाँव गई तो
लौटी नहीं
और प्रेम भी
अपने गाँव से आया नहीं,
फोन भी
दोनों के 'स्वीच ऑफ़' बता रहे हैं

घमंड
और ईर्ष्या तो मिल जाएँगे
नगर में
मगर
मन के दो हिस्से हो जा रहे हैं
उनको लेकर

– एस 2/564 सिकरौल, वाराणसी–221002

❑❑❑

हम बनना चाहते हैं मुंशी प्रेम चंद

लाल देवेंद्र कुमार श्रीवास्तव

हम बनना चाहते हैं मुंशी प्रेमचंद
साहित्य का हम बनना चाहते हैं भारतेंदु हरिश्चंद्र
लिखना चाहते हैं गरीब शोषितों की दास्तान
बनाना चाहते हैं साहित्य में एक नई पहचान
पर आखिर क्यूँ! नहीं वो कथानक ला पाते हैं
क्यूँ! नहीं वो कहानी लिख पाते हैं
महादेवी वर्मा की तरह नारियों की पीड़ा को
क्यों! नहीं दे पाते हैं ऐसे शब्द
क्यूँ! नहीं ला पाते वो संवाद
जो वर्षों तक लोग रखें याद
क्यों नहीं क्रांतिकारी रचनाओं का करते हैं सृजन
जिससे समाज की दिशा व दशा बदलने के लिए शब्दों में हो वज़न
हमारा लिखा हुआ लोग नहीं रखते याद
और लिखने के लिए क्यूँ नहीं करते लोग फ़रियाद
हम अगर करें मनन और चिंतन
अपने साहित्य का करें विश्लेषण
तो हमें पता चलता है कि
हम तो वर्तमान में बस!
आत्ममुग्धता के लिए लिख रहे हैं
साहित्य के लिए नहीं
बस! अपने लिए ही जी रहे हैं
इससे आगे बढ़ कर हमें विचारना होगा
समाज की कुरीतियों, आडंबरों व समस्याओं में जाना होगा
भ्रष्टाचार, आतंकवाद, निजस्वार्थवाद के विरुद्ध
तेजधार शब्दों से नीति नियंताओं को
सोचने के लिए मजबूर करना होगा
नारी अस्मिता का सवाल उठाना होगा
शिक्षा, संस्कृति, सभ्यता, संस्कार आदि का
अपने शब्दों से ताना बाना बुनना होगा
तब हमें पढ़ने के लिए लोग होंगे मजबूर
हमें याद करेंगे जरूर

– ग्राम–कैतहा, पोस्ट–भवानीपुर, जिला–बस्ती, उत्तर प्रदेश–272124

❑❑❑

भाषा ISSN 0523-1418

क्वारेंटाइन अनुभूति

डॉ. अंजू सिंह

एकांत का पल
आत्ममंथन, आत्मसाक्षात्कार का पल
विस्मृति से स्मृति का पल
कुछ पाने कुछ खोने का पल
कुछ गुनने कुछ बुनने का पल
जीवन पृष्ठ उलटने का पल
तम से उजियारे का पल
मन वीणा झंकृत करने का पल
झंझावतों से लड़ने का पल

यह मौन चिंतन का पल
अपलक साधना का पल
नम आँखों से जीने का पल
डगमगाते कदमों को स्थिर रखने का पल
ये पल, वो पल, हर पल
दस्तक देता हर पल
घड़ी की सूइयों सा टिक–टिक करता
जीवनधारा का वाहक बन
नई संजीवनी की धारा बहाएगा

बस कुछ ही पलों के बाद
ये एकांत का पल
किसी पल में विलीन हो जाएगा
एक खुशगवार
जीवन की शुरूआत
और नए पलों की चाहत
क्रमशः बढ़ती चली जाएगी।।

– सहायक निदेशक, कें. हि. नि., पश्चिमी खंड–7, आर. के. पुरम, नई दिल्ली

❑❑❑

यादों की छाया

मूल लेखक : तमिलमगन
अनुवाद : डॉ. वी पद्मावती

मैं शांतिपूर्वक आँखें बंद किए हुआ था। सभी चिकित्सक इस विश्वास के बिना मेरी जाँच कर रहे थे कि मेरे प्राण हैं। मेरा शरीर नहीं हिल रहा था। दस घोड़ों की शक्ति से युक्त पानी खींचने वाली मशीन को अपने कंधे पर उठाकर ले जाने की शक्ति से युक्त मेरे कंधे अब कोयले के मैल से युक्त बेकार कपड़े की तरह थे। मैं अपनी पलकों को भी हिला नहीं पाया। मेरे चारों ओर चार–पाँच डाक्टरों की मौजूदगी को बहुत सोच–विचार करने के बाद ही मैं जान पाया। सब लोग अपने चिकित्सा के ज्ञान के सहारे इस बात को निश्चित रूप से बोल रहे थे कि मेरा बचना असंभव है।

जिस डॉक्टर ने बताया कि मैं लगभग मर गया हूँ तथा मेरी चिकित्सा करना ही बेकार है तो उसकी आवाज़ से ही मैंने अंदाजा लगाया कि वे लंबे कद से युक्त अंग्रेज की तरह होंगे। मैं उसके लिए कोई उत्तर नहीं दे पाया। अपनी जीभ या होंठ को हिलानेवाली कोशिशें नाकाम हुईं। बताया जाए तो मुझे इस बात का पता नहीं था कि इसके लिए कैसे कोशिश की जाए। मैं इस बात को बता नहीं पाया कि मैं जिंदा हूँ।

आक्सीजन देने वाली मशीन से मेरे मुँह और नाक बंद किए गए। मैं बहुत कष्ट उठाते हुए श्वास ले रहा था।

"क्या आपने इस बात को बता दिया कि यदि वेंटिलेटर चाहिए तो एक दिन के लिए 50 हज़ार रुपए होंगे?"

"हम बता देंगे सर"

"उसे पहले बोल दीजिए। इनका अटेंडेंट कौन हैं?", मैंने उस समय समझ लिया कि वहाँ उपस्थित सब लोग डॉक्टर ही होंगे।

"उनकी पत्नी है सर", वह एक स्त्री की आवाज़ थी जो शायद नर्स होगी।

"अब वे किधर हैं?"

"बाहर बदामदे में खड़ी हैं सर।"

"उन्हें बुलाइए"

मेरी पत्नी आनेवाली है... ये लोग उसे रुलानेवाले हैं... लेकिन मैं कुछ नहीं कर सकता... मेरे लिए इसके बारे में सोचना ही थकावटपूर्ण लग रहा था। कभी–कभी मैं इस बात को ही समझ नहीं पाता कि मैं कहाँ हूँ। उसके बारे में जानने या बोलने की शक्ति मुझमें नहीं थी।

"अब तक कितने दिनों से वेंटिलेशन पर रखा है?", एक डॉक्टर ने इस तरह पूछा तो उनके प्रश्न से मैंने अंदाजा लगाया कि वे उसी समय मुझे देखने आए होंगे। विशेषज्ञ के रूप में आगत बड़े डॉक्टर होंगे।

"आइए जी... इन्हें क्या हुआ?"

"काम पर जाकर ये लौटे थे... सुबह से कुछ खाए नहीं थे, बहुत कठिन काम करते थे सर... हम गरीब परिवार के हैं सर..."

"मत रोना। बात बताइए।"

"इन्होंने बताया कि भूख लगी है, खाना दे दो। एक निवाला ही खाए थे। फ़िर यह कहते हुए

भाषा ISSN 0523-1418

तड़पने लगे कि हाथ सब दुखते हैं। उनका मुँह टेढ़ा होने लगा... कुछ बोल रहे थे। लेकिन कुछ भी समझ में नहीं आया... मुझे भी उसके द्वारा बताई जानेवाली घटना याद आई। गणपतिरामन के खेत में बोरबेल कुँए में मैंने सबमरसिबिल मोटर लगाया था। भूमि के अंदर लगाए गए ट्यूब में ज़रा मोड़ था। मोटर को अंदर लगाने में तकलीफ हो रही थी। हर एक बार ऊपर उठाते हुए सर्जिंग करते हुए मोटर को नीचे उतारा... सुबह से यह काम लगातार चल रहा था। खूब टेंशन हो रहा था। मैंने खाया ही नहीं। छह बजे ही घर लौट पाया। फ़िर खाने के लिए बैठ गया। बाएँ हाथ में काफी दर्द हो रहा था। ऐसा भ्रम होने लगा कि मेरा सिर ही फूट जाएगा। उसे छूते हुए सुनिश्चित करने की बात सोच रहा था। हाय रे मेरे हाथ किधर हैं? वह किधर है?

"उस के बाद...?"

"जी एच को उठाकर ले गए... वहाँ डॉक्टरों ने बता दिया कि वे कुछ नहीं कर पाएँगे..."

"क्या वहाँ एम.आर.आई. स्केन लिया गया था?"

"वहाँ नहीं लिया गया था... यहाँ लेकर आने के बाद ही लिया गया था," दूसरे डॉक्टर ने जवाब दिया।

"देखिए, अब भी कुछ नहीं बता सकते हैं..."

"किसी तरह इन्हें बचा दीजिए सर..."

"99 प्रतिशत इसके लिए गुंजाइश ही नहीं है। अब इस उपकरण को निकाल देंगे तो उनकी कहानी समाप्त हो जाएगी। इसी से वे जीवित हैं।"

"तब तो इसे मत हटाइए सर...", उसकी आवाज़ में घबराहट थी। डरो मत विमला। "इसके लिए प्रति दिन 50 हज़ार रुपए का शुल्क लगता है... उसके बाद दवाइयाँ, किराया, डॉक्टर की फ़ीस आदि सब खर्च हैं? क्या आप ये सब कर पाएँगे? कितने दिनों के लिए ऐसे रखना है? क्या उसके बाद ये ठीक हो जाएँगे?

"ये सब हम नहीं बता सकते हैं जी... इसे रखेंगे तो ये जीवित रहेंगे। इसे हटा देने पर हम कुछ नहीं बोल सकते।"

उसके सिसकियाँ रोने में बदल गई। मैं उठना चाहता था। लेकिन पता नहीं कि ऐसा कैसे करना है।

"मन को संभालिए... अब तक तीन दिनों के लिए इस उपकरण को रखा गया है। अभी डेढ़ लाख रुपए से ऊपर का खर्च हो गया है।"

क्या तीन दिन हो गए? मैं चौंक गया। क्या तीन दिनों से मैं यहाँ हूँ? दिए जानेवाले बैंक चेक का क्या हुआ? दुकान को कौन संभाल रहा है। क्या किसी ने मैनेजर से स्टॉक रखने के लिए कहा है? कदिरेसन ने मोटर पूछा था न? हाय रे तीन दिन हो गए? "जितने दिन भी हों आप रखिए सर," वह रोने लगी।

"मत रोइए। आपके बताने के बाद ही इसे हटाएँगे। दो दिनों में एक बार रुपए भर दीजिए। और कोई परिचित हो तो उन्हें बुलाइए...", हर एक के कदमों की आहट सुनाई देने लगी। मेरी पत्नी ही मेरे पास खड़ी होकर रो रही थी। मैं इस बात को महसूस कर पाया कि मेरी पत्नी मेरे हाथ को पकड़ रही थी। उसके हाथों की गर्मी आराम पहुँचानेवाले थी। लेकिन वह रोती हुई वहाँ से बाहर चली गई।

लंबे समय तक वहाँ कोई भी नहीं था। किसी की उपस्थिति से रहित शून्य प्रदेश में मैं अरूप लग रहा था। मुझे नहीं लगा कि मेरा भी वजन है। ऐसा लगा कि मेरा होना ही एक रिक्तता को दयोतित करता है। क्या इन सब का विचार मैं करता हूँ, या मेरे लिए कोई और सोचते हैं? क्या मैं किसी एक स्थान में हूँ? या हर जगह फैला हूँ? क्या यह कोई युग है, या कोई क्षण है? ऐसा लगा कि कोई मेरे माथे को दबा रहा है। ओह!

विमला मेरे माथे पर भस्म लगा रही है। भस्म की धूल मेरे माथे को खुजलाती है। ईश्वर की करुणा कार्य कर रही है। भगवान की भस्म... आहा!

"आपके आने पर बड़े डॉक्टर से मिलने के लिए बोल रहे थे। रुको भैया अब वे राउंड्स पर आएँगे।"

"रमेश... रमेश उठो रे... अरे रमेश... क्या तुझे मेरी बातें सुनाई देती हैं?, अरसु मेरे कानों के पास

चिल्लाने लगा। सुनाई देता है। खूब सुनाई देता है। क्यों रे! सब कामों को ऐसे ही छोड़कर इधर आकर लेट गए? उठो रे" मुझे धीरे–धीरे हिलाने लगा।

"सर इस तरह हिलाना नहीं है"

नर्स की आवाज़ थी।

"पैर हिलता है न...," रमेश ने बताया।

"हम जिस स्थान पर चुटकी करते है या हिलाते हैं वहाँ एक स्टिमुलेशन होगा... देखिए... देखा है न? जहाँ चुटकी दिया जाता हैं वहाँ थोड़ा हिलेगा... बस उतना ही। दिमाग का कंट्रोल नहीं है।"

अरी पापिन! कहीं चुटकी देते हुए विवरण देती है। थोड़ी सी खामोशी और हलके से कदमों की आहट सुनाई देने लगी।

"तुमने कैसा निर्णय लिया है?"

"भैया से बताइए

"क्या ये तेरे सगे भाई हैं?"

"नहीं सर। छोटी उम्र से ये हमारे दोस्त..."

"रक्त से कोई रिश्ता होने पर ही हम बोल सकते हैं..."

"रिलेशन भी है... गाँव के नज़दीकी रिश्तेदार हैं..."

अच्छा हुआ कि खूब संभाल दिया "ओ.के. इन्होंने बताया होगा। प्वाइंट वन चांस ही है। वेंटिलेटर रखने के कारण श्वास चल रहा है। बहुत मुश्किल है बचना। आप घर ले जाएँगे तो अच्छा होगा। "अमेरिका से डॉक्टर आएँगे तो भी इन्हें बचा नहीं सकते... यदि ऐसा कोई चान्स हो तो हम खुद बता देते और कोई रिस्क लेना है तो भी बताइए डाक्टर साहब" "नहीं सर, और कोई रास्ता हो तो अब तक हम कर दिए होते... अब एक दिन औसतन पचास हज़ार रुपए होते हैं। अमीर लोग दस दिन या बीस दिन भी रख लेते हैं।

"यदि ऐसा रखते तो क्या ठीक हो जाते डॉक्टर ने कुछ नहीं बताया। उन्होंने अपने होठों को बिचकाया होगा। अपनी उँगली को आकाश की तरफ़ दिखाया होगा।

"इस तरह रखने से क्या कोई फ़ायदा होगा? कितना पर्सेन्ट होप है?"

"मैं तो बता चुका हूँ... कल ही मैंने इस महिला से बताया कि घर ले जाना ही बेहतर होगा। पी आर ओ विभाग से भी इन्हें कन्विन्स किया गया है... क्या इन्होंने बताया था, या नहीं बताईए जी...?"

"बताया है सर", उसकी पत्नी की आवाज़ टूट गई थी

"अच्छी तरह सोच लीजिए जी आप। डॉक्टर का कहना क्या आपकी समझ में आता है? रोज़ पचास हज़ार देते हुए", अरसु की आवाज़।

"अब तक घर भी नहीं बनाया गया है..."

"इसीलिए मैं बता रहा हूँ... घर ले जाना ही बुद्धिमानी है.... समझो बहन"

अरे अरसु... क्यों रे तुमने ऐसे बता दिया... मैं तो जिन्दा हूँ रे... हे मेरे दोस्त...

विमला के रोने की आवाज़ ही सुनाई दे रही थी।

"सर ऐसे ही और एक दिन रख लीजिए। मैं और कुछ डॉक्टरों से परामर्श करके बता दूँगा।"

"ओ.के. आपकी मर्ज़ी।"

ज़मीन को रगड़नेवाली चप्पलों की आवाज़ धीरे–धीरे गायब होने लगी। उसके बाद लंबे समय तक कोई नहीं आया। थकावट में याद्दाश्त ओझल हो जाते हुए और अचानक जागते हुए चल रही थी। बीच–बीच में नर्स आकर ग्लूकोस चढ़ानेवाली सुई को दबाकर देख रही थी। ऐसा लग रहा था कि मैं युगों से ऐसे लेटा हुआ हूँ। अक्सर याद्दाश्त चली जाती थी।

फ़िर से आवाजें आने लगीं। कोई पास में आकर खड़े होते थे। फिर चले जाते थे। दिमाग को रक्त सप्लाई करनेवाले दो मुख्य नसें ब्लाक हो गई थीं। दिमाग को अब रक्त नहीं जा रहा है। अर्थात् मिनिमम फंक्शन होने तक ही रक्त चल रहा है। हार्ट काम कर रहा है। लंग्स काम कर रहे हैं। किडनी काम कर रही है... आई थिंक लेफ़्ट ब्रेन को थोड़ा रक्त सप्लाई हो रहा है। इस ब्लॉक को ठीक करने के लिए अब तक कोई दवा का आविष्कार नहीं हुआ है। यदि उसे घुला देने की कोशिश करेंगे तो वह दिमाग के अंदर जाकर और

भी कॉम्प्लिकेशन को बढ़ाएगा। क्या आपको समझ में आती है?"

"डॉक्टर किसी को विस्तृत रूप से समझा रहे थे, पता नहीं सामने कौन अपना सिर हिला रहा है।

"आपके लिए यही अच्छा होगा कि आप अंगों के दान के बारे में सोचें"

कानों के पास जाकर बोलते समय उनकी पुतली हिलती हैं डॉक्टर," अरसु ने बताया।

"क्या आपने देखा था?"

"मैंने देखा सर... उनके मुँह में भस्म डाला था। उनकी छाती फूलकर नीचे उतर गई सर"

"क्यों जी क्या यह अस्पताल है या, मारियम्मन देवता का मंदिर है? वे किसी भी चीज को निगल नहीं पाएँगे। कफ़ को भी हम ट्यूब से ही निकाल रहे हैं। मुझे डर होता रहता है कि यदि कफ़ अंदर चला जाए तो इनफ़ेक्शन हो जाएगा या निमोनिया हो जाएगा... तुम तो यह बताती हो कि अपनी मर्ज़ी से उनके मुँह में भस्म डाला है... इस तरह दोबारा करोगी तो मैं घर भेज दूँगा... समझी?"

"हमारे कुल देवता के मंदिर में मंत्र जापकर दिए थे सर... इसीलिए ही... आगे से नहीं दूँगी सर"

डाक्टर ने निःश्वास भरते हुए पूछा कि, "बताइए अब क्या किया जाए?"

विमला और अरसु दोनों ही थे। पता नहीं दोनों में कौन मेरे साथ क्या करनेवाले हैं।

"सब गाँव के लोग हैं। इस बात को नहीं मानेंगे कि वेंटिलेटर को निकालने पर मर जाएँगे। सेंटिमेंट्स... ऐसा सोचेंगे डॉक्टर कि घर बार सब बेचकर इन्हें बचाया जाए...

"उसके लिए एंडलेस होकर इस तरह रखने से क्या फ़ायदा है? रुपए ही वेस्ट होते हैं...?

क्या तेरी एक बेटी है...?"

"दसवीं कक्षा में जा रही है"

मैं इंद्रा को भूल गया... मेरी प्यारी इंद्रा...

"फिर क्या?"

मौन छा जाता है।

सब उलझन में पड़े हुए थे। मुझे भी पता नहीं था कि मैं बचूँगा या नहीं।

"इसे हटा देंगे बहन...", अरसु ने बताया। क्या अरसु बोल रहा है या पूछ रहा है?

विमला की सिसकने की आवाज़ टूट टूटकर सुनाई दे रही थी।

"अमावस्या तक नहीं निकालेंगे सर..."

"अमावस्या कब है?"

"और दो दिन है सर"

"आपकी मर्ज़ी। मीन टाइम यह देखेंगे कि वेंटिलेशन के बिना सर्वाइव होते हैं या नहीं।

फिर आपका सौभाग्य है"

"उससे कोई जान के लिए खतरा होगा क्या?"

नो... नो... ग्रेजुअली ही हम वे सब करेंगे... डोंट वरी

"सब वहाँ से हटने लगे। पंखे के चलने की आवाज़ सुनाई देने लगी। वह एक वातानुकूलित कमरा भी था। उनके द्वारा बताए जानेवाला वेंटिलेंटर नामक उपकरण ही मेरा नियंत्रण कर रहा है। वह उपकरण ही सोचता है। यदि वह उपकरण नहीं है तो प्राण नहीं है। विचार भी नहीं है।

डॉक्टर लोग आते हैं। नर्सों को आज्ञा देते हुए चले जाते हैं। रिपोर्ट लिखकर मेरी चारपाई के कार्डबोर्ड में लटकाते हुए चले जाते हैं।

"चार लिटर देना है" बस, उन्होंने बताया। सुनाई देने लगा कि बीपी नार्मल है। कहते हैं कि ट्रकिया कर देंगे।

पता नहीं कि अमावस्या आ गई है या नहीं। मेरे लिए सभी दिन अमावस्या की तरह थे। कोई न कोई आते रहते हैं। विमला, विमला की माँ, अरसु, अरसु की पत्नी... मैं सब की आवाज़ पहचान पा रहा हूँ। सब मेरे कानों के पास आकर प्यार से बोल रहे हैं कि 'उठ जाओ'।

"आप जो कुछ बोल रहे हैं, वे सब उन्हें सुनाई नहीं देगा...", खाली डॉक्टर ज़िद कर रहे थे।

"नहीं डॉक्टर। जब मैंने बुलाया तो उन्होंने तेजी से निःश्वास भरा था...," अरसु की पत्नी की बात ठीक ही थी। उसने ठीक से पहचान लिया। मैं श्वास ले पा रहा था। उसे इशारे से बताने के

लिए ही मैंने ऐसा किया था।

"और एक बार बुलाइए मैं भी देखूँगा..."

"भैया... रमेश भैया... इधर देखिए... क्या आपको मेरी बातें सुनाई देती हैं?"

श्वास को तेज़ी से छोड़ने के लिए मुझमें शक्ति नहीं थी। ऐसा लगा कि हमेशा चलनेवाला श्वास ही रुक गया है। बहुत संघर्ष के बाद थोड़ा कसकर श्वास लेने लगा।

"क्या आपने देखा सर?"

"ओ.के. आपको ये सब सामान्य बातें विशेष रूप से दिखाई देती हैं... लेकिन एक बात है। अब थोड़ी प्रगति है... वेंटिलेटर को हमने हटा दिया है। खाली ऑक्सीजन ही रखा है। वह एक सपोर्ट के लिए ही है। वे श्वास ले पा रहे हैं।"

"तब तो और दो दिन रहने दीजिए सर..."

"दस दिन हो गए हैं... इतने दिनों तक यदि दिमाग में रक्त न गया तो सोचिए कि उनका क्या हाल हुआ होगा। बेड सोर भी आ गए हैं। पूरा तन ही फूला हुआ लग रहा है।

कोई मेरे हाथ को दबाकर देख रहा था। एक स्त्री का हाथ। क्या विमला का है? या अरसु की पत्नी का?

"फिर आपकी मर्ज़ी है", डॉक्टर ने कहा।

सब चले गए।

रात को मैंने आँखें खोलीं। इस बात का पता नहीं था कि वह उस दिन की रात थी या अगले साल की रात थी। ऐसा बोध हुआ कि वह रात का समय था। क्योंकि मेरे चारों ओर नक्षत्र टिमटिमा रह थे। वहाँ एक चंद्रमा भी था।"

– हिंदी विभागाध्यक्ष, पीएसजीआर कृष्णम्माल महिला महाविद्यालय, कोयम्बत्तूर–4, तमिलनाडु

❑❑❑

जड़

केशव रेड्डी हंद्राल
अनुवाद : डी. एन. श्रीनाथ

दिल्ली की जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी का गेस्ट हाउस। वहाँ डॉक्टर नेहा बैनर्जी का सुबह ग्यारह बजे से ही इंतजार करते–करते थक गया था। उनसे यह भेंट पूर्व निर्धारित थी। सुबह मुंबई से विमान में बैठने से पूर्व भी फोन किया था। उन्होंने फोन रिसीव नहीं किया, मगर मैसेज किया था कि जरूर मिलूँगी। डॉक्टर नेहा दिल्ली के राजा राममोहनराय अस्पताल में मनोचिकित्सक और प्रसूतिविभाग में थीं और हमेशा व्यस्त रहती थीं। इसके अलावा दिल्ली के प्रतिष्ठित पोलिटिकल और ब्यूरोक्रेटिक परिवारों की फैमिलि कंसलटेंट के रूप में भी काम कर रहीं थीं और इससे उनके समय के हर पल का अत्यधिक मूल्य और महत्व था।

दस साल पहले उन्होंने मुंबई के धारावी स्लम में, मेन रोड पर एक छोटे–से फ्लैट में मेडिकल सर्विस का श्रीगणेश किया था, आज वह जिस ऊपर की सीढ़ी पर हैं, इसके पीछे उसकी अपार प्रतिभा, मेहनत और कमिटमेंट शामिल हैं। उनकी खूबसूरती और सुकोमल कंठ भी प्लस पॉइंट था। दस साल पहले जब वह मुंबई में थी और जब–जब मेरे मन में उदासीनता छा जाती तो मैं उसके क्लिीनिक जाता, उनसे बातचीत करता और वह जो दवा देती थीं, लेकर शांत हो जाता था। इतना ही नहीं, शबाना आजमी जो मुंबई की निस्वार्थ सोशल वर्कर के नाम से जानी जाती थीं, उनके साथ धारावी की गंदी–गलियों में प्रगतिशील कार्यक्रमों के आयोजन के लिए मैंने कई बार उन्हें लाखों रुपयों का कुछ डोनेशन भी दिया था। वैसे एक कार्यक्रम में उन्होंने मेरा सम्मान भी किया था। इतने सालों में वह उन्नति के शिखर पर पहुँच गई थी, फिर भी उन्होंने मुझे भुलाया नहीं था।

दोपहर के दो बज चुके थे, मगर नेहा बैनर्जी का पता नहीं था। फोन भी उठा नहीं रही थी। मुझे शाम सात बजे हवाई जहाज से मुंबई लौटना था। सोचा कि इंतजार करने से कोई फायदा नहीं है, मैंने टैक्सी ली और बीस मिनिट में राजा राममोहनराय अस्पताल पहुँच गया। अस्पताल रोगियों से खचाखच भरा हुआ था। कराहते रोगियों से अस्पताल मानो नरक हो गया था। उनका चेंबर दूसरी मंजिल पर था, जब मैं वहाँ पहुँचा तो मुझे अभिमन्यु का चक्रव्यूह–कहानी की याद आई। डॉक्टर नेहा बैनर्जी अस्पताल में नहीं थी। चेंबर में रोगियों की भीड़ थी, रोगियों को जाँचते वक्त असिस्टेंट डॉक्टर ने मेरे बारे में पूछताछ कर ली थी। उन्होंने कहा कि एक एमर्जेंसी केस को देखने के लिए डॉक्टर नेहा जी रात को ही मसूरी चली गई हैं, वे आज आने वाली थीं, मगर अनिवार्य कारणों से आ नहीं सकी हैं। तभी मेरा मोबाइल बज उठा और डॉक्टर नेहा बैनर्जी का नाम डिसप्ले हो रहा था। चेंबर से बाहर आकर मैंने कहा, "हैलो गुड आफ्टरनून डॉक्टर..."

"इफ आई एम नॉट रॉंग, आप हमारे अस्पताल में हैं। आई केन मेक आउट फ्रॉम द नाइज ऑफ

दैट प्लेस..." उनकी धारणा शक्ति को देखकर मैं दंग रह गया था।

"ठीक बारह बजे से ही आपके फोन का इंतजार कर रहा हूँ।" न चाहते हुए भी मेरी आवाज में उदासीनता की छाया घुस आई थी।

"ओह, सॉरी। इट हैपेंड लाइक दैट। एक अनिवार्य कारण से मुझे मसूरी आना पड़ा। एक काम करें, इफ यू डोंट माइंड, वेहिकल लेकर मसूरी आ जाइएगा। एक–आधा घंटे में दिल्ली से निकले तो भी रात नौ बजे यहाँ पहुँच जाएँगे। आप चाहे तो कार्लटन होटल में कमरे की व्यवस्था करा दूँगी। एक घंटे तक आराम से बातें कर सकते हैं। परसों मास्को में कांफरेंस है, मैं जा रही हूँ। अनदर टेन डेज़ आई मे नॉट बी अवेलेबल। आपकी सुविधा..." मुझे मालूम था कि वह अनावश्यक कारण नहीं बताएँगी।

"आ जाऊँगा..." इतना ही कहा।

जब मैं मसूरी के कार्लटन हाउस होटल पहुँचा तो रात के साढ़े नौ बजे थे। वह एक विशाल सुपर डीलक्स होटल था। कॉटेज की एक खाट पर डॉक्टर नेहा बैनर्जी एक किताब पकड़कर बैठी थीं, जो मेडिसिन से संबधित थी। एक दूसरी खाट पर लगभग अठारह–बीस साल की लड़की आराम से सो रही थी। कॉटेज की दो अंगीठियों में जो आग थी, गर्मी और चैन का वातावरण बनाए हुए थी। मैं हँसता हुआ सोफे पर बैठा था।

"सॉरी, कल दिनभर बिजि हो गई थी। कल दिल्ली में उस बाबा के खिलाफ जो विरोध–रैली थी, भाग लेना पड़ा। पंचकुला में कई लोग दंगे का शिकार हो गए। आज के इस आधुनिक जमाने में भी लोग किस प्रकार और कैसे आकर्षित हो जाते हैं, यह जानना ही एक प्रकार की चैलेंजिंग बात है। छोड़िए यह सब, आप इतनी दूर मुझसे मिलने आए हैं, जरूर कोई अहम् बात ही होगी। आप यहीं खाना खाकर अपने कमरे में जा सकते हैं..." वह सीधे विषय पर आ गई थी।

"सपने..." मैं भी सीधे विषय पर आ गया था।

"यानी..." उसने किताब बंद की और मेरे समाने जो सोफा था, बैठ गई।

"इधर छह महीनों से मुझे लगातार सपने आ रहे हैं। दिन में भी आँखें बंद कर लूँ तो सपने आ जाते हैं और तुरंत जाग जाता हूँ। जैसे मैं आसमान में उड़ रहा हूँ... मैं अपने शव को ही उखाड़–उखाड़कर खा रहा हूँ... एक छोटा–सा कीड़ा बनकर संडास में फँसकर तड़प रहा हूँ... नग्न होकर मुंबई की गलियों में घूम रहा हूँ... गर्भिणी बनकर चित्र–विचित्र जानवर–पक्षियों को जन्म दे रहा हूँ... कौआ बनकर समुंदर के किनारे बैठ कर एक–एक दाने का इंतजार कर रहा हूँ... धुनी हुई रुई हो गया हूँ... झरी बनकर अंधकार की परतों को जो पृथ्वी के अंदर हैं, फाड़कर जा रहा हूँ... ओह! और भी कई सपने... लीलावती अस्पताल के डॉक्टर शिवाजी गांवकर के यहाँ भी ट्रीटमेंट लिया। न जाने मुझे क्यों भय हो रहा है..." तिपाई पर जो फ्लास्क था, आधा ग्लास गरम पानी उड़ेल कर पिया था।

"हाल ही की मेडिकल स्टडी से साबित हुआ है कि शरीर और मन की रचना में कोई इरेग्युलारिटिस है। आप मुंबई के एक अमीर उद्यमी हैं, आप के अंदर भय का जन्म लेना कैसी बात है? मेरा अनुमान है कि आपने अपनी जिंदगी की कोई गहन घटना का जिक्र मुझे नहीं बताया है..." उनकी बात से मुझे हैरानी हुई थी।

"जी हाँ। अब कह सकता हूँ...?" संकोच के साथ पूछा था।

"डॉक्टर से कुछ भी छिपाना नहीं चाहिए..." उसने भी दो घूँट पानी पिया था।

मैं कहने लगा–

"धारावी–स्लम के बचपन के दिन मुझे याद ही नहीं हैं। जब मैंने होश संभाला, सेठ भवरलाल जी की प्लास्टिक फ़ैक्ट्री में काम कर रहा था। कॉफी, नाश्ता, खाना सब कुछ फ़ैक्ट्री में ही हो जाता था और मैं वहीं सो जाता था। स्लम में भवरलाल अकलमंद व्यापारी के नाम से जाना जाता था। नौकरों की देखभाल अच्छी तरह से करता था। लगभग बारह साल तक फ़ैक्ट्री में काम करने के बाद सेठ भवरलाल ने मुझे अपने घर के काम के लिए शिफ्ट किया था। तब तक उनका धंधा बढ़ गया था। उन्होंने पुरी में दो बड़ी फ़ैक्टरियाँ

खोली थीं, मुंबई में भी खेल–सामग्रियों की बहुत बड़ी फ़ैक्ट्री और शो–रूम खोला था। तीन साल के बाद मैं मानो भवरलाल के परिवार का एक सदस्य बन गया। घर के लिए आवश्यक चीजें लाना, रसोईघर में सब्जियों को तैयार करना, बर्तनों को माँजना, कपड़े धोना आदि कामों को बिना बैठे करता था। उस समय मेरी उम्र बीस साल के ऊपर होगी। एक दिन भवरलाल की बीवी ने कहा कि मेरे शरीर में दर्द हो रहा है, मालिश करो। मैं संकोच के साथ ही मान गया था। दोनों बच्चे स्कूल गए थे। उनके नग्न शरीर की खुशी से मालिश करने लगा था..."

उसने मेरी बात को बीच में काटा, "मन यद्यपि शरीर में है, फिर भी कई साल पीछे की ओर जा सकता है। मगर शरीर की शक्ति ऐसी नहीं है। आदमी से लेकर सभी जानवर और पक्षियों के रचना–विन्यास में कई परिवर्तन हैं, मगर सिर्फ स्वभाव में बहुत ही समानता है..." उसने मुझे अचरज में डाल दिया और बात को आगे बढ़ाया।

"आगे भवरलाल की फ़ैक्टरियाँ, शो–रूम और मकानों पर इनकमटैक्स वाले रेड करते हैं। मुंबई स्पोर्ट्स फ़ैक्ट्री, शो–रूम, पूना में स्थित एक फ़ैक्ट्री आपके नाम पर है। इनकमटैक्स वाले और पुलिस आपको अरैस्ट करते हैं और छोड़ देते हैं। बाद में भवरलाल पूना में शिफ्ट होते हैं। भवरलाल की पत्नी के साथ आपने तीन साल तक जो सुख भोगा, अंडिफाइनेबल है..."

"मेरे लिए वह सब जरूरी नहीं है। मेरे माता–पिता कौन हैं, यह कौतूहत बढ़ रहा है। धारावी–स्लम के सभी बुजुर्गों को इस अनुमान से देखता हूँ कि ये मेरे माता–पिता तो नहीं हैं..." मैंने अपनी समस्या जाहिर की थी। तभी जो युवती बिस्तर पर लेटी थी, एक बार जंभाई ली और सो गई थी।

"आदमी के शरीर और मन के बीच इनटेग्रिटी कभी–कभी लैप्स होता रहता है। मैं यहाँ अठारह साल की एक युवती को जो बिस्तर पर लेटी है, तीन महीनों से ट्रीटमेंट दे रही हूँ। ट्रीटमेंट आखिरी सीढ़ी पर है। फिलहाल सुधार हो रहा है। यह दिल्ली के एक बड़े अमीर की इकलौती बेटी है। एक मामूली वजह से इस युवती ने अपने शरीर को दंडित किया है, यह भयानक थियोरी अनोखी लगती है। इनके माता–पिता हमेशा झगड़ते रहते थे, इनके खिलाफ दुश्मनी का बदला लेने के लिए इन दो सालों में इसने लगभग साठ–सत्तर लोगों के साथ बिस्तर बाँटा है। इनमें युवक और बूढ़े भी शामिल हैं। अनजान भिक्षुकों के साथ भी सोयी है। शरीर और मन के बीच निरंतर संतुलन को बनाए रखने का जो काम है, जीव–जगत के सभी वर्गों का सबसे बड़ा चैलेंज है..."

तब तक गरम–गरम पराठे, चिकन मसाला और फिशफ्राय आ गया था। खाने के बाद उसने कहा था। "आप किसी तरह मुंबई से आए हैं। कल सुबह ही यहाँ से दिल्ली जाइएगा। वहाँ से पच्चीस किलोमीटर की दूरी पर ग्रेटर नोएडा है, नोएडा में मेरे क्लासमेट डॉक्टर अतावुल्ला खान हैं। मुझे विश्वास है कि वे आपको हर तरह की उलझन से बाहर ले आएँगे। आपने मुझसे भेंट की, इस भेंट के लिए आपको कोई शुल्क देने की आवश्यकता नहीं है। दो दिनों में सपनों से जो भय आप झेल रहे हैं, मुक्त हो जाएँगे। आज रात से ही आपके सपनों की तीव्रता क्षीण होती जाएगी..."।

मैं कमरे में जाकर लेटा था, जो मेरे लिए आरक्षित किया गया था। नींद घेरने लगी थी।

दूसरे दिन दोपहर एक बजे मैं ग्रेटर नोएडा में था और डॉक्टर अतावुल्ला खान जी के भव्य फ्लैट में बैठा था। डॉक्टर नेहा जी ने पहले ही फोन से बता दिया था, इसलिए उन्होंने बड़ी सावधानी से मेरा स्वागत किया था। डॉक्टर अतावुल्ला दुबले –पतले और लंबे थे और उनकी आँखों पर मोटी ऐनक थी। किताबें जहाँ–तहाँ बिखरी पड़ी थीं। डॉक्टर ने खुद ग्रीन–टी बनाई थी, उसे देते हुए उन्होंने कहा, "डॉक्टर नेहा बैनर्जी ने फोन किया था। लगातार जो शरीर सुख भोगता रहता है, उसमें धीरे–धीरे इच्छा, आकर्षण कम होता जाता है। औरत और मर्द दोनों में ये लक्षण तीव्र रूप से समाहित होते हैं, इसलिए मनुष्य से निर्मित कई परिमितियाँ आसानी से ढीली हो जाती हैं। मैंने मेडिसिन पढ़ी है, मगर मुझे भूगोल से बड़ा लगाव है। पृथ्वी के जो बाहरी

लक्षण हैं, एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में बड़ा अंतर होता है..." चाय खत्म हुई।

"आपके कीमती समय को मैं बर्बाद तो नहीं कर रहा हूँ..?" मैंने विनम्रता से पूछा था।

"ओह, सभी समय के बारे में बोलते हैं। एक्चुयली यू केननॉट फिल और टच द टाइम। यह एक प्रकार की काल्पनिक बात है। यह न ही क्रिया है, न ही वस्तु है। समय जो है, एक पल का बोध है। जब हम पैदा होते हैं या मरते हैं; हवा, आग, पानी, आहार आदि के साथ अनुसंधानित होते रहे हैं। मगर वैसा अनुसंधान समय के साथ बनता ही नहीं है। घड़ी एक प्रकार का फेक डिवाइस है। ब्रह्मांड के लिए समय को फिक्स कैसे करेंगे? आप समझ लें कि आपको जो सपने आ रहे हैं, ऐसे ही हैं। हमें बोध या प्रज्ञा है, इसलिए पहचान के लिए नाम रखा है। सोचिए कि नाम ही नहीं है... एक आदमी को लगातार एक अंधेरे कमरे में बंद कर दीजिए। पृथ्वी घूम रही है, इसलिए तो दिन–रात हो रहे हैं। आप पृथ्वी के वातावरण को छोड़कर जाइए; तब आपको सिर्फ शून्य का ही दर्शन होगा। पृथ्वी के ऊपर शून्य नहीं है, इसलिए तो हम जी रहे हैं और सारे ब्रह्मांड में पृथ्वी पुण्य ग्रह कहलाती है..." डॉक्टर अतावुल्ला खान ने अपनी एक बात के लिए इतना सब कुछ ब्योरा दिया था। सच कहूँ तो मुझे उनकी बात का सिर–पैर समझ में नहीं आया था।

"मुझे मुंबई के लिए शाम का हवाई जहाज पकड़ना है...." मैंने कहा।

"नेहा बैनर्जी ने बताया था, इसलिए आज के मेरे सारे अपॉइंट्मेंट को आपके लिए ही रद्द किया है। आंध्रभवन में बढ़िया नान–वेज खाना खाएँगे और मुजाफ़र शहर जाएँगे। दिल्ली से सिर्फ दो घंटों का सफर है। आज रात वहीं रुकेंगे। कल दस बजे वापिस आकर आप हवाई जहाज पकड़ सकते हैं। नेहा बैनर्जी ने कहा है कि मुझे आपसे सलाह–शुल्क भी लेना नहीं चाहिए। आपको पता है कि मैं एक घंटे का सलाह–शुल्क बीस हजार लेता हूँ..."

अतावुल्ला खान मुझे एक अनोखा आदमी लगा था, इसलिए आज उसके साथ बिताने का निश्चय कर लिया था। साथ ही मुझे डॉक्टर नेहा बैनर्जी के बारे में पूर्ण विश्वास और भरोसा था।

डॉक्टर अतावुल्ला खान की अपनी कार थी। वे कार का अच्छा–खासा चालन भी करते थे। कार चलाते समय कई विषयों के बारे में वे ऑथॉरिटेटिव बोल रहे थे। मुजाफ़र शहर पहुँचने के लिए अभी दो कि.मी. बाकी था; अतावुल्ला खान कार को मैन रोड से छोटी गली में ले गए जो बाएँ थी। आसपास, जहाँ तक नजर जाती थी, ईख के खेत थे। उस छोटी गली में एक कि.मी. तक चले गए थे। जहाँ गली खत्म हुई, एक बड़ा मकान अहाते के अंदर था। अतावुल्ला खान ने अहाते के अंदर कार ले जाकर, एक ओर खड़ी कर दी। एक बुजुर्ग नंगे पैर एक बाल्टी में भैंस का गोबर भर रहे थे। उन्होंने हमें देखा तो गोबर भरी बाल्टी किनारे रखी और नाँद में हाथ धोकर हमारे समीप आ गए थे। अतावुल्ला ने उनका परिचय कराते हुए कहा था, "ये हमारे दादा रफीक अहमद हैं। चाहे दिल्ली हो या लंदन, नंगे पैर ही आते–जाते हैं। अगर आपके अनुसार समय को मापना है तो, इनकी उम्र सौ साल के ऊपर पाँच–छह साल तो होगी ही। इनका एक दाँत भी गिरा नहीं है। अब भी वे ऐनक का इस्तेमाल नहीं करते। चालीस एकड़ ईख के खेत की देखरेख आज भी खुद करते हैं और गुड़ तैयार करने की निगरानी भी करते हैं..." डॉक्टर की बातों में अभिमान और व्यंग्य दोनों मिले हुए थे।

"यह एक ऐसा आदमी है और बहस करता है कि समय नहीं है। समय है, यह साबित करने के लिए यह कहा है कि यौवन, बुढ़ापा, जन्म और मरण– ये ही काफी हैं न..." रफीक अहमद ने भी व्यंग्य से कहा था। वे इस उम्र में भी हट्टे–कट्टे थे, देखकर आश्चर्य हुआ। धारावी के स्लम में कंकाल जैसे खाँसते, कराहते जाने वाले व्यक्तियों के चेहरे आँखों के सामने आए, जिनकी उम्र चालीस–पैंतालीस की ही होगी।

"आप रोज योगा करते हैं...?" रफीक अहमद से मैंने पूछा था।

"अगर आपके पाँव हमेशा पृथ्वी के साथ संपर्क में होंगे तो कोई योगा की जरूरत नहीं है।

आजकल योगा कमर्शियल और पोलिटिकल बीमारी के रूप में परिवर्तित हो गया है। ऐसी बातों से आम जनता जल्दी ही आकर्षित हो जाती है। मेरी राय है कि इन सबके लिए मनोधर्म की कमी ही मुख्य वजह है। मनोधर्म की कमी है, इसलिए आज राम रहीम बाबा जैसे लोग हर कहीं जन्म ले रहे हैं। हर उमर की औरतें भी स्वयं प्रेरित होकर बाबा के साथ बिस्तर बाँटने के लिए उतावली हो रही हैं। करोड़ों लोग उनके अनुयायी होते हैं, यह कैसी आश्चर्य की बात है... वॉट ए सरप्राइस..." उन्होने फिर गुड़ तैयार करने की जगह की ओर इशारा किया था जो कुछ ही दूरी पर था। मिट्टी के दो बर्तन में ईख का रस लेकर एक आदमी आया था। उसने एक बर्तन मुझे दिया और दूसरे को अतावुल्ला खान को दिया था। जब हम दोनों ईख का रस पी रहे थे, रफीक अहमद एक ईख को जो बगल में ही रखा था, जड़ सहित उखाड़कर ले आए थे। एक ही ईख में सैकड़ों जड़ थीं।

"पृथ्वी के मिठास को उड़ेलकर रस के रूप में ईख में भरने के काम में ये सभी जड़ें एक साथ काम करती हैं। इस काम में कौन प्रमुख है, कौन प्रमुख नहीं है, इसका विभाजन नहीं किया जा सकता। जैसे हम ईख को खाते हैं, वैसे हमसे ईख की जड़ों को खाया नहीं जा सकता। जड़ों का लक्ष्य है कि फल के लिए काम करें; और उन्हें कभी फल की प्राप्ति नहीं होती। प्रकृति की हर गतिविधि स्वार्थ से दूर ही रहती है। औरतें भी इसी प्रकार होती हैं। पृथ्वी और नारी को समझना, उन्हें सुधारना और खुश करना आसान काम नहीं है। इसलिए किसी के बारे में भी ज्यादा सोचने की जरूरत नहीं है। दुनिया का कोई भी नियम अमर नहीं रह पाता..."

तब तक फोन बज उठा था। बगल में आकर फोन रिसीव किया। डॉक्टर नेहा बैनर्जी बोल रही थी, "दादा और पोता दोनो इंटरेस्टिंग पर्सनालिटीस हैं न...। मैं अब मसूरी छोड़ रही हूँ। वह लड़की है न, अब पूर्ण रूप से ठीक हो गई है। उसे ले जाने के लिए उसके माता–पिता दोनों आए हैं। उसका शरीर अब पूर्ण रूप से वश में आ गया है। मैं उनकी गाड़ी से ही दिल्ली आ रही हूँ। रफीक के घर का मटन चाप्स और पराठा अद्‌भुत होता है। आप रात नौ बजे खाना खाइएगा और यूनिवर्सिटी गेस्ट हाउस लौट आएगा। आप रात मेरे साथ बिता सकते हैं। अतावुल्ला से मैंने कह दिया है कि मैं दिल्ली ग्यारह बजे पहुँच जाऊँगी। मेरी मास्को फ्लाइट कल दस बजे की है..."

उस ओर से फोन कट गया था। मेरा शरीर एक और बर्तन ईख रस के लिए तड़प रहा था। मैं ईख का रस तैयार करने की ओर चल पड़ा था। मैंने ईख उखाड़ लिया था, घुटनों के बल तोड़कर मुँह में रख लिया और चबाने जगा था!

"क्या आप जानते हैं कि मेरे दादा की तीन बीवियाँ हैं, अगर मैं कहूँ कि और एक शादी कर लो तो कहते हैं कि मैं तैयार हूँ..." डॉक्टर अतावुल्ला खान हँसते हुए मेरा पीछा करने लगे थे।

– नं. 282, फ़र्स्ट माइन, 6वाँ क्रॉस, नागरबावी, 2 स्टेज, 9वाँ ब्लॉक, बैंगलोर–560072
– 'नवनीत' दूसरा क्रॉस, अन्नाजीराव लेआउट, प्रथम स्टेज, शिवमोग्गा, कर्नाटक–577204

❑❑❑

रूतलेलं

प्रो. सौ. कांचन थोरात

किती सिमीत आहे ना?
माझे आयुष्य;
या विहिरीसारखं...!
अगतिक!
संस्कृतीच्या कठडयानं बंदिस्त,
आणि, संसाराच्या रहाट गाडग्याने
सतत चालू
मी तोडू शकत नाही
माझा कटडा
ना, बंद करू शकत,
हे रहाट गाडगं.
हा उपसा होतच राहणार.
जोवर, माझ्यामध्ये आहे,
हे सहनशीलतेचं 'जल'
आता कमी झालेय।
पार तळाला गेलेय,
आणि तरीही,
चालू आहे, हा उपसा...²
हा उपसा, आता बंद झाला पाहिजे,
नाहीतर अंत होईल,
माझ्यातल्या सहनशक्तीचा,
अन पडेल उघडं,
माझं भेसूर रूप...²
अन दिसेल जगाला त्यातला गाळ,
खूप खोल, खोल असलेलं,
रूतलेलं ...सारं काही²

– 'श्री दत्त प्लाझा', रूम नं. 20, तिसरा मजला, आगाशिवनगर, मलकापूर, ता. कराड,
जि. सातारा, महाराष्ट्र, पिनकोड–415539

❑❑❑

भाषा ISSN 0523-1418

धँसा हुआ

अनुवाद : प्रो. शौकत आतार

कितना सीमित है ना?
मेरा जीवन;
इस कुएँ की तरह...!
अगतिक!
संस्कृति की कठघरों में बंदिस्त,
और संसार के दिनचक्र में
निरंतर
मैं तोड़ नहीं सकती
मेरा कठघरा
ना बंद कर सकती हूँ
यह दिनचक्र
यह उत्सारण होता ही रहेगा
जब तक, मुझमें है
यह सहनशीलता का 'जल'
अब कम हो गया है,
निचली सतह तक जा चुका है,
और फिर भी,
शुरू है यह उत्सारण...!
अब यह उत्सारण, बंद होना चाहिए,
नहीं तो अंत होगा,
मेरी सहनशीलता का,
और प्रकट होगा,
मेरा भीषण रूप...,
और दिखेगा दुनिया को उसके भीतर का
कीचड़,
बहुत गहरा, गहरा है जो,
धँसा हुआ... सब कुछ!

– हिंदी विभाग प्रमुख, आर्टस एंड कॉमर्स कॉलेज़, नागठाणें, ता. जि. सातारा, महाराष्ट्र–415519

❑❑❑

अचानक

सौभाग्यवंत महाराणा

आ युषर कोमल स्थापत्य भितरे
सबुकिछि अचानक ही घटिजाए
निश्वास भितरे प्रश्वासर मित्रता परि
दृश्य भितरे दृश्यान्तरर
खण्डिआ खाबरा ईश्वरन्क असहायता परि
तिथी बार नक्षत्रन्क हिसाब रखिबाकु।
हात गोड नथिबा थुण्टा जगन्नाथन्क
शब्द ब्रह्म भितरे निरबतार ओमकार ठाब
करिबाकु।

ए सहरर असना धूलिआ बस्तिरे
तुम आम भेट बि गोटे अचानक मुहूर्तर पदचिह्न
से भन्गा मन्दिरर गर्भगृह भितरे
जाहा बहु बर्षरु बाकि रहिजाइथिला
तुम आम राशि नक्षत्रर मेल अमेलरे।
तुम कलिजा भितरे कऑलूथिबा
रक्तर चारागछरे एइने बसन्तोत्सव
लोभनिय देहकु आबोरि बसिबारे जिदखोर
आम परि ब्यर्थ प्रेमिकन्क अलोडा
आखिठार।

तुम ओठ फान्करे शब्द भि काकुस्थ हुए
अचानक आखिर नील ह्रदकु
प्रेमर निर्झरटे बहिजिबा बेले उजाणी सुअरे।
फुल फुटिबार बेल हि जन्ह रातिरे
प्रेमिक हेबार प्रचण्ड बास्नाकु कण टाकिथाए
दार्शनिक हेबार स्थिर निष्पत्ति भितरे
अकस्मात द्रोह कालर भउँरीरे उबुटुबु हेबाकु?

से भृणायन हेउ बा ध्वसांयन
मध्य स्वर्ग रे झुलिबा आम कला भाग्यर
सबाशेष पृष्ठारे लिखित शब्दन्क प्रिय उच्चारण।
आमे किए तुमे किए भाबिबा बेलकु
कलिजार चारागछरे पाऑलिजाए
पूर्बजन्मर मधुर संपर्क र
पत्ररे–पत्ररे रंग बेरंग फुलन्क
अभूला स्मृति बिस्मृत्ति र
शिहरण।

अचानक ह्रदक्रिया बन्द होइजिबाबि
एक नील मृत्युर सुन्दर आकर्षण
हाडर बंशीरे प्रेम गीत गाइबाकु
व्यथित जीवन र शून्यता रे निराश न होई
शास्त्रीय रागर मूर्च्छना तोलिबाकु।

– भारती भवन, इनकम टैक्स ऑफिस के पीछे, सीबाम कॉलोनी, संबलपुर, ओडिशा–768004

❑❑❑

अचानक

अनुवाद : डॉ. ममता प्रियदर्शिनी साहु

आयु के कोमल स्थापत्य के भीतर
सबकुछ अचानक ही घटित होता है
निःश्वास के भीतर प्रश्वास की मैत्री जैसा
दृश्य के भीतर दृश्यांतर के
चोट–खरोंच खाए ईश्वर की असहायता जैसा
तिथि, दिवस, नक्षत्र का हिसाब रखने को
बिना हाथ–पैर वाले जगन्नाथ जी
शब्दब्रह्म के भीतर नीरवता के ऊँकार की
तलाश करने को।

इस शहर की धूल भरी बस्ती में
मेरा तुम्हारा मिलना भी अचानक घटित एक
घटना का संकेत है
वह टूटे मंदिर के गर्भगृह के भीतर
जो बहुत सालों से बचा रह गया था
तुम्हारे मेरे राशि नक्षत्र के मेल–अनमेल में
तुम्हारे कलेजे के भीतर पनप रहा
रक्त की घास पर अब वसंतोत्सव
आकर्षक देह को पकड़कर बैठने की जिद
हम जैसे व्यर्थ प्रेमियों के अनावश्यक इशारे।

तुम्हारे होंठों की फाँक में शब्द भी ठिठक गए
अचानक आँखों की नीली झील में
प्रेम का निर्झर विपरीत दिशा में बहने के
समय
फूल खिलने की बेला है
चाँदनी रातों में प्रेमी बनने की प्रचंड चाह को
क्या प्रतीक्षा करती है
दार्शनिक होने की स्थिर निष्पत्ति के भीतर
अकस्मात द्रोह काल के भँवर में
डूबने उतराने को?

वह भ्रूणायन हो या फिर ध्वंसायन
मध्य स्वर्ग में झूल जाना ही लिखा है हमारे
भाग्य में
अंतिम पृष्ठ पर लिखित शब्दों के प्रिय उच्चारण
मैं कौन, तुम कौन सोचते समय
कलेजे की घास में पनप जाती है
पूर्वजन्म के मधुर संबंध के
पल्लवों में रंग–बिरंगे फूलों की
न भूलने वाली स्मृति–विस्मृति की सिहरन।

अचानक दिल की धड़कन रुक जाना भी
एक नीली मृत्यु का सुंदर आकर्षण
हड्डियों की बाँसुरी से प्रेमगीत गाने को
व्यथित जीवन की शून्यता में निराश न होकर
शास्त्रीय रागों की मूर्च्छना तोड़ने को।

– ओड़िया अध्यापिका, सरकारी एस. एस. डी. एच. एस. एस. विज्ञान महाविद्यालय,
बालिशंकरा, सुंदरगढ़, ओड़िशा

❑❑❑

विज्ञान को लोकप्रिय बनाते डॉ. कोहली

डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण'

"साधारण भाषा–शैली में विज्ञान को समझाती एक मूल्यवान पुस्तक"

आज देश में विज्ञान से जुड़े विषयों पर हिंदी में लिखने वाले बहुत विरले हैं। ऐसे में जब मुझे डॉ. दीपक कोहली की पुस्तक 'विज्ञान की नई दिशाएँ' पढ़ने को मिली तो सहज ही प्रसन्नता हुई। डॉ. दीपक कोहली ने अपनी इस पुस्तक में कुल इकसठ आलेखों में वनस्पति, जल, बागबानी, फिजिक्स, रसायन शास्त्र, समुद्री विज्ञान और घरेलू जीवन से संबद्ध भूली बिसरी बातों को बड़े ही–सहज ढंग से समझाया है।

हम सुनते हैं कि आज दफ्तरों, कालेजों, स्कूलों आदि में उपस्थिति 'बायोमैट्रिक्स' मशीन से लगाई जाती है, लेकिन यह 'बायोमैट्रिक्स' है क्या? इसे समझाने के लिए 'बायोमैट्रिक्स के बढ़ते कदम' आलेख पढ़िए। आज बिजली जाते ही घरों में अंधेरा छा जाता है, इन्वर्टर न हो तो मोमबत्ती या दिया ढूँढते हैं, ऐसे में 'ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत' आलेख महत्वपूर्ण बन गया है।

आज युवाओं में 'ई सिगरेट' का फैशन चल पड़ा है, लेकिन इसके दुष्प्रभाव तो डॉ. कोहली के आलेख 'ई सिगरेटः सेहत के लिए हानिकारक' पढ़कर ही पता चल सकता है। आज सौर ऊर्जा की बात जोरों पर है, किंतु डॉ. दीपक कोहली का आलेख 'सौर ऊर्जा का उपयोग विभिन्न रूपों में' पढ़कर सामान्य पाठक भी प्रकृति की इस देन के महत्व को जान लेता है। लेखक की सरल शैली देखिए– "हमारे सौर मंडल में प्रकाश और उष्णता के दृष्टिकोण से सूर्य का प्रमुख स्थान है। यह ऊर्जा का प्रधान स्रोत है। यद्यपि ब्रह्मांड में स्थित तारों, आकाशीय पिंडों तथा स्वयं पृथ्वी से ऊर्जा या ऊष्मा की प्राप्ति होती है, किंतु यह ऊर्जा सूर्य से प्राप्त की गई ऊर्जा ही होती है।" (पृष्ठ–53)

आज 'नैनो टैक्नोलॉजी' की बड़ी चर्चा हो रही है, ऐसे में डॉ. दीपक कोहली की इस पुस्तक का यह आलेख 'नैनो टैक्नोलॉजी से जल प्रदूषण नियंत्रण' हम सबके लिए बहुत उपयोगी हो सकता है, क्योंकि जल को लेकर आज जितनी चिंताएँ देश में हैं, उनके निराकरण में यह आलेख महत्वपूर्ण जानकारियाँ देता है।

'कीटनाशकों से भोजन में बढ़ता ज़हर' नामक आलेख तो आँख खोलने वाला है। मुझे तो सबसे ज्यादा प्रसन्नता 'मसालों का विज्ञान' आलेख पढ़कर हुई है। डॉ. कोहली लिखते हैं– "हमारी रसोई के ये मसाले रसोई के वे रत्न हैं, जिनके बगैर अच्छे से अच्छा रसोइया बेकार है। संपूर्ण भोजन इन्हीं मसालों के कॉम्बिनेशन और मात्रा पर निर्भर होता है कि वह ना केवल स्वादिष्ट बने बल्कि वह

"विज्ञान की नई दिशाएँ"/ लेखक–डॉ. दीपक कोहली/ प्रकाशक–रश्मि प्रकाशन, 204, सनशाइन अपार्टमेंट, बी–3, बी–4, कृष्णा नगर, लखनऊ–226023/ प्रथम संस्करण–2020/ कुल पृष्ठ–272/ मूल्य : ₹550/–

स्वाथ्यवर्धक भी हो। इतिहास गवाह है कि मसालों की दुनिया कितनी पुरानी है, कहते हैं कि ईसा के जन्म से बहुत पहले की बात है, कई ग्रीक व्यापारी मसाले और अन्य कीमती चीजें खरीदने के लिए दक्षिण भारत के बाजारों में आया करते थे।"

(पृष्ठ–103)

इसी क्रम में 'इलायचीः मसालों की रानी', 'कृष्णकली (लौंग) की कहानी' और 'पान की खेती और महत्व' जैसे आलेख बेहद रोचक और ज्ञानवर्धक हैं। डॉ. दीपक चूँकि वनस्पति विज्ञान के अध्येता रहे हैं, अतः इस पुस्तक में बहुतायत 'पारिजात', 'सदाबहार', 'पलाश' आदि फूलों और 'आँवला', 'बेल' जैसे फलों पर आलेख हैं।

'भारत में पर्यावरणीय पर्यटन' आलेख खुद में नई दिशाएँ खोलने वाला है, तो 'अपशिष्ट प्रबंधन' आज के महानगरों की ज्वलंत समस्या के समाधान का मार्ग बताने वाला आलेख है। 'गिरता भू–जल स्तर और रिचार्ज' आज के संदर्भ में बहुत प्रभावी आलेख है।

कुल मिलाकर मैं कह सकता हूँ कि डॉ. दीपक कोहली की यह पुस्तक अत्यंत महत्वपूर्ण, उपयोगी और सभी के लिए पठनीय है। पुस्तक का मुद्रण निर्दोष है।

– पूर्व प्राचार्य, 74/3, न्यू नेहरू नगर, रुड़की–247667

❑❑❑

उजाले का संदेश

डॉ. सुधांशु शेखर

आधुनिक सभ्यता के रथ पर आरूढ़ 'मानव' तथाकथित विकास की बुलंदियों पर है। आज आकाश को मुँह चिढ़ाते गगनचुंबी मकान, हवा से तेज दौड़ते वायुयान, धरती की दूरियों को खत्म कर देने वाले संचार सामान आदि उसकी पहचान हैं। आज मानव के जीवन में कृत्रिम गर्भाधान, परखनली शिशु, अंग–प्रत्यारोपण एवं मानव–क्लोनिंग की तकनीक और झाड़ू लगाने एवं खाना बनाने से लेकर प्रेम एवं सेक्स करने तक में दक्ष मशीनें (रोबोट) हैं। आज वह समुद्र की अतल गहराइयों में खेल रहा है, अंतरिक्ष की सैर कर रहा है, ढूँढ रहा है– चाँद एवं मंगल पर बस्तियाँ बसाने की संभावनाएँ और देख रहा है– अमरता के सपने भी।

लेकिन, आधुनिक सभ्यता का तथाकथित विकास–अभियान, वास्तव में मानव एवं मानवता के लिए महाविनाश का आख्यान बनने वाला है। ऐसे में, देश–दुनिया में आधुनिक सभ्यता के विकल्प की तलाश हो रही है। इसी तलाश की एक कड़ी है डॉ. राकेश 'चक्र' का गीत–नवगीत संग्रह 'उजाले के लिए'। इसमें नई दुनिया बनाने की जद्दोजहद देखी जा सकती है।

इस संग्रह में कवि ने सामाजिक विसंगतियों एवं विकास के अंतर्विरोधों एवं इसके खोखलेपन पर करारा प्रहार किया है। लेखक यह स्पष्ट रूप से चित्रित करता है कि तथाकथित बाहरी भौतिक विकास की दौड़ में हमारी मानवीय संवेदनाएँ मरती चली जा रही हैं और हमने बाहर जितना भी कृत्रिम उजाला क्यों न कर लिया हो, हमारे अंतरतम् का अंधकार गहराता चला जा रहा है। कवि के शब्दों में, *भीतर की चोली मैली है/ बाहर उजले शॉल।*

(पृ. 64)

आधुनिक विकास ने ग्राम्य जीवन एवं ग्राम्य संस्कृति को गहरा आघात पहुँचाया है। औद्योगिक विकास और बढ़ते मशीनीकरण की वजह से रोजगार के अवसर कम हो गए हैं। शारीरिक श्रम की प्रतिष्ठा घटी है। *खो गए हल–बैल बिछुड़े/ अब नहीं गउएँ सुहातीं/ अब मशीनों का हुआ है दबदबा/ श्रम की न थानीं।* (पृ. 53)

यूँ तो आज कहने को पूरी दुनिया को 'ग्लोबल विलेज' (विश्वग्राम) बनाने का दावा किया जा रहा है। लेकिन सच्चाई यह है कि आज विभिन्न देशों के बीच की दूरी बढ़ी है और गाँव एवं शहरों के बीच भी विषमता की खाई चौड़ी एवं गहरी होती चली जा रही है। आधुनिक विकास की चकाचौंध में गाँवों को उजाड़ कर शहरों को बसाया जा रहा है। *गाँव की चौपाल का मैं रंग हूँ/ देखकर हालत शहर की दंग हूँ* (पृ. 28)

उजाले के लिए (गीत–नवगीत संग्रह)/ लेखक : डॉ. राकेश 'चक्र'/प्रकाशक : देशराज एंड संस, एन–67, तृतीय तल, गली नं.–4, नवीन शाहदरा, दिल्ली–110032/ प्रकाशन वर्ष : 2019/ कुल पृष्ठ : 144/ मूल्य : ₹350/–

गामीण क्षेत्र की उपेक्षा को भी कवि ने व्यक्त किया है। *ग्रामों को कुछ आभा दे दो/ फिर बनबाना माँला।* (पृ. 65)

आधुनिक विकास ने न केवल गाँव को आर्थिक रूप से परावलंबी बनाया है, बल्कि उसे सांस्कृतिक रूप से भी तोड़ने की कोशिश की है। इसका दुष्प्रभाव हमारे पर्व–त्योहार, रहन–सहन, भाषा, पहनावा एवं खानपान और हमारी जीवनशैली पर भी पड़ा है। इस चिंता से कवि की लेखनी विचलित है, *दाल–सब्जियाँ नहीं सुहाएँ/ फास्ट–फूड ही भाते हैं।* (पृ. 60)

वास्तव में बाजारीकरण के इस युग में सब कुछ बिकाऊ हो गया है और हम मनुष्य एवं उसकी मनुष्यता से भी सौदा करने से नहीं चूकते हैं। आज मानवीय संवेदनाएँ और मानवीय संबंधों को भी बाजार में नीलाम किया जा रहा है। इस बाजार ने हमारे रिश्ते–नाते और यहाँ तक कि बचपन की मासूमियत को भी नहीं छोड़ा है।

बचपन पर भी बाजार के हमले हुए हैं और विभिन्न विज्ञापनों में बाल मनोविज्ञान का दुरूपयोग किया जाता है। इधर मोबाइल फोन ने भी बच्चों पर काफी नकारात्मक प्रभाव डाला है। *बॉल छीनकर बचपन से अब/खुश होता है मोबाइल।* (पृ. 59)

आज हम संचार क्रांति के जरिए क्षणभर में दुनिया के किसी भी कोने से जुड़ने में सक्षम हैं और हम दुनिया को मुट्ठी में करने का दावा कर रहे हैं। लेकिन सच्चाई यह है कि हम अपने घर–परिवार में भी अकेले हो गए हैं। कवि के शब्दों में, *हुए पड़ोसी गुमसुम सारे एसी के संधानों में, नहीं बैठते पास–पास अब मोबाइल के कानों में।* (पृ. 46)

आज रिश्ते–नाते, प्यार–वफा सब भौतिकता के रंग में सराबोर नजर आते हैं। ऐसे में रिश्तों की गर्मजोशी एवं उसका स्थायित्व समाप्त होता जा रहा है और मानव– मानव के बीच विश्वास का संकट खड़ा हो गया है। *रिश्तों में ठहराव कहाँ अब नहीं दिखता अपनापन/छूटी अपनी धरती देखें पंख लगा हम उड़े गगन।* (पृ. 38)

आधुनिकता की दौड़, मानवता का ह्रास और तज्जनित युग–संत्रास को प्रकट किया है। हर ओर अधिकाधिक धन–संपत्ति जुटाने की होड़ मची है और संतोष एवं शांति की बातें किताबों तक सिमट कर रह गई हैं। आधुनिकता की इस अंधदौड़ ने हमारे प्रकृति–पर्यावरण को नुकसान पहुँचाया है। *पर्यावरण उजड़ता है/ जीवन बना विलासी है।* (पृ. 54)

कुलमिलाकरआधुनिक भौतिकवादी विकासगाथा संपूर्ण सृष्टि के लिए विनाशलीला साबित होने वाली है। इस आधुनिकता की बाह्य चकाचौंध के अंदर गहन अंधकार व्याप्त है। ऐसे में इस आधुनिक विकास पद्धति को नकार कर पुनः पारंपरिक जीवनशैली को अपनाना होगा। यही मानव जीवन को सही अर्थों में उजाले की ओर ले जाने का मार्ग है। *प्यास मेरी बढ़ रही है अब उजाले के लिए/ भाव हैं सबके दिलों में घर बनाने के लिए।* (पृ. 53)

संक्षेप में यह पुस्तक कुछ संदेश देने में बहुत हद तक सफल होती है। लेकिन इसमें रोचकता एवं पठनीयता का घोर अभाव है। लेखक ने अपनी 96 रचनाओं को जैसे–तैसे एकत्र कर पुस्तक का रूप दे दिया है। इसकी प्रस्तुति बिल्कुल बेतरतीब है और रचनाओं में कोई कसावट भी नहीं है। यदि रचनाओं को उनकी विषयवस्तुओं के आधार पर विभिन्न खंडों में वर्गीकृत कर प्रस्तुत किया जाता, तो और भी बेहतर होता। छपाई सामान्य है और कवर भी पहली नजर में आकर्षित कर पाने में सक्षम नहीं है। इसके बावजूद उजाले के लिए किए गए इस प्रयास को एक बार अवश्य देखा जाना चाहिए।

– असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, (दर्शनशास्त्र) एवं जनसंपर्क पदाधिकारी, बी. एन. मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा, बिहार

❑❑❑

बदलते समय की रेत पर ज़िदगी के निशान : भटक्यो बहुत प्रकाश

रमेश खत्री

जीवन में तेजी से आ रहे बदलाव और उनके कारण उभरती विभिन्न सामाजिक समस्याएँ, जिनका सामना हमको प्रतिदिन ही करना पड़ता है। तो वहीं दूसरी ओर अतीत की गौरवशाली विरासत जो अपनी पूरी सजधज के साथ मन की खिड़कियों से हरदम झाँकती रहती है और आकृष्ट करती है बातें करने को। चंद्रभानु भारद्वाज की पुस्तक 'भटक्यो बहुत प्रकाश' विगत दिनों मोनिका प्रकाशन, जयपुर से प्रकाशित हुई है। यह एक स्मृति गाथा है जो लेखक की कथा के साथ ही और भी कई लोगों की कथा हो सकती है। इसका कारण भी है क्योंकि लेखक ने स्वयं इस किताब की भूमिका 'पूर्वा' में लिखा है, "जो भी लिखना था, वह इस कृति में मौजूद है, फिर भी कमलानंद ने इसे खुलासा करने को कहा है। बस उन्हीं के निर्देशानुसार यह लिखना पड़ा कि यह एक जनयात्रा है– कई लोगों के एक जगह इकट्ठे होने की स्मृतिगाथा है। यह आदमी कोई विशेष नहीं वरन् बहुत से आम आदमियों में से ही एक आम आदमी है– एक इंसान जिसमें अनायास ही एक चिंता जाग्रत हो गई कि इस आदमी में से उसकी आदमियत धीरे–धीरे खत्म क्यों होती चली जा रही है। उसे अब अमानुष बनते रहने में ज्यादा सुख हासिल होने लगा है।"

पुस्तक के केंद्र में हैं आदमी के अंदर हिंसा की प्रवृत्ति का लगातार बढ़ते जाना। एक दूसरे पर भरोसे का और विश्वास का भाव समाप्त होते जाना भी इस कृति के लेखक की चिंता का विषय है। रचनाकार का सोचना है कि वर्तमान समय ने बच्चों के खेलों को भी अपनी मुट्ठी में कैद कर लिया है और उनके सम्मुख बाज़ारवाद ने ऐसे खिलौने परोस दिए हैं जो उनमें 'किलर इंस्टिंक्ट' की भावना पैदा कर रहे हैं। इसी के परिणाम स्वरूप आज की पीढ़ी के बच्चे उच्छृंखल तथा उद्दंड होते जा रहे हैं। अब जीवन में अनुशासन और संस्कार जैसी बातें न के बराबर रही हैं। इन समस्याओं से किशोरों और नौजवान पीढ़ी का तो सामना होना ही है किंतु इससे अधेड़ और वृद्ध प्रभावित नहीं होंगे यह कैसे माना जा सकता है?

जब हम इस पर गंभीरता से विचार करते हैं तो हमारे सम्मुख यह प्रश्न उभरता है कि जिस तरह का जीवन हमने जिया है, क्या वैसा ही जीवन हम अपने बच्चों को नहीं दे सकते? क्या हमारी शिक्षा, हमारे संस्कार, हमारा अनुभव आज के समय में निरर्थक हो गए हैं। राह से भटक रही युवा पीढ़ी को हम कैसे संस्कार दे सकते हैं और उनको सही राह पर ला सकते हैं? इसके लिए हमें उनकी समस्याओं का गहराई से अध्ययन करना

भटक्यो बहुत प्रकाश/ लेखक : चंद्रभानु भारद्वाज/ मोनिका प्रकाशन, जयपुर/ प्रकाशन वर्ष : 2019/ कुल पृष्ठ : 184/ मूल्य : ₹400/–

होगा तथा उसकी तह में जाकर उनके निदान खोजने होंगे। इस कृति का मूल भी यही है कि हम अपने जीवन के अतीत की गौरवशाली गाथा से युवाओं को परिचित कराएँ, जिससे उनके मन में संस्कारों का प्रभाव पड़ सके और वो स्वयमेव ही अपनी गौरवशाली परंपरा से जुड़ सकें।

समीक्ष्य कृति एक अधो वृद्ध की स्मृतिगाथा है। 'यह व्यक्ति पूर्णप्रकाश' है और इसके मन में कई तरह के सवाल उठते रहते हैं कि ऐसा क्यों हुआ? क्या ऐसा होते रहना कोई स्वाभाविक क्रिया है? वे तमाम अच्छी कलमें जो हमेशा मूल्यों के लिए लिखती रहीं, उन्होंने एक दम से चुप्पी कैसे साध ली? तमाम क्रूर बिल्लियों के गले में घंटी बाँधने वाले क्या बिल्कुल ही चुक गए? एक ओर जहाँ अद्भुत सन्नाटा व्याप्त है जो दूसरी ओर तमाम इंसानियत को छेद–छेद कर खत्म करने का षडयंत्र जारी है। ऊपर से नीचे तक कुहराम मचा है, प्रजातंत्र अपाहिज सा भ्रष्टाचारियों की कैद में है।"

दरअसल, पीढ़ियों का अंतराल भी एक मुख्य समस्या है। बच्चे समझते हैं कि माता–पिता उन्हें तथा उनकी आवश्यकताओं को नहीं समझते हैं तो वहीं दूसरी ओर माता–पिता भी यह मान बैठते हैं कि बच्चे उच्छृंखल तथा संस्कारहीन होते जा रहे हैं। वह सोचता है कि "इन प्रश्नों और विचारों का हल यद्पि होगा, पर मेरे जेहन में अभी कुछ भी नहीं है, पर मैं कुछ कयास लगा सकता हूँ, कालक्रम को पीछे से आगे तक देख सकता हूँ, अतीत की वर्तमान से तुलना कर सकता हूँ, पर यह सब व्यावहारिक नहीं है– परिणाम देने वाला नहीं है। यह कृति क्षणों में घटित समय का नाटकीय रूप है।"

यह भी कहा जा सकता है कि हर व्यक्ति के मन में कुछ सवाल हमेशा रहते हैं और वह उनसे ता उम्र जूझता रहता है। जब हम इस कृति से गुजरते हैं तब हमें लगता है कि यह क्षण–प्रतिक्षण के कालयोग से प्रभावित है। इसमें कोई निश्चित कालक्रम नहीं है, बल्कि कुछ जीते–जागते हुए क्षण हैं जो जब तब स्मृति में कौंधते हैं और दूसरे ही क्षण खड़े हो जाते हैं आमने–सामने। और आपस में बातें करने लगते हैं, "गाड़ी! घूमते हुए पहियों की एक औद्योगिक कृति। पूंजीवाद का सतही सुख पहियों पर घूमता हुआ समय से संवाद करता हुआ। ...उपभोग की संस्कृति में डूबी हुई आवाज़ उसमें वही कुछ है जो हमारे जीवन लक्ष्यों में है। बड़ों द्वारा रची गई दुनिया से बच्चे की कल्पना और संजीवनी का समाजीकरण।"

समीक्ष्य कृति में लेखक ने कहन शैली को अपनाया है, उसकी अतीत और वर्तमान के बीच की यह यात्रा स्वाभाविक गति से चलती रहती है। वह अपने आपको खोलने और मानसिक ग्रंथियों से मुक्त होने का प्रयास करता रहता है, "जो काम इतिहास ने बखूबी पूरा किया, उसे इतिहास पढ़ने–पढ़ाने वालों ने कोई अहमियत नहीं दी। इसलिए तो हमें पता नहीं चल पाया कि मीरजाफर कब इतिहास के पन्नों से आजाद हो गया है और वह बहुत सारे अपने उन्हीं पुराने विशेषणों के साथ हमारे आपके वर्तमान में घुस आया है और न जाने कितने क्लाईवों के लिए रास्ते तैयार कर रहा है।"

कहने की जरूरत नहीं है कि इस कृति में भाषा की सहजता मोहकता की हद तक जाती है और हमें संपृक्त करती है जिससे हम इसकी अंध गलियों में बेहिचक प्रविष्ट हो सकें। जहाँ पर जीवन की यथातथ्यता के साथ सहजता की विरासत से गुजरना रुचिकर लगने लगता है। एक विश्वसनीय समय सारथी के साथ चलने का नाम भी है 'भटक्यो बहुत प्रकाश' यह बीते हुए समय और वर्तमान को लेकर एक ऐसा महल रचता है जिसकी चमक आकर्षित करते हुए चुनौती देती है, इसमें संबंधों की सघनता और रिसते हुए समय के कालखंड को आसानी से पकड़ा जा सकता है, इसकी गलियों में मानव मूल्यों का ह्रास, दौलत की भूख, विज्ञापनों की चमक–दमक के साथ वर्तमान जीवन की कुटिल दुनिया, असामाजिक लोगों का चमक–दमक के साथ नायकत्व धारण करना और स्त्री का पल–पल बदलना वो पड़ाव हैं जो हमारी संवेदना को झकझोरते हैं और एक ऐसी दुनिया में ले जाते हैं जहाँ कई स्तरों पर पसरा हुआ जीवन अपनी गाँठें खोलता हुआ नज़र आता है।

कहना न होगा 'भटक्यो बहुत प्रकाश' अपनी वैचारिक दग्धता से, शैली की विशिष्टता से और अपनी सहजता से अपने समकाल को लगातार चुनौती देता रहेगा, पाठक इसमें धड़कते हुए जीवन स्पंदन को देर तक और दूर तक चिह्नित करेंगे।

– 53/17, प्रतापनगर, जयपुर–302033

❑❑❑

कुछ आख़िरी नहीं होता : जीवन की अक्कासी

डॉ. स्नेह सुधा नवल

'कुछ आख़िरी नहीं होता', डॉ. ओमप्रकाश शर्मा 'प्रकाश' द्वारा लिखित कविता संकलन है जिसमें इक्यावन कविताएँ हैं। संकलन की कविताएँ बताती हैं कि कवि का मन गाँव में भी है और शहर में भी, उन्हें जीवन का विशद अनुभव है। उनकी कविताओं में जाहिर होता है कि वे एक समाज–शास्त्री भी हैं, मनोवैज्ञानिक भी हैं और दार्शनिक भी। उनके संकलन में जिन कविताओं ने मुझे प्रभावित किया, मे उनके विषय में चर्चा करूँगी।

'आने वाली पीढ़ियाँ' एक ऐसी कविता है जिसमें एक सच्चा, सरल और सीधा मनुष्य अपने विषय में क्या सोचता है, इसमें बताया गया है। यह एक मनोविश्लेषणात्मक कविता है जिसमें कवि सोचता है कि आने वाली पीढ़ियों को हम क्या देकर जाएँगे। हमने पर्यावरण की रक्षा नहीं की, तालाब, झील सभी सूख रहे हैं, भूमि बंजर हो रही है हमारे किए की सजा आने वाली पीढ़ी को मिलेगी–

मानव खड़ा अकेला आज/ संगी–साथी–विहीन/कितने दिन जिएगा जो फैलाया है खुद/ वह ज़हर कितने दिन पिएगा।

'डामर की सड़क से बचते हुए' कवि का मन अपने बचपन के परिवेश को भूला नहीं। उसे शहर में रहते हुए बहुत समय हो गया है किंतु वह अपने गाँव की पगडंडी को भुला नहीं पाया। वह कच्ची, नरम मिट्टी, शीतल हरियाली की याद में रहता है। डामर की सड़क के लिए वह सोचता है कि यह दूरी पैदा करती है। कवि को हरी गीली मिट्टी से जुड़ाव है वह पगडंडी को रिश्तों की धारा मानता है, डामर की सड़क उसे लगता है कि रिश्तों को खा जाती है–

डामर की सड़क जहाँ जाती है/ वहाँ से कोई लौटता नहीं/ न बेटा, न पोता, न घर, न लुगाई, न लोग।

'शाम सुनहरी' में कवि चिड़ियों के माध्यम से बताना चाहता है कि क्यों आजकल मनुष्य इतनी इच्छाएँ पाल लेता है और उन्हें पूरा करने की होड़ में लगा रहता है। उसे लगता है कि चिड़िया भी चहचहाते हुए यही कह रही है :–

शाम सुनहरी में/ सतरंगा आकाश है/ निहारें कभी पल दो पल निकालकर।

'आज और कल' इस कविता में– कवि नई पीढ़ी को देखकर सोचता है कि यह पीढ़ी बिना कुछ किए सब कुछ पाना चाहती है वह पीढ़ी को संबोधित करते हुए लिखता है–

आज सब पा लोगे/ तो/ कल भोर की किरण/ इतनी मधुर कैसे होगी।

कुछ आखिरी नहीं होता (कविता संकलन)/ लेखक : डॉ. ओमप्रकाश शर्मा 'प्रकाश', पांडुलिपि प्रकाशन/ 77/1, ईस्ट आजाद नगर, दिल्ली–110051/ प्रकाशन वर्ष : 2019/ कुल पृष्ठ : 88/ मूल्य : ₹295/–

'कविता लेखन' जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है कि कवि कविता लेखन के विषय में बताना चाहता है। वह क्यों लिख रहा है? उसके मन में कुछ प्रश्न उठते हैं और वह उनके उत्तर चाहता है जिनकी तलाश का रास्ता उसे कविता लगती है–

कविता समस्याओं से/ दो चार हाथ करती है/ कई बार उन्हें/ और भी उलझा देती है।

'मंझधार' कविता में संतोष को महत्व दिया गया है। कवि के मन में अधिक की अभिलाषा नहीं है केवल उसकी ज़रूरत जितने से पूरी हो जाए उतना ही उसे चाहिए–

जरूरी नहीं/ अमरता का वर मिले/
चंद हसीन लम्हे भी पर्याप्त हैं

'पहचान' कविता में आज का मानव जिन आधुनिक उपकरणों के बीच फँसा हुआ है उससे उबरना कठिन होता जा रहा है। 'पक्षी और मैं' कविता में वह देखता है कि चिड़िया अपने बच्चे को चोंच से खाना सिखाती है और एक दिन पंख आते ही वह उड़ जाता है।

लता वहीं है/ वैसे ही/ पक्षी भी वैसे ही हैं/ मैं भी वैसा ही हूँ/जैसा मैं था

'खुश कौन' कविता में कवि का ग्रामीण मन उदास है। उसे लगता है कि गाँव के लोग क्यों छोटी–मोटी नौकरियों के लिए बस गए जहाँ कोई उसे खुश नज़र नहीं आता। 'रोशनी की औलादें' कविता में कवि अपने बचपन को याद करता है जब राम को चारपाई पर लेटकर चाँद और तारों को देखता था। लेकिन अब–

उन्हें कभी पता नहीं चलेगा/ कि/ रात में निर्मल, शीतल आकाश/ सुच्चे मोतियों की लड़ियों के/ सजाता था बाज़ार

कवि अपने जीवन के उस अंश को नहीं भूल पाता। उसे अतीत के दिन ही सुनहरे लगते हैं। अतीत ही उसके मन में सदा बसा रहता है।

'जीवन की टेर' कविता में भी कवि अतीत में जीता है लेकिन वह वर्तमान के महत्व को भी भली–भाँति पहचान रहा है–

इस संसार को निहारे/ इसमें रहो/ जो एकदम तुम्हारे सामने है/ और/ तुम्हें टेर रहा है

'शहर में' इस कविता में कवि इस विसंगति को बताता है कि शहर में किसी से बिना काम मिलना आसान नहीं है वह सबसे मिलना चाहता है– शहरी परिवेश में सब अपने आप में रहते हैं, खुलते नहीं।

'क्रैच' कविता में शहरी व्यस्तता का चिंतन है। शहर में पति और पत्नी दोनों ही नौकरी करते हैं वह अपने बच्चों को सुबह से शाम तक के लिए क्रैच में छोड़ आते हैं कवि को अपना बचपन याद आता है, जब वह अपनी दादी की गोद में छिप जाता था और दादी उसके माता–पिता पर गुस्सा करती थी।

'बात और बात' यह बहुत छोटी सी कविता है किंतु बहुत भावपूर्ण है और 'कवि' शीर्षक कविता में कवि अपने को चिरनिर्वासित मानता है, 'कुछ आखिरी नहीं होता' यह पुस्तक की शीर्षक कविता है जिसमें कवि बताता है कि कुछ भी अंतिम नहीं होता, हमें निराश नहीं होना चाहिए, मंजिल पा लेने के बाद दूसरी मंजिल दिखाई देने लगती है। इस प्रकार कवि आशावाद को प्रश्रय देता है।

हर सपना एक मंजिल होती है/ और कोई मंज़िल आख़िरी नहीं होती/ क्योंकि मंजिल के बाद एक और मंज़िल होती है।

'दृष्टि उन्मेष' में प्रकृति के पूर्ण सौंदर्य को देखने के लिए कहा गया है। प्रकृति का उन्मुक्त स्वभाव उसकी अनंतता को देखने की दुहाई देता है। 'अनपढ़ लोग' में भी प्रकृति का महत्व है। जो प्रकृति से जीवन का पाठ नहीं पढ़ता वह अनपढ़ है। 'लेखन' कविता में कवि इस तथ्य द्वारा परोक्ष ढंग से उन लेखकों पर व्यंग्य करता है जो आम जन की पीड़ा बिना जाने उन पर कलम चलाते हैं। 'भविष्य' कविता में कवि इस विसंगति पर ध्यान दिलाता है कि हम क्योंकर आज के समय में पुराना ढूँढते हैं। उसका प्रश्न है वह अतीत में है या भविष्य में? यह एक उत्कृष्ट कविता है जो सोचने को विवश करती है। 'नींद' भी एक विचारणीय कविता है जिसमें बचपन के जाने गए वैभव के

सपनों को लोरी के रूप में सुनते हुए बालक सो जाता है, लेकिन बड़े होने पर जब यथार्थ सामने आता है और उसमें वह सब नहीं हो पाता जो लोरी द्वारा बताया गया था।

नई पीढ़ी जैसे– पुरानी चीजों को पसंद नहीं करती और नयापन चाहती है, यही बात रिश्तों में भी आ जाती है।

पर्यावरण का महत्व दिखाती कविता 'हवा बोली' को पढ़कर भान हो जाता है कि कवि पर्यावरण का रक्षक है। उसे लगता है मानो हवा उसे कहती हो कि तुम तो मलिन हो गए हो किंतु मुझे तो साफ़ रहने दो–

मैं तो रह लूँगी जिंदा/ जिसे किसी तरह/ तुम साँस लोगी लेकिन/ किस धरा पर ?

संकलन की अंतिम कविता 'बाँस का आत्म–कथ्य' है। यह एक प्रतीक कविता है जिसमें बाँस के माध्यम से मनुष्य को प्रेरणा दी गई है कि जैसे बाँस सब कुछ अपने भीतर समा लेता है चाहे दर्द हो या कोई राज वैसे ही हमें होना चाहिए–

बतकही होती है क्या/ प्रकट नहीं करता कभी/ समा लेता हूँ भीतर ही भीतर/ पीड़ा, दर्द और राज/ पी जाने का माद्दा है मुझ में

डॉ. ओमप्रकाश शर्मा 'प्रकाश' की कविताएँ जमीन से जुड़ी हुई हैं, जनजीवन से जुड़ी हैं और उनमें निहित ग्रामीण परिवेश की कल्पना कवि शहर में सदा करता रहता है। इस संकलन की कविताएँ पाठक को बहुत कुछ सोचने पर विवश कर देती हैं। रिश्तों को इन कविताओं में बहुत महत्व दिया गया है। मनुष्य का रिश्ता जैसा मनुष्य के साथ हो वैसा ही रिश्ता प्रकृति के साथ भी हो, यह कवि की उच्च भावना है।

डॉ. प्रकाश की शैली आत्मीय है। उनकी भाषा सहज होते हुए भी साहित्यिक उन्मेष की भाषा का रूप गढ़ती है। उनका विज़न बहुत विस्तृत है, जहाँ समस्त जीवों पर समदर्शिता उन्हें बहुत महत्वपूर्ण लगती है।

पहली से आख़िरी कविता तक पढ़ने पर यही लगा कि सच में 'कुछ आख़िरी नहीं होता'।

– 65, साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए–3, पश्चिम विहार, नई दिल्ली–110063

❑❑❑

संपर्क सूत्र

1. डॉ. व्यासमणि त्रिपाठी, एन.जी. 22, टाइप–5, नयागाँव, चक्करगाँव, पोर्ट ब्लेयर, अंडमान–744112
2. डॉ. प्रणव शास्त्री 'डी. लिट्.', 'कल्पतरू' ए–30, वसुंधरा कॉलोनी, पीलीभीत, उत्तर प्रदेश– 262001
3. डॉ. पठान रहीम खान, असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद–500032
4. डॉ. ममता सिंगला, फ्लैट नं. 311, न्यू आशियाना अपार्टमेंट्स, प्लॉट नं. 10, सेक्टर 6, द्वारका, नई दिल्ली–110075
5. श्री राकेश कुमार त्रिपाठी, 100/5ए, पी के गुहा लेन, मॉडर्न पार्क, दम–दम कैंट, कोलकाता–28
6. श्री भारत यायावर, यशवंत नगर, हजारीबाग, झारखंड–825301
7. श्री राहुल राज आर्यन, म. नं. 89, गली नं. 6, भगत कॉलोनी, संत नगर, बुराड़ी, दिल्ली–110084
8. सुश्री प्रियंका कुमारी, शोधार्थी, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली
9. श्री मो. दानीश, महालेखाकार कार्यालय, वरिष्ठ अनुवाद अधिकारी, पटना, बिहार
10. डॉ. नीलिमा वर्मा, 11, कीर्तिनगर, इंदौर रोड, (लाल गेट के निकट) उज्जैन, मध्य प्रदेश–456010
11. डॉ. आलोक रंजन पांडेय, हिंदी विभाग, रामानुजन कॉलेज, (दि.वि.वि) कालका जी, नई दिल्ली–19
12. श्री अंबिकेश कुमार मिश्र, 3728, द्वितीय तल, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, दिल्ली–110002
13. डॉ. हरींद्र कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, हिंदू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
14. सुश्री सविता धामा, म. सं. 55, द्वितीय तल, गली नं. 19, ए–2 ब्लॉक, पश्चिम संत नगर, बुराड़ी, दिल्ली–110084
15. सुश्री अनीता शर्मा 'स्नेही', प्राचार्या, देव समाज कॉलेज फॉर गर्ल्ज़, अंबाला शहर, हरियाणा–134003
16. श्री देवेंद्र कुमार मिश्रा, पाटनी कॉलोनी, भरत नगर, चंदन गाँव, छिंदवाड़ा, मध्य प्रदेश–480001
17. श्री रमेश मनोहरा, शीतला माता गली, जावरा, जिला रतलाम, मध्य प्रदेश–457226
18. श्री राधेश्याम बंधु, बी3–163, यमुना विहार, दिल्ली–110053
19. श्री केशव शरण, एस 2/564, सिकरौल, वाराणसी–221002
20. श्री लाल देवेंद्र कुमार श्रीवास्तव, ग्राम–कैतहा, पोस्ट–भवानीपुर, जिला–बस्ती, उत्तर प्रदेश–272124
21. डॉ. अंजू सिंह, सहायक निदेशक, कें. हि. नि., पश्चिमी खंड–7, आर के. पुरम, नई दिल्ली

22. श्री तमिलमगन, हिंदी विभागाध्यक्ष, पीएसजीआर कृष्णम्माल महिला महाविद्यालय, कोयम्बत्तूर–4, तमिलनाडु

23. डॉ. वी पदमावती, हिंदी विभागाध्यक्ष, पीएसजीआर कृष्णम्माल महिला महाविद्यालय, कोयम्बत्तूर–4, तमिलनाडु

24. श्री केशव रेड्डी हंद्राला, नं. 282, फ़र्स्ट माइन, 6वाँ क्रॉस, नागरबावी, 2 स्टेज, 9वाँ ब्लॉक, बेंगलोर–560072

25. श्री डी. एन. श्रीनाथ, 'नवनीत' दूसरा क्रॉस, अन्नाजीराव लेआउट, प्रथम स्टेज, शिवमोग्गा, कर्नाटक–577204

26. प्रो. सौ. कांचन थोरात, 'श्री दत्त प्लाझा', रूम नं. 20, तिसरा मजला, आगाशिवनगर, मलकापूर, ता. कराड, जि. सातारा, महाराष्ट्र, पिनकोड–415539

27. प्रो. शौकत आतार, हिंदी विभाग प्रमुख, आर्टस एंड कॉमर्स कॉलेज़, नागठाणें, ता. जि. सातारा, महाराष्ट्र–415519

28. श्री सौभाग्यवंत महाराणा, भारती भवन, इनकम टैक्स ऑफिस के पीछे, सीबाम कॉलोनी, संबलपुर, ओडिशा–768004

29. डॉ. ममता प्रियदर्शिनी साहु, ओड़िया अध्यापिका, सरकारी (एस. एस. डी.) एच. एस. एस. विज्ञान महाविद्यालय, बालिशंकरा, सुंदरगढ़, ओड़िशा

30. डॉ. योगेंद्र नाथ शर्मा 'अरुण', पूर्व प्राचार्य, 74/3, न्यू नेहरू नगर, रुड़की–247667

31. डॉ. सुधांशु शेखर, असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, (दर्शनशास्त्र) एवं जनसंपर्क पदाधिकारी, बी. एन. मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा, बिहार

32. श्री रमेश खत्री, 53/17, प्रतापनगर, जयपुर–302033

33. डॉ. स्नेह सुधा नवल, 65, साक्षरा अपार्टमेंटस, ए–3, पश्चिम विहार, नई दिल्ली–110063

❑❑❑

भाषा ISSN 0523-1418

केंद्रीय हिंदी निदेशालय

भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र

सेवा में,

निदेशक

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,

शिक्षा मंत्रालय, पश्चिमी खंड–7, आर. के. पुरम्, नई दिल्ली – 110066

ई.मेल – chdsalesunit@gmail.com

फोन नं. – 011–26105211 एक्सटेंशन नं. 201, 244

महोदय/महोदया,

कृपया मुझे भाषा (द्वैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए / पाँच वर्ष के लिए/ दस वर्ष के लिए/ बीस वर्ष के लिए दिनांक ..... से सदस्य बनाने की कृपा करें। मैं पत्रिका का वार्षिक/ पंचवर्षीय/ दसवर्षीय/ बीसवर्षीय सदस्यता शुल्क ..... रुपए, निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक ..... द्वारा भेज रहा/रही हूँ। कृपया पावती भिजवाएँ।

नाम : .....

पूरा पता : .....

.....

.....

मोबाइल/दूरभाष : .....

ई–मेल : .....

संबद्धता/व्यवसाय : .....

आयु : .....

पूरा पता जिस पर : .....

पत्रिका प्रेषित की जाए .....

सदस्यता	शुल्क डाक खर्च सहित
वार्षिक सदस्यता	रु. 125.00
पंचवर्षीय सदस्यता	रु. 625.00
दसवर्षीय सदस्यता	रु. 1250.00
बीसवर्षीय सदस्यता	रु. 2500.00

डिमांड ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम एवं पूरा पता भी लिखें।

नाम एवं हस्ताक्षर

नोट : कृपया पते में परिवर्तन होने की दशा में कम से कम दो माह पूर्व सूचित करने का कष्ट करें।

पंजी संख्या. 10646/61
ISSN 0523-1418

भाषा (द्वैमासिक)
BHASHA-BIMONTHLY
पी. ई. डी. 305-3-2021
700

भाषा

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्

हिंदी

केंद्रीय निदेशालय

मई–जून 2021

Digital India
Power To Empower

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066
www.chdpublication.mhrd.gov.in
प्रबंधक, भारत सरकार मुद्रणालय, रिंग रोड, मायापुरी, नई दिल्ली – 110064 द्वारा मुद्रित